1. सती सीता

पुण्यभूमिः जम्बूद्वीप का भरतक्षेत्र सदा ही धर्मात्माओं से भरा धार्मिक क्षेत्र रहा है। इसी भरतक्षेत्र में धनधान्य से सम्पन्न, हरियाली से परिपूर्ण **एकक्षेत्र** नाम का नगर था। इस नगर में धर्मात्मा, ज्ञानी, नीति से सम्पन्न लोग रहते थे। इनमें सागरदत्त नामक व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी का नाम रत्नप्रभा था।

सागरदत्त के गुणवती[1] नाम की एक कन्या थी। यह सर्वांग-सुन्दरी कन्या सभी युवाओं की चाहत का विषय थी। गुणवती का गुणवान नाम का भाई था। सागरदत्त ने गुणवती की युवावस्था देखकर उसके विवाह का विचार किया।

उसी नगर में नयनदत्त नाम का व्यापारी रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुनन्दा था। उसके धनदत्त (राम का जीव) तथा वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव) नाम के दो बेटे थे। सागरदत्त ने समान हैसियतवाला जानकर धनदत्त के साथ गुणवती का विवाह तय कर दिया था।

इसी नगर में एक अमीर व्यापारी का श्रीकान्त (रावण का जीव) नाम का बेटा रहता था। वह हर पल गुणवती के बारे में सोचता था। जब उसे गुणवती के धनदत्त के साथ विवाह तय होने का पता चला, तब वह गुणवती की माँ रत्नप्रभा के पास गया। उसने रत्नप्रभा से मीठी-मीठी लुभावनी बातें कीं, तब लोभी स्वभाववाली रत्नप्रभा नारीजन दुर्बलता के कारण श्रीकान्त का वैभव देखकर उस पर लट्टू हो गई और उसने श्रीकान्त से ही गुणवती के विवाह का वादा किया।

जब वसुदत्त को यह बात पता चली। तब उसे बहुत गुस्सा आया; उसी समय यज्ञबलि (विभीषण का जीव) नामक युवक

---

1. सीता का जीव है, पद्मपुराण में सीता के जीव की कहानी इस भव से प्राप्त होती है।

वहाँ आया। उस यज्ञबलि ने वसुदत्त को श्रीकान्त को मारने के लिए उकसाया।

वसुदत्त कपडे में तलवार को छिपाकर श्रीकांत के पास गया। श्रीकांत उस समय असावधान था। वसुदत्त ने झट् से तलवार निकाल कर श्रीकांत पर प्रहार किये। श्रीकान्त के पास भी तलवार थी, उसने भी तलवार उठाकर वसुदत्त पर प्रहार किये। उसी समय दोनों का कुमरण हुआ।

मरकर दोनों विंध्याटवी नामक घने जंगल में हिरण बने। वसुदत्त और श्रीकांत के मरण के बाद समाज में पंचायत हुई। पंचायत ने इस सारे माजरे की जड़ धनदत्त और गुणवती को जानकर उनके परस्पर विवाह को अमान्य कर दिया।

धनदत्त समाज में अपनी बदनामी देखकर घर छोड़कर चला गया। इधर उधर भटकता रहा। भटकते - भटकते एक दिन सूर्यास्त के समय सुनसान जगह पहुँच गया, वहाँ मुनियों का एक संघ ठहरा हुआ था। धनदत्त को प्यास लगी थी। संघ में जाकर उसने पीने के लिए पानी मांगा। सभी मुनि मौन थे। एक क्षुल्लक को उस पर दया आयी, उन्होंने उसे समझायाः-

रात्रावप्यमृतं युक्तं न पातुं , किं पुनर्जलम्।

अर्थ- रात्रि में अमृत भी पीना अच्छा नहीं है, फिर जल की क्या बात? अर्थात् रात्रि में जल भी पीना नहीं चाहिए।

क्षुल्लक ने धनदत्त को धर्म का उपदेश दिया। उस ने उसी समय अणुव्रत धारण किए। जीवन भर उनका पालन कर समाधिपूर्वक देह छोड़कर ब्रह्मस्वर्ग में देव[1] बना।

गुणवती घर के कामों में अपने-आप को व्यस्त रखने लगी, परंतु वह पंचायत के फैसले को मन से निकाल नहीं पायी थी। उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया था। वह भीतर ही

भीतर नाराज रहती थी। दया, धर्म उसके चित्त से वैसे ही भाग गए थे, जैसे सच्चे श्रद्धानी पुरुष के चित्त से कुदेव, कुगुरू, कुधर्म का श्रद्धान समाप्त होता है। कोई मुनिराज दिखते, तब उनकी भक्ति की बजाय, वह उनकी निन्दा, हँसी करती थी। उनसे सदा द्वेष रखती थी, तिरस्कार करती थी। इसी तरह के द्वेष भावों के साथ उसने आयु पूरी की। दुष्ट भावों से मरकर विन्ध्याटवी में उसी स्थान पर हिरणी[1] बनी, जहाँ वसुदत्त और श्रीकांत के जीव पहले से ही हिरण बने हुए थे।

पूर्व संस्कारों के कारण श्रीकान्त का जीव हिरण उससे सम्पर्क करना चाहता था, परंतु पूर्व सस्कारों के कारण ही वसुदत्त के जीव दूसरे हिरण में और पहले हिरण में जोरदार लड़ाई हुई। लड़ाई में दोनों मरे। मरकर क्रमशः सुअर, हाथी, भैसा, बैल, बंदर, चीता, भेड़िया, काला हिरण बने। हर गति में एक दूसरे से लड़ते हुए मरे, बाद में अनेक जानवर आदि शरीरों को व दुष्टभावों को धारण करते रहे।

गुणवती का जीव हिरणी के बाद अनेक पशु शरीरों[2] को धारण करती रही, दुष्टभावों से मरती रही। जब उसका पाप कुछ कम हो गया, तब वह गंगा नदी के तट पर हथिनी[3] बनी। वहाँ भी वह अपने पूर्व पाप के फल को ही भोग रही थी। दूसरी हथिनियाँ उसे सदा सताती रहती थीं।

एक बार चरते-चरते वह कीचड़ में फँस गई थी। ज्यों-ज्यों बाहर निकलने का प्रयत्न करती, त्यों-त्यों वह कीचड़ में धंसती गई। बचने का कोई उपाय न देखकर वह जोर जोर से चिंघाड़ने व रोने लगी। उसकी करूण आवाज़ सुनकर वहाँ से जा रहे तरंगवेग

1. सीता के जीव का दूसरा भव।
2. सीता के जीव ने अनेक तिर्यञ्च आदि पर्यायें धारण कीं।
3. सीता का जीव।

नामक विद्याधर को उस पर दया आ गई । वह उसके पास गया, उसके कानों में णमोकार मंत्र सुनाया, उसे धर्म का उपदेश देकर प्रत्याख्यान-संयम ग्रहण कराया। हथिनी ने भी अपना अंतिम समय जानकर क्षेत्रसंन्यास ग्रहण किया। उसने शांत परिणामों से देह छोड़ी।

×××××

वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव) हिरण आदि अनेक तिर्यञ्च पर्यायों में भटका। भटकते-भटकते जब उसका पाप क्षीण हो गया, तब वह मृणालकुण्ड नामक नगर में श्रीभूति नाम का ब्राह्मण बना। वह जैनधर्म श्रध्दानी था। मृणालकुण्ड नगर का राजा वज्रकुम्भ था। श्रीभूति ब्राह्मण उस राजा का राजपुरोहित बना।

श्रीकांत (रावण का जीव) हिरण आदि अनेक तिर्यञ्च पर्यायों में भटकता रहा। भटकते-भटकते जब उसका पाप क्षीण हो गया, तब वह मृणालकुण्ड नामक नगर में ही वज्रकुम्भ राजा का शम्भू नाम का बेटा बना।

हथिनी (सीता) का जीव श्रीभूति पुरोहित की वेदवती[1] नामकी बेटी के रूप में जन्मा। वेदवती सुंदर थी, पर वह मुनियों की हंसी करती थी, उन पर ताने कसती थी। श्रीभूति उसे ऐसा करने से मना करते थे, पर वह नहीं मानती थी।

एक बार मृणालकुण्ड नगर में **सुदर्शन** नाम के मुनिराज का संघ आया था। लोग उनके दर्शन के लिए जाते थे।

एक दिन वंदना कर उपदेश सुनकर लोग चले गए थे। संघ में मुनिराज की सगी बहन सुदर्शना थी। उसने भी भाई के साथ दीक्षा ली थी। सब लोगों के चले जाने पर सुदर्शना आर्यिका और सुदर्शन मुनिराज धर्मचर्चा कर रहे थे। वेदवती ने उनको परस्पर चर्चा करते हुए देखा था। अपने-आपको धर्मात्मा बताने वाली

1. सीता का जीव।

वेदवती ने लोगों से कहाः-

''आप लोग ऐसे साधु के अवश्य दर्शन करो और उन्हें अच्छा मानो, पर मैं न उनके दर्शन करूंगी और न उन्हें अच्छा बताऊंगी मैंने उन्हें एकान्त में एक सुंदर स्त्री के साथ बात करते हुए देखा है।

वेदवती की बातों पर कइयों ने विश्वास नहीं किया; पर कइयों ने विश्वास कर मुनिराज का अनादर किया। मुनिराज ने सोचा कि इस तरह धर्म का अपमान होता रहेगा तो लोग मुनियों पर, धर्म पर विश्वास करना छोड़ देंगे। धर्म से विमुख हो जाएंगे। इस समय उसका कारण मैं बनूंगा, यह सोच उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक यह अपवाद दूर नहीं होगा, तब तक आहार ग्रहण नहीं करूंगा। आहार के लिए नहीं निकलूंगा।

मुनिनिन्दा के तीव्र पाप से वेदवती का मुँह फूल गया। उसके शरीर में तीव्र पीड़ा होने लगी। नगर-देवता व्यंतर ने उसे बहुत ड़र दिखाया, तब वह मुनिराज के पास गई और उसने अपने अपराध के लिए सबके सामने क्षमा मांगी। सबके सामने उसने कहाः-

''मैंने मुनिराज को शक की निगाह से देखा और उन पर झूठा आरोप लगाया था। जिसका फल मुझे तुरन्त मिल गया, मेरा मुँह सूज गया, शरीर में पीड़ा रहने लगी। व्यंतर देव ने मुझे सच बात बताकर बहुत ड़राया। आप लोग मेरी बात को सत्य मानो, मुनिराज निर्दोष हैं। मैं ही गुनहगार हूँ, मुनिराज नहीं।

वेदवती ने मुनिराज से क्षमा मांगकर सबको मुनिराज के निर्दोष होने का विश्वास दिलाया।

मुनिराज ने वेदवती को क्षमा कराकर सबसे कहा- **जिससे पापबंध होता हो ऐसा एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए।**

दृष्टः सत्योऽपि दोषो न वाच्यो जिनमतश्रिता।
उच्चमानोऽपि चान्येन वार्यः सर्वप्रयत्नतः।।

अर्थ- जिनमत के सच्चे श्रद्धानी को किसी का वास्तविक दोष दिखने पर भी उसे नहीं कहना चाहिए। कोई दूसरा उस दोष को कह रहा हो तो उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।

ब्रुवाणो लोकविद्वेषकरणं शासनाश्रितम्।
प्रतिपद्य चिरं दुःखं संसारमवगाहते।।

अर्थ- लोक में वीतरागी जिन-शासन संबंधी, विद्वेष फैलानेवाले दोष को जो कहता है, वह दुःख पाकर संसार में भटकता है। इसलिए हे धर्मवत्सलजनों! दोष करने से एवं कहने से दूर ही रहो।

इसप्रकार सुदर्शन मुनिराज का उपदेश सुनकर प्रसन्न होकर सभी अपने-अपने घर की ओर शान्त मन से गए। मुनिराज भी अपने ध्यान में लीन हो गए।

×××××

पूर्व में भी वेदवती के पिता उसे समझाते थे, जब वह मुनियों की हँसी करती थी, तब उससे कहते थे कि बेटी! **मुनि हम संसारियों से श्रेष्ठ होते हैं, उनकी हँसी नहीं करनी चाहिए। ये वीतरागी मुनि परमपूज्य होते हैं। हम रागियों को राग से मुक्त करानेवाले होते हैं। उन्हीं से धर्म चलता है। यदि ये न हों तो हमें कौन संबोधित करेगा? हमारे दुःख कौन हरेगा? इनकी हँसी के पाप के फल से जगत् में हम हँसी के पात्र बनते हैं। नरक निगोद आदि गतियों में भटकते हैं। उनकी भक्ति हमें संसार-समुद्र से पार लगाती है। इसलिए इनकी श्रद्धा करो, भक्ति करो, इन्हें आहार दो, इनकी वैयावृत्ति करो। इनके दर्शन भी दुर्लभ हैं, समागम तो और भी दुर्लभ है।**

पूर्व में पिता के उपदेश के स्मरण से तथा प्रत्यक्ष में धर्मनिंदा का प्रत्यक्ष फल देखकर उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हुई। उसने श्राविका के व्रत लिए। देवगुरुधर्म के प्रति भक्तिमय रहने लगी।

वेदवती अनुपम सुंदरी थी। उसके सौंदर्य की चर्चा चारों ओर होने लगी थी, हर कोई उसे पाना चाहता था, उसे पाने में ही जीवन की सार्थकता समझ रहा था। अनेक राजकुमार भी उसके सौंदर्यजाल में फंसे हुए थे।

मृणालकुण्ड नगर का राजकुमार शम्भू उसे पाने के लिए बहुत लालायित था। पर श्रीभूति की प्रतिज्ञा थी किः-

''मिथ्यावासनावाला पुरूष भले ही धन में कुबेर के समान हो तो भी उसके लिए अपनी कन्या नहीं दूंगा। मैं अपनी कन्या देव शास्त्र गुरू के श्रद्धानी को ही दूंगा।

शम्भू को श्रीभूति की प्रतिज्ञा का पता चला, तब उसे बहुत गुस्सा आया। क्योंकि वह स्वयं मिथ्या-वासनावाला था। वेदवती को पाने के लिए उसने रात में सोये हुए श्रीभूति पुरोहित को मारा। श्रीभूति प्रतिज्ञा एवं जिनधर्म के प्रभाव से देव हुआ।

शम्भू ने वेदवती का अपहरण किया। पिता को मारे जाने से वेदवती शम्भू पर बहुत क्रोधित थी ही अपहरण करने पर और भी क्रोधित हुई। शम्भू ने उसके साथ जबरदस्ती कर उसका आलिंगन चुंबन किया, तब क्रोध से लाल आंखोंवाली वेदवती ने शम्भू से कहा -

अरे पापी, अरे नीच, नराधम? तुने मेरे धर्मात्मा पिता को मारकर पहला महापाप किया है। इच्छा न होते हुए भी मेरे साथ जबरदस्ती कर दूसरा महापाप किया है। यद्यपि मेरे पिताजी परलोक चले गए, परंतु मैं उनकी इच्छा का मान रखूंगी, मिथ्या वासनावाले पुरूष को चाहने की अपेक्षा मर जाना पसंद करूँगी।

और सुन, तेरे विनाश का कारण मैं ही बनूंगी। इतना कहकर वेदवती आँखों में गुस्सा लिए वहाँ से चली गई। उसके गुस्से से ड़रा शम्भु उसे रोकने की हिम्मत नहीं जुटा सका।

वेदवती ने वहाँ से निकलकर **हरिकान्ता आर्यिका** के पास दीक्षा ली। उसने बहुत कठोर तपश्चरण किया। तपश्चरण से उसका शरीर सूखकर कांटा हो गया। शरीर में मांस का नामो-निशान नहीं था। केवल हड्डियों का ढांचा रह गया था। ऐसा कठोर तपश्चरण कर समाधि के साथ मरण कर वह ब्रह्मस्वर्ग में देवी हुई। यहाँ उसका नाम **अमृतमती** था। ब्रह्मस्वर्ग में धनदत्त (राम) का जीव देव था, वह उसकी देवी बनी। स्वर्ग से आकर वह राजा चक्रध्वज की चित्तोत्सवा नाम की बेटी बनी।

×××××

मिथिला नगरी के राजा जनक की विदेहा नाम की एक सुंदर रानी थी। वह जब गर्भवती थी तब एक महाकाल नाम का देव उसके गर्भ में स्थित संतान के जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था। वह देव इस तरह प्रतीक्षा क्यों, किसलिए कर रहा था? उसके पीछे उसके पूर्वजन्मों की कहानी है, जो इस प्रकार है-

चक्रपुर नगर में चक्रध्वज राजा था। उसके चित्तोत्सवा नाम की कन्या थी। वह गुरू के घर पढने जाती थी। वहीं राजपुरोहित का बेटा पिंगल भी जाता था। दोनो में प्रेम हुआ। प्रेम के कारण दोनों विद्या प्राप्त नहीं कर सके।

पिंगल चित्तोत्सवा को भगाकर बहुत दूर विदग्ध नाम के नगर में ले गया। जहाँ उन्हें कोई नहीं पहिचानता था, वहाँ झोपड़ी बनाकर रहने लगे। पिंगल मजदूरी करता, लकडियाँ बीनता, बेचता, इस तरह रोटी की व्यवस्था करता था। वे दोनों शांति से जीवन बीता रहे थे।

एक दिन विदग्ध नगर के राजा का बेटा कुण्डलमंडित घूमने निकला। जब वह नगर के बाहर गया, तब उसकी निगाह झोपड़ी के बाहर काम करती चित्तोत्सवा पर पड़ी। उसकी निगाहें उसी पर टिकी रहीं। वह उसकी सुंदरता से काम के पांचों बाणों से

घायल हो गया था। उसने एक विश्वस्त दासी को धन का लोभ देकर उसके पास भेजा। और कहा कि किसी भी प्रकार से, कैसे भी हो, उसे ले आओ, नहीं तो मैं उसके बिना जी नहीं पाऊँगा।

दासी बडी चालाक थी, उसने उसे झूठीं, मीठीं बातों में फंसा कर राजमहल में लाकर कुण्डलमंडित को सौंपा।

थके हारे पिंगल ने घर आकर चित्तोत्सवा को नहीं देखा, तब उसने उसे कई जगह ढूंढा। नहीं मिली, तब वह कुण्डलमंडित राजकुमार के पास सहायता के लिए गया। उसने राजकुमार से कहा-मेरी स्त्री का अपहरण हुआ है, आप मेरी सहायता कीजिए- यह कहता हुआ वह उसके चरणों पर गिरा, गिड़गिड़ाया, राजकुमार ने इशारे से एक धूर्त मंत्री को बुलाकर कहा- देरी मत करो, इसकी स्त्री को ढूंढकर लाओ। मंत्री उसके ईशारे को समझ गया। उसने तुरंत झूठ ही कहा- मैंने इसकी स्त्री को पोदनपुर के रास्ते पर आर्यिकाओं के समूह में देखा है। शायद वह दीक्षा लेने गई है। पिंगल ने कहा- अरे पुरूष जल्दी कर, जा उसे लौटा ला, नहीं तो उसकी दीक्षा के बाद तेरे प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे। वह तुरंत तेज भागता -भागता पोदनपुर के रास्ते गया। उसने वहाँ पर, वनों, उपवनों, मंदिरों में सभी जगह उसे ढूंढा, परंतु वह होती तो मिलती? थका हारा, निराश पिंगल राजकुमार के पास पुनः अपनी फरियाद लेकर आया, पर राजकुमार स्वयं अन्यायी था, उससे न्याय की क्या आशा रखें? पिंगल से स्वयं को परेशान समझकर कुण्डलमण्डित ने उसे दूर भगाने की आज्ञा दी, लोगों ने उसे लातों, डंडों से पीटते हुए बहुत दूर भगा दिया। वहाँ से निकल कर पैर जिस रास्ते पर ले जाते, या रास्ता उसे जिधर ले जाता, उधर चलता रहा। भीख में मिले भोजन से पेट भरता। मन में बेहद निराशा लिए वह भटकता रहा।

एक दिन पुण्योदय से उसे **आर्यगुप्त** नाम के आचार्य के दर्शन हुए। उसने आचार्यश्री के दर्शन बड़ी विनय के साथ किए, उनसे शांति का मार्ग पूछा। आचार्यश्री ने कहा-शांति का उपाय एकमात्र संयम है- इसलिए शांति चाहते हो तो संयम धारण करो। यह सुनकर उन्हीं से तुरंत दीक्षा ली, वह धर्म के मार्ग पर आया। सो ठीक ही है, क्योंकि **दुःखी दरिद्री, भाई बन्धुओं से रहित, रोग से पीड़ित मनुष्यों की बुद्धि ही प्रायः धर्म में लगती है**, यही कहा है-

दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः।
व्याधिसंपीडितानां च प्रायः भवति धर्मधीः।।

दीक्षा के बाद पिंगल मुनि ने बहुत ही कठोर तप तो किया, परंतु मन के किसी कोने में चित्तोत्सवा बैठी ही रही, यदा-कदा उन्हें उसकी याद आती रहती थी। इसलिए वह कर्मों की विशेष निर्जरा नहीं कर पाये, सिर्फ कुछ पुण्य बांध पाये, जिसके कारण वे महाकाल नाम का तेजस्वी असुर बने। अपने अवधिज्ञान से उन्होंने जान लिया था कि इस समय उनकी पूर्व प्रिया चित्तोत्सवा और शत्रु कुण्डलमंडित का जीव कहाँ हैं?

×××××

उधर कुण्डलमंडित चित्तोत्सवा में आसक्त हो गया था, उसे उसके शत्रु राजा अनरण्य के सेनापति ने युद्ध में अनायास ही हराया था। कुंडलमंडित भटकता भटकता जंगल में मुनिसंघ में धर्म का स्वरूप सुनकर अणुव्रती श्रावक बना। महापराक्रमी मामा शत्रुओं को हराने में उसकी सहायता अवश्य करेंगे - यह सोचता हुआ, मामा के नगर की ओर जा रहा था, पूर्व पापकर्म के उदय से उसके शरीर में भयंकर रोग उत्पन्न हुए। शरीर की संधियाँ तेजी से गल गईं, नाजुक अंगों में भारी दर्द होने लगा। परंतु उसने परिणामों की शांति नहीं छोड़ी, मरकर देव पर्याय के बाद इस समय जनक की पत्नी विदेहा के गर्भ में पुत्र के रूप में था।

चित्तोत्सवा धर्म में मन लगाकर मरकर स्वर्ग गई थी, वह जीव भी उसी समय स्वर्ग से निकलकर विदेहा के गर्भ में कुण्डलमंडित के जीव के साथ पुत्री के रूप में था।

पिंगल का जीव जो इस समय महाकाल नाम का तेजस्वी असुर बना था। अपने पूर्व जन्म के शत्रु का बदला लेने के लिए उसके जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने विचार किया कि यदि उसे गर्भ में ही मारता हूँ तो रानी विदेहा भी मर जाएगी। दो गर्भ को धारण करनेवाली रानी को मारने में मेरा क्या प्रयोजन? इसलिए वह उनके जन्म की प्रतीक्षा कर रहा था।

×××××

समय पर विदेहा ने एक पुत्र[1] और एक पुत्री[2] को जन्म दिया। जन्म होते ही महाकाल असुर ने विचार किया कि मुझे दुष्टा चित्तोत्सवा के जीव से भी क्या प्रयोजन? मात्र पुत्र को भारी दुःख पहुंचाऊँगा, यह सोचकर वह मात्र पुत्र को उठाकर आकाश की ओर दूर ले गया। उसने विचार किया कि इसे पत्थर पर पछाड़ कर मार डालूँ ? लेकिन तुरन्त ही उसके विचार बदल गए- उसने सोचा-**बुद्धिमान को संसार बढानेवाले काम नहीं करने चाहिए।** पूर्व जन्म में मैंने मुनिभेष में तपरूपी कवच धारण करते हुए तिनके को भी दुःख नहीं पहुँचाया। तप के कारण आज दिव्यकांतिवाले शरीर को पाया है। **इकट्ठा किया हुआ थोड़ा-सा पाप भी बहुत विस्तार को प्राप्त होता है।** इन विचारों से उसके मन में बालक के प्रति दया उत्पन्न हुई, उसने मारने का विचार छोड़ दिया। बालक के कान में दिव्य कुंड़ल पहिनाकर उस बालक को पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा धीरे से छोड़, वहाँ से चला गया।

1. कुण्डलमण्डित का जीव।
2. पूर्व की चित्तोत्सवा का जीव।

पर्णलघ्वी विद्या के कारण बालक धीरे-धीरे धरती की ओर आ रहा था, उसी समय वहाँ से चंद्रगति नाम का एक निःसंतान विद्याधर जा रहा था। उसने बालक को देखा। उसने बालक को अधर में ही पकड़ कर उसे लेकर घर पर सोई हुई पत्नी के पास रखा। उसे जगाकर कहा देख, तेरे पुत्र हुआ है। तू बेकार ही कहती रहती थी कि मैं निःसंतान हूँ। उसकी पत्नी ने कहा- हे देव, मुझ दुःखियारी को झूठ कहकर क्यों और दुःखी कर रहे हो?

नहीं देवी, मेरा यह आशय नहीं है, मैं आपको दुःखी नहीं कर रहा हूँ। कईं महिलाओं के गुप्त गर्भ रहता है। आपके भी गुप्तगर्भ रहा है। हे देव, **झूठी तसल्ली से स्थायी समाधान नहीं होता।** हे प्रिय, मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है? हे देव, यह बालक मेरा ही सही पर यह तो बताओ कि इसके कान में ये दिव्यकुण्डल कहाँ से आये?

असहाय निरूत्तर होकर चंद्रधर विद्याधर ने बालक की सारी हकीकत बता दी। उन्होंने उसके जन्म का बड़ा उत्सव मनाया। कानों के दिव्यकुण्डलों की आभा से उसका शरीर दमक रहा था, इसलिए उसका नाम **भामण्डल** रखा।

×××××

पुत्र के अपहरण से विदेहा को बहुत शोक हुआ। जिस प्रकार पश्चिम दिशा में सूर्य अस्त हो जाता है, सिर्फ संध्या रह जाती है, उसी प्रकार उसका पुत्र कहीं अस्त हो गया था, सिर्फ पुत्री रह गई थी, उसने पूर्व जन्मों में किसी के पुत्र का वियोग कराया होगा, उसी कर्म की परिणति सामने आयी थी। उसी ने फल दिखाया था। क्योंकि **बिना बीज के पेड़ नहीं होता, वैसे ही बिना कारण कार्य नहीं होता।**

अनेक आशंकाओं के साथ उसने बहुत दुःख किया। तब जनक ने इन शब्दों से उसे तसल्ली दिलायी कि आपको पुत्र के

दर्शन अवश्य होंगे। उसे खोजने के हम प्रयास करेंगे। **इच्छित वस्तु पूर्व कर्म के प्रभाव से अभी दिखती है, कभी नहीं दिखती है, पुनः दिखने लगती है।** इसलिए पाप का कारणभूत शोक बन्द कीजिए, मन में शांति रखिए।

सबके लाड़प्यार के साथ बड़ी होनेवाली बालिका को पृथ्वी की समानता के कारण लोग **सीता** कहने लगे। वह सर्वांग सुन्दरी कब बड़ी हुई, पता ही नहीं चला।

राजा जनक ने सीता का विवाह राम के साथ करना निश्चित किया था। इस तरह के निर्णय के पीछे की कहानी इसप्रकार है-

विजयार्ध पर्वत के दक्षिण और कैलाश पर्वत के मध्य में अर्धवर्वर नाम का देश है। जिसमें असंयमी म्लेच्छ रहते थे। देश की राजधानी मयूरमाल थी। वहाँ का राजा आन्तरंगतम था। वह अनेक आर्य देशों को जीतता हुआ जनक के देश मिथिला तक आया था। जनक ने परस्पर मित्रता होने के नाते दशरथ से सहायता पाने के लिए दूत के द्वारा कहलवाया-

''हमारा देश म्लेच्छ राजा आन्तरंगतम की सेना से घिर चुका है। यह राजा अनेक आर्य देशों को म्लेच्छ बनाता हुआ समस्त प्रजा को म्लेच्छ बनाने के लिए आया हुआ है। जब प्रजा नष्ट या भ्रष्ट हो जाए तो हम किसलिए जीवित रहें? तथा प्रजा म्लेच्छ होने पर धर्म नष्ट हो जाएगा। यह कठिन दिख रहा है कि हम अपना जीवन देकर भी धर्म की रक्षा कर पाऐंगे, अतः आपसे सहायता की अपेक्षा है। **राजा के आश्रय से धर्म टिकता है, बढता है, धर्मरक्षा से राजा को धर्म का छठा भाग प्राप्त होता है। कहा भी है-**

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः।
षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात्।।

अर्थ- जिस देश का आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं, उनकी रक्षा के कारण राजा तप का छठा भाग प्राप्त करता है।

राजा दशरथ ने राम को बुलाकर कहा कि हम सेना के साथ हमारे मित्र जनक की सहायता के लिए जा रहे हैं। हमारे आने तक आप राज्य का कार्य देखिए। तब राम ने कहा- आप यहाँ रहिए, मैं अकेला जाकर जीतकर आऊंगा।

दशरथ ने कहा- हे पद्म (राम)? अभी तुम बालक हो।

राम ने जवाब दिया- छोटा अग्निकण बड़े वन को जला देता है, बाल भास्कर अकेला ही घोर अन्धकार को नष्ट कर नक्षत्रों की कांति फींकी कर देता है। सेना से क्या प्रयोजन है? मैं अकेला ही उन म्लेच्छों को नष्ट करके आता हूँ।

पिता माता का आशीर्वाद लेकर, राम अकेले ही जनक के पास गए। लक्ष्मण से रहा नहीं गया तो वे भी राम के साथ गए थे। दोनों ओर से युद्ध हुआ। जनक के भाई कनक को शत्रु सेना ने घेर लिया था, तब राम ने शत्रुसेना को अपने पराक्रम से परास्त कर कनक को बचाया, जनक को युद्ध में जीत दिलायी।

जनक ने युद्ध में सहायता के बदले में सीता का विवाह राम के साथ करना तय किया था।

×××××

सीता का राम से विवाह तय होने का समाचार सुनकर सीता को देखने की इच्छा से नारद सीता के महल पहुँचा। उस समय सीता दर्पण में अपने रूप को निहार रही थी। दर्पण में अचानक जटाओं के कारण भीषण दिखने वाले नारद के विकराल से रूप को देखकर ड़र गई। उसके मुँह से चीख निकल गई। उसकी चीख सुनकर रक्षक स्त्रियाँ आईं। थोड़ी ही देर में सैनिक भी आ गए। नारद ड़र गया। घबरा गया। वह जैसे-तैसे जान बचाकर वहाँ से भाग कर कैलाश पर्वत पर गया। वहाँ भी वह कांप रहा था। जब वह शांत हुआ, तब उसने अपने अपमान का बदला लेने की सोची।

नारद ने सीता का सुंदर चित्र बनाया। उसे लेकर रथनूपुर नगर गया। वहाँ एक सुंदर उद्यान में ऊँचे स्थान पर उस चित्र को रखकर पास ही छिप गया। एक दिन भामण्डल वहाँ गया था। चित्र को देखकर कामभावना से इतना व्याकुल हो गया कि लज्ञा आदि सबको भूल गया। उसकी ऐसी हालत देखकर नारद उसके सामने आया। नारद से चित्र में चित्रित सुंदरी के विषय में पूछा। नारद ने उसका सारा परिचय बता दिया।

चन्द्रगति विद्याधर ने पुत्र की स्थिति देखकर उसका विवाह सीता से कराने का संदेश देकर एक दूत को जनक के पास भेजा और जनक को लाने के लिए कहा।

वह दूत घोड़े का मायामयी रूप बनाकर जनक को पीठ पर रखकर चन्द्रगति के पास लाया। चन्द्रगति ने अपना परिचय देकर पुत्र के लिए सीता की मांग की। जनक ने कहा- कि मैं आपकी यह इच्छा पूरी नहीं कर सकता। क्योंकि मैं राम के साथ सीता के विवाह का वचन दशरथ को दे चुका हूँ। उसके पीछे की कहानी चंद्रगति विद्याधर को सुनायी।

चंद्रगति विद्याधर ने कहा- आप उस सम्बन्ध को तोड़ कर पुत्री हमारे पुत्र को दीजिए। क्योंकि राम भूमिगोचरी सामान्य मनुष्य है। हम विद्याओं के मालिक श्रेष्ठ विद्याधर मनुष्य हैं। वे हमारी बराबरी नहीं कर सकते।

जनक ने कहा- भूमिगोचरी सामान्य मनुष्य नहीं होते हैं। जगद् उद्धारक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र जैसे महापुरुष जिनमें उत्पन्न होते हैं, ऐसे भूमिगोचरी, सामान्य मनुष्य कैसे हो सकते हैं? **पूर्णसंयम भूमिगोचरियों के ही होता है।** विद्याधर भी विद्या का त्याग करने पर ही पूर्णसंयम ग्रहण कर सकता है। अतः मेरी दृष्टि में भूमिगोचरी विद्याधरों से श्रेष्ठ होते हैं।

भूमिगोचरी **मनुष्य संयम के द्वारा इन्द्र को भी चरणों पर नमवाता है**, तब उसके सामने विद्याधर क्या है?

चन्द्रगति ने विचार करके जनक से कहा- हे राजन्, यदि ऐसा है, आप उनकी इतनी प्रशंसा कर रहे तो मेरी एक शर्त सुनो- हमारे पास वज्रावर्त और सागरावर्त दो धनुष हैं। इनकी रक्षा देव करते हैं। राम और लक्ष्मण इन पर ड़ोरी चढा देंगे तो हम जानेंगे कि उनमें शक्ति है, तब आप अपनी पुत्री राम को दीजिए। हम कुछ नहीं कहेंगे, परंतु यदि वे ऐसा नहीं कर पाए तो हम आपकी पुत्री जबरदस्ती ले आएंगे।

जनक ने कहा- ठीक है।

चन्द्रगति विद्याधर स्वयं अनेक विद्याधर राजाओं के साथ उन धनुषों को लेकर मिथिला आए। साथ में जनक भी थे। जो धनुषों की विशालता देखकर घबराए हुए थे।

धनुष को उचित स्थान पर रखवाया गया। राम लक्ष्मण को घटना की जानकारी के साथ निमंत्रण देकर बुलाया गया। अन्य अनेक राजाओं को भी निमंत्रित किया, धनुषों पर ड़ोरी बांधने को स्वयंवर की शर्त का रूप दिया गया। सीता के सौंदर्य की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी, अतः दूर-दूर से अनेक राजा आए थे।

स्वयंवर शुरू हुआ। राजाओं ने प्रयास किए। कोई भी धनुषों पर ड़ोरी चढाने में सफल नहीं हुआ। धनुष पर ड़ोरी चढाना तो बहुत दूर, कोई उन्हें छू भी नहीं पाया, क्योंकि जब भी कोई उनके पास जाता, उनकी तेज रोशनी से आँखें चौंधियाती थीं। राजा के पास आते ही वे अग्नि छोड़ते थे।

सब राजाओं के बाद राम की बारी आयी, तब राम के पास आते ही धनुष से निकलने वाली अग्नि राम के पुण्योदय से शांत हुई। बिना विशेष प्रयास के राम ने ड़ोरी चढा दी। धनुष उठा लिया और उस पर बाण चढाकर विद्याधरों की ओर देखने लगे। तब ड़रे

हुए विद्याधरों ने राम, लक्ष्मण से क्षमा मांगकर उनकी अधीनता स्वीकार की। चंद्रगति विद्याधर ने अपनी अठारह कन्याएं लक्ष्मण को देना स्वीकार किया।

सीता का बड़े ठाठ-बाट से राम से विवाह सम्पन्न हुआ। विद्याधर अपने देश लौट गए।

चन्द्रगति विद्याधर ने अपने पुत्र भामण्डल को स्वयंवर के समाचार सुनाए। भामण्डल ने कहा आपका विद्याधर होना व्यर्थ है, क्योंकि आप साधारण भूमिगोचरी से परास्त होकर आए हो, मैं स्वयं जाकर युद्ध करूंगा युद्ध में भूमिगोचरियों को जीतकर सीता को लेकर आऊँगा। यह कहकर वह मिथिला की ओर चल दिया।

जब वह आकाश मार्ग से आ रहा था। तब उसकी नजर विदग्ध नगर की ओर गई। उसे ''उस नगर को देखकर ''मैंने पहले कभी उसे देखा है''-ऐसा लगा। उसने बुद्धि पर और जोर दिया, तब उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह पूर्व घटनाओं को याद कर बेहोश हुआ। साथी उसे बेहोश हालत में चंद्रगति के पास ले गए। उपचार के बाद होश आया। तब चंद्रगति के पूछने पर उसने कहा-

पिताजी, मुझे धिक्कार है, **इस संसार को धिक्कार है, जिसमें अज्ञानता में यह प्राणी न जाने क्या क्या पाप करता है?** मुझे ही देख लीजिए- मैं अज्ञानता में क्या कर रहा था- जो मेरे साथ, एक साथ एक ही माँ के गर्भ में रही, ऐसी सगी बहन को पत्नी के भाव से देख रहा था। साथ ही उसने पूर्वजन्म की सारी घटनाएं भी बता दीं और इस जन्म की भी। उसे बहुत ही आत्मग्लानि हुई।

चन्द्रगति ने संसार की विचित्रता देखकर **मुनि सर्वभूतहित,** जो उस समय अयोध्या के पास स्थित महेन्द्रोदय नामक उद्यान में थे। उनके पास जाकर दीक्षा ली। साथ में भामण्डल आदि अनेक विद्याधर थे, उन्होंने मुनि के नाम से ऊंची आवाज में जयकारे

लगाए। वे जयकारे अयोध्यावासियों को आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, भामण्डल ने 'श्रीराम जयवन्त रहें' ऐसा बार-बार उद्घोष किया और 'कनक जिनका बडा भाई है, ऐसे जनक का मैं पुत्र हूँ' इन शब्दों में अपना परिचय दिया।

महल में सीता के कानों में ये शब्द पड़े। तब सीता भाई को यादकर जोर-जोर से रोने लगी, तब सांत्वना देते हुए राम ने कहा- **चतुर व्यक्ति मरे हुए, हारे हुए, खोए हुए व्यक्ति का शोक नहीं करते।** यदि यह आपका वही खोया हुआ भाई है तो अभी जाकर देखते हैं, हाथ कंगन को आरसी क्या?

राम, सीता, दशरथ आदि सारा राजपरिवार एवं अनेक अयोध्यावासी मुनि के दर्शन के लिए आए, जहाँ पहले से ही अनेक विद्याधर राजा अपने विशाल समुदाय के साथ विराजमान थे। इतनी अधिक संख्या में विद्याधरों को देखकर सबको आश्चर्य हुआ। धीरे-धीरे सभी को चंद्रगति विद्याधर के वैराग्य और मुनि बनने के समाचार का पता चला।

राजा दशरथ मुनिराजों को नमस्कार कर एक ओर बैठ गए और समस्त घटना का मूल पूछा। तब मुनि सर्वभूतहित ने अवधिज्ञान के द्वारा सीता, भामण्डल के पूर्वभव और वर्तमान जीवन की घटनाएं बतायीं।

भुजाएं ऊपर उठाए दौड़ती हुई सीता बिछुड़े हुए भाई के गले से ऐसे लिपटी, जैसे आत्मा शरीर में लिपटी रहती है। ''हे भाई, मैं तुम्हें पहली बार देख रही हूँ, हे भाई, आपने मुझे, माँ, पिताजी को आज कितना सुख पहुँचाया है, इसे हम शब्दों से बता नहीं पाएंगे''- ऐसे शब्दों से मिलन में गाढापन लिए बार-बार गले मिली, उसके माथे को चूमा। भामण्डल ने कहा-बहन मैं भी अपनी खुशी को शब्दों से कह नहीं सकूंगा। बस, इतना समझो कि मुझे खुशियों से भरा नया जीवन मिला है।

गले मिलते हुए न केवल भाई-बहन की, बल्कि इस मिलन को देखनेवाले हर व्यक्ति की आँखें खुशियों के आंसुओं से नम थीं।

मुनि को नमस्कार कर राजा दशरथ अयोध्या लौट आए। उन्होंने भामण्डल के मिलने का समाचार जनक तक पहुंचाया।

जनक पत्नी विदेहा के साथ अयोध्या आए। भामण्डल के मिलने की खुशी में राजा दशरथ ने अयोध्या में महा-उत्सव मनाया।

कुछ दिनों के बाद भामण्डल सबसे आज्ञा लेकर अपने देश चला गया। **पुण्य का उदय हो तो क्या नहीं हो सकता? जिसका स्वप्न में भी नहीं सोचा ऐसे पुत्र भामण्डल का मिलन जनक, विदेहा, सीता से हुआ।** सच है-

पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिता :।
कर्मणामुचितं लोकः सर्वफलमुपाश्नुते।।

अर्थ- संसार में प्राणी पुण्य से सुख पाता है, पाप से दुःखी होता है। सभी प्राणी अपने कर्मों के अनुरूप ही सब प्रकार के फल प्राप्त करते हैं।

राजा दशरथ सर्वभूतहित मुनि के पास गए। उनसे धर्म और पूर्वभव के बारे में पूछा। सर्वभूतहित मुनि से अपने पूर्वभव को सुनने के बाद से संसार से उदास हुए। **सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट है, निर्मलभाव ही मुक्ति का मार्ग है-** उसे आज मैंने पाया है- यह कहकर उन्होंने कुटुम्बीजनों से कहा मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिए।

सर्वभूतहित मुनि के पास भरत ने भी धर्म का उपदेश सुना था, उसे भी वैराग्य हुआ था। वह मन में सोचने लगा। पिताजी राजा हैं, उन्हें तो राज्यभार सौंप कर जाने की वजह से सब से आज्ञा लेनी पड़ रही है, पर मैं तो इस भार से मुक्त हूँ। मुझे किससे क्या पूछना? मैं अभी दीक्षा लेता हूँ।

भरत के भावों को चेहरे की आकृति से समझ गयी, ऐसी कैकयी भरत के पास ही खड़ी थी। भरत अभी दीक्षा ले सकता है,

इधर पति दीक्षा लेकर जा रहे हैं, उधर पुत्र भी दीक्षा लेगा- दो-दो सदमे एक साथ कैसे सहन कर पाऊँगी? यह सोच वह तुरंत दशरथ के पास गई और कहा-

हे प्राणनाथ! **स्नेह का बन्धन बडा कष्टकारी है, धातु से बनी बेड़ी से बंधा मनुष्य शनैः-शनैः मीलों तक दूर जा सकता है, पर स्नेह के बंधन से बंधा एक कदम भी नहीं चल पाता।** आप भाग्यवान हैं, जो इस बंधन से मुक्त हो रहे हैं। पर मैं इस बंधन में सिर से पैर तक जकड़ी हुई हूँ। इस समय उस बंधन को तोड़ने में असमर्थ हूँ। मैं आप से कहती हूँ कि इन्द्र के समान भोगों से पालित आपका यह शरीर भगवान के द्वारा कही हुई अत्यन्त कठिन दीक्षा, संयम को कैसे निभा पाएगा? इसलिए आप घर में रहकर ही श्रावकधर्म का पालन कीजिए। इससे आप हमारे सामने रहेंगे और आपका धर्मपालन भी होगा।

दशरथ बोले- अरे प्रिये, **समर्थ के लिए क्या कठिन और क्या आसान? शरीर को तो जैसा रखोगे, वैसा रहेगा, वह तो जड़ है, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीक्षा, संयम भाग्यवन्तों को प्राप्त होते हैं। संयम इन्द्र को भी चरणों पर झुकाता है। संयम नहीं ले पाने के कारण इन्द्र फूट फूट कर रोता है और सोचता है कि ''मैं संयम नहीं ले पाता हूँ, व्यर्थ है मेरा वैभव और स्वर्ग का राजपद'', मैं इसीलिए दीक्षा के विचार को सर्वोत्तम मानता हूँ, उस अवसर को धन्य घड़ी मानता हूँ।** आप हमारे संयम की अनुमोदना करो। **अनुमोदना से भी उतना ही पुण्यलाभ होता है, जितना उसको ग्रहण करने से होता है। इसलिए संयम और संयमधारियों की सदा अनुमोदना करो।**

कैकयी ने सोचा प्राणनाथ नहीं मानेंगे। पुत्र के लिए ही प्रयास करूँ। यह सोचकर उसने दशरथ से कहा-आपको याद है मेरा वचन आपके पास सुरक्षित है, सो मैं आज आपसे निवेदन

करती हूँ कि मेरे पुत्र भरत को राज्य दीजिए, वरना वह भी आपके समान दीक्षा लेकर चला जाएगा।

दशरथ ने कहा- इसमें कौनसी कठिनाई है। मैंने उसे राज्य दे दिया। उसके राज्याभिषेक की तैयारी कीजिए। फिर राम को बुलाकर कहा-

हे वत्स! एक बार युद्धकला की जानकार कैकयी ने जब मैं संकट में फंसा था, प्राण बचने की संभावना नहीं बची थी, तब उसने सारथी का काम बखूबी निभाकर मेरे प्राण बचाये थे। उस समय सभी राजाओं के सामने मैंने कहा था- हे प्रिये! युद्ध में आप ने हमारे प्राण बचाए, उसके बदले आप जो इच्छा हो मांगिए, मैं आपको दूँगा। तब तो उसने कुछ नहीं मांगा, सिर्फ यह कहा कि यह वचन आपके पास धरोहर की तरह सुरक्षित रखिए, किसी समय मांग लूंगी।

आज उसने भरत के लिए राज्य मांगा है। आप समझदार हो, मैं क्या कहूँ? मैं दीक्षा के लिए जा रहा हूँ। यह कहकर दशरथ तो दीक्षा हेतु चले गए।

राम सोचने लगे कि मेरे रहते हुए भरत निश्चिंत होकर राज्यभार संभाल नहीं पाएगा। इसलिए उन्होंने राज्य की सीमा से बहुत दूर जाने का निर्णय किया।

भरत को जब ये समाचार मिले कि उसे राज्य संभालना है, तब उसने मना किया। राम ने उसे समझाया कि इसमें पिताजी की बदनामी होगी। पिता की आज्ञा नहीं पालने का आपको दोष लगेगा। माँ की इच्छा का अपमान होगा, घर रहकर भी श्रावकधर्म का पालन कर सकते हो, समय आने पर दीक्षा भी लीजिए।

राम के गंभीर शब्दों से भरत निरूत्तर हो राज्य संभालने के लिए तैयार हो गए, पर बेमन से।

राम के राज्य से दूर जाने के समाचार आग की तरह चारों ओर फैल गए। सब राम के महल की ओर राम को मनाने के लिए भागे-भागे आ गए। लक्ष्मण सबसे पहले आकर राम को मनवाकर उनके साथ जाने की तैयारी कर रहे थे। सीता भी राम के साथ जाने के लिए जिद कर रही थी, तब राम ने उसे खूब मना किया। कहा-

हे प्रिये, तुम यहीं पर सुख से रहो।

सीता- हे स्वामी आपके बिना यहाँ सुख कहाँ है ?

राम - हे सीते, जहाँ मैं जा रहा हूँ, वहाँ पृथ्वी पत्थरों से भरी है।

सीता- पर आपका वियोग पत्थरों से भी भारी है।

राम- वहाँ भोजन पानी का ठिकाना नहीं।

सीता- यहाँ आपके बिना जीवन का ठिकाना नहीं । **भोजन पानी तो पुण्याधीन होते हैं।**

राम- वहाँ सर पर छत नहीं होगी।

सीता- आप का साथ हो तो सर पर छत की क्या आवश्यकता है? आप ही मेरी छत हो, आपके संग में शांति तो रहेगी।

राम- जंगल विकराल होते हैं, जिनमें सुख खोजने पर भी नहीं मिलता।

सीता- आपके संग के अलावा मुझे अन्य सुख की इच्छा नहीं है। **जीव ने नरकों में अनंत बार जंगल से अनंत गुना ज्यादा यातनाएं भोगी हैं, उनके सामने जंगल की विकरालता कुछ भी नहीं है।**

राम- अच्छा, मैं हारा, आप चलिए।

सीता- आप हारे नहीं, आप तो मेरे (कण्ठ के) हार हो। मैं आपकी कभी भी हार नहीं चाहती, सदा जीत ही चाहती हूँ।

राम, सीता, लक्ष्मण जाने लगे, तब सभी माताएं उनको रोक रही थीं, तब राम ने उन्हें पिता की आज्ञापालन नहीं करने से होनेवाली बात के बारे में समझाया और समझाया कि हमारे रहते भरत ठीक से राज्य संभाल नहीं पाएंगे। हमारे जाने में भरत और

प्रजा दोनों का हित है।

कौशल्या के भारी अनुरोध को यह कहकर दूर किया कि जब मैं रहने का ठिकाना निश्चित करूंगा, तब आपको वहाँ अवश्य ले जाऊंगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

राम, लक्ष्मण, सीता माँओं को प्रणाम कर वहाँ से दक्षिण दिशा की ओर आधी रात को निकल गए और उस रात राजधानी से बाहर बने मंदिर में ठहर गए। दूसरे दिन प्रातः सीता को बीच में रखकर यात्रा करते हुए वे **परियात्रा** नाम के जंगल में पहुँच गए। जिसके किनारे पर शर्वरी नदी थी। ऐसे जंगल और नदियाँ पार करते हुए उन्हें छह दिन बीत गए। तब भरत, जिसका मन राज्य संभालने में नहीं लग रहा था, वह पहुँच गया। कैकयी भी साथ थी, भरत ने कहा- आप चलिए, राज्य संभालिए। कैकयी ने भी समर्थन किया। राम ने कहा- **क्षत्रिय स्वीकृत किए कार्य से विमुख नहीं होते हैं।** और भी अनेक शब्दों से उनको समझाकर राम ने भरत और कैकयी को लौटाया। आगे बढ गए।

भरत का मन अयोध्या लौट आने पर बेचैन रहता था, भरत ने प्रतिज्ञा की कि राम को देखते ही वे दीक्षा लेंगे। **जिनभक्ति से बढकर कोई पुण्यकार्य नहीं**- यह समझकर वह रात-दिन जिन भक्ति में लीन रहते थे। न सूर्य, न चन्द्र की ओर देखते थे। अर्थात् वे भगवान की भक्ति में इतना लीन रहते थे कि उन्हें न दिन का पता रहता था, न रात का।

इधर सीता, राम, लक्ष्मण क्रम-क्रम से चित्रकूट वन को पार कर अवन्ति देश में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक वीरान देश को देखा। उन्होंने सोचा इतना सुंदर प्रदेश होने पर भी मनुष्यों के बिना शोभा नहीं दे रहा है, क्या कारण है कि यह देश वीरान है?

सीता थकी हुई थी, भूख-प्यास से व्याकुल हो रही थी। राम ने लक्ष्मण से कहा- भाई तेरी भाभी बहुत थकी हुई है, भोजन-

पानी की व्यवस्था करो।

ठीक है, कहकर लक्ष्मण एक ऊंचे पेड़ पर चढ इधर-उधर बस्ती देखने लगे। उन्हें उनकी ओर आता हुआ एक दीन-हीन मनुष्य दिखाई दिया। लक्ष्मण पेड़ से उतर कर उसके पास गए, उसे लेकर राम के पास आए। राम ने उसे पूछा यह प्रदेश वीरान क्यों है?

तब उसने कहा-

सिंहोदर नाम का राजा उज्जयिनी में राज करता है। यह प्रदेश उसी के राज्य में है। उसके अधीन रहनेवाला यहाँ का राजा वज्रकर्ण था। वह जन्म से क्रूर स्वभाववाला था, पाप कार्यों में आनंद मानता था। वह शिकार का व्यसनी था।

एक बार शिकार के लिए घने जंगल में गया। वहाँ कनेर वन के बीच में उसने मुनि को देखा। वे पक्षी के समान निशंक व सिंह के समान निर्भय थे। वज्रकर्ण ने मुनि से पूछा-

हे साधो! यह क्या कर रहे हो?

मुनि ने उत्तर दिया- जो पिछले सैंकडों जन्मों में भी नहीं किया जा सका, ऐसे आत्मा के हित के कार्य को कर रहा हूँ।

वज्रकर्ण ने कहा- आपके पास सुख की सामग्री तो है नहीं, आत्मा का हित कैसे कर रहे हो?

मुनि ने उसे समझाया- आत्मा का हित करने के लिए सामग्री नहीं चाहिए, बल्कि सामग्री का त्याग चाहिए। आशा और मोह में पड़े हुए प्राणियों को सामग्री चाहिए। जिसकी आशा और मोह नष्ट हो जाते हैं, उसे सामग्री की आवश्यकता नहीं रहती। खाज़वाला ही शरीर को खुज़ाता है, जिसे खाज़ ही न हो, वह शरीर को क्यों कर खुज़ाएं? मोह और इच्छा को नष्ट करने में ही सच्चा आत्महित है।

आप हजारों प्राणियों का सिर्फ इसलिए घात करते हो, क्योंकि तुम्हे मांस चाहिए। पर सोचो तो सही कितनी ही माँए

अपने छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर चरने के लिए आती हैं, वे तुम्हारें शस्त्रों से मारी जाती हैं, बच्चे भूखे प्यासे तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। न जाने अब तक कितने परिवार आपने नष्ट कर दिए होंगे, उन्होंने आपका क्या बिगाड़ा था?

हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः।
दीक्षितो गृह्यातो वा बुधो निर्मलमानसः॥

अर्थ- अहो, आत्मा का हित तो वह करता है, जो प्राणियों पर दया करने में तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल भावों का धारक हो, चाहे वह मुनि हो या गृहस्थ हो।

मुनि ने उसे धर्म का स्वरूप समझाया। उस पर मुनि के उपदेश का ऐसा असर हुआ कि उसने उसी समय प्रतिज्ञा ली कि **मैं देव, शास्त्र और मुनि को छोड़कर और किसी को नमस्कार नहीं करूंगा। सदा धर्म का पालन करूँगा-** इस तरह धर्म के अनेक नियम लेकर वह घर गया।

सिंहोदर राजा को वज्रकर्ण राजा की प्रतिज्ञा का पता चला, तब मानी, अहंकारी सिंहोदर ने सोचा वज्रकर्ण से उसकी बहन को मांगता हूँ, बहनोई होने के नाते उसे मुझे नमस्कार करना ही पड़ेगा। वैसे भी मैं उसका स्वामी हूँ, उसे मुझे तो नमस्कार करना ही चाहिए। उसने दूत के द्वारा अपनी बात वज्रकर्ण तक पहुँचाई। कहा - आप अपनी बहन देकर हमें नमस्कार करें, वरना सजा मिलेगी।

वज्रकर्ण ने मुनिसुव्रतनाथ भगवान की प्रतिमा बनवाकर अंगूठी में जड़वायी। उसी को आगे कर उसने सिंहोदर को नमस्कार किया। सिंहोदर उस समय यह सोचकर संतुष्ट हुआ कि इसने मुझे नमस्कार किया।

परंतु यह बात ज्यादा दिन छिपी नहीं रही। एक चुगलखोर ने राजा सिंहोदर को वह बात बता दी। सिंहोदर ने उसे मारने का

निश्चय करके किसी बहाने से अपने पास बुलाया था।

वज्रकर्ण को उसके मन की बात का पता नहीं था। वह भोले मन से कुछ सैनिकों के साथ सिंहोदर से मिलने के लिए जा रहा था। रास्ते में वज्रकर्ण को एक मनुष्य मिला। उसने कहा- सिंहोदर राजा को तुम्हारी अंगूठी में बनी प्रतिमा की बात पता चली हैः इसलिए वह आप पर क्रोधित हुआ है और तुम्हें मारने का निश्चय कर चुका है। आपको मरना हो तो भले ही उसके पास जाइए, नहीं तो यहीं से घर लौट जाइए।

वज्रकर्ण ने पूछा-तुम्हें कैसे पता चला?

तब उसने कहा-

मेरा नाम विद्युदंग है। मैं अच्छे सम्पन्न व्यापारी का बेटा हूँ। मैं वहाँ उज्जयिनी में व्यापार के लिए गया था, वहाँ की कामलता नाम की वेश्या को देखकर सब कुछ भूल गया। उसकी सुंदरता से घायल हो गया। पिता की जीवनभर की कमाई मैंने छह महिने में उस पर खर्च कर दी।

एक दिन मैंने उसे कुण्ड़ल लाकर दिए। उसकी सहेली ने कुण्ड़ल की तारीफ की, तब वह बोली कि ये कुण्डल कोई कुण्डल हैं। अरे कुण्डल तो वे हैं, जो सिंहोदर राजा की श्रीधरा रानी के कानों में हैं, जो सुंदर रत्नों से बने हुए हैं। मैंने उसकी यह बात छिपकर सुन ली थी। उसके रूप रूपी फूल का भंवरा मैं रात में रानी के कुण्डल चुराने के लिए गया था। राजा को नींद नहीं आ रही थी? तब उससे रानी ने कहा- आप सो जाइए।

तब उसने कहा- वज्रकर्ण ने मेरे साथ धोखा किया है, जब तक उसे नहीं मारूंगा, तब तक मुझे नींद नहीं आयेगी। कल उसे बुलाया है, उसे मारकर ही चैन की नींद सोऊँगा।

''आप सदा धर्म में लीन रहते हो, साधुओं की सेवा करते हो, धर्मात्मा हो- आप जैसे का जीवन बचाना चाहिए''- यही सोचकर

मैं आपके ही पास आ रहा था। आप रास्ते में ही मिल गए। आगे आप को जो उचित लगे, वह कीजिए।

वज्रकर्ण वापस लौट गया।

सिंहोदर को इस बात का पता चला तो क्रोध से जलता हुआ वह बड़ी भारी सेना के साथ वज्रकर्ण पर आक्रमण के लिए आया। युद्ध में व्यर्थ ही जनहानि न हो इस भावना से वज्रकर्ण ने दूत के द्वारा सिंहोदर तक संदेश भेजा कि आप मेरा सब कुछ ले लीजिए, सिर्फ पत्नी के साथ मुझे धर्म के लिए छोड़ दीजिए। लेकिन सिंहोदर नहीं माना, उसने इस देश को आग लगाकर वीरान कर दिया। हम लोग भी भाग गए। मेरी पत्नी ने घर के घड़े में धन छिपाकर रखा था, पत्नी के कहने से उसे लेने के लिए जा रहा था।

उसकी दरिद्र दशा से दयाद्र होकर राम ने उसे रत्नों से जड़ा हुआ सोने का हार दिया।

उस के जाने के बाद राम ने लक्ष्मण से पुनः कहा कि जाओ, सीता बहुत दुःखी हो रही है, कहीं से भोजन-पानी ले आओ।

लक्ष्मण गए। उन्हें सैनिकों की छावनी दिखी। उस ओर गए। सैनिकों ने उन्हें रोका। उस छावनी को छोड़कर लक्ष्मण दूसरी छावनी में गए। जिसमें वज्रकर्ण राजा था। वज्रकर्ण ने लक्ष्मण से पूछा यहाँ क्यों आए हों? तब लक्ष्मण ने कहा मैं बहुत दूर देश से आया हूँ, भूखा हूँ, भोजन की तलाश में आया हूँ।

वज्रकर्ण ने सेवकों को आदेश दिया कि मेरे लिए बना हुआ भोजन इन्हें कराओ। भोजन की मुझ से ज्यादा इन्हें आवश्यकता है।

लक्ष्मण ने कहा पास ही मेरे पूज्य बड़े भाई एवं माँ समान भाभी हैं, उन्हें भोजन कराकर ही खाऊँगा। इसलिए यह भोजन मैं उनके पास ले जाऊँगा।

वज्रकर्ण ने भोजन के अलावा और अन्य स्वादिष्ट पदार्थ लक्ष्मण को दिए। लक्ष्मण उसे लेकर राम, सीता के पास आए।

सबने भोजन किया। भोजन के बाद राम ने लक्ष्मण से कहा-ऐसे धर्मात्मा राजा की रक्षा करनी चाहिए।

लक्ष्मण सीधे सिंहोदर के पास गए। कहा- मैं राजा भरत का दूत हूँ। भरत राजा आपसे कहते हैं कि **व्यर्थ बैर से क्या लाभ? और धर्मात्मा से बैर नहीं रखना चाहिए।** राजा वज्रकर्ण धर्मात्मा हैं, उसके साथ बैरभाव छोड़ दीजिए। लक्ष्मण के कठोर शब्दों को सुनकर सिंहोदर को गुस्सा आया। उसने सैनिकों को उसे पकड़ने के लिए आदेश दिया।

लक्ष्मण ने सैनिकों को तितर-बितर कर सिंहोदर को पकड़कर बांधा, घसीटते हुए राम के पास ले आया। रास्ते भर रानियाँ सिंहोदर के जीवन की भीख मांगती रहीं, पर उसने कहा - मेरे बड़े भाई ही इसका निर्णय करेंगे।

सिंहोदर की पत्नियों ने सीता से कहा- आप स्त्री हो, हमारे दुःख को समझ सकती हो, हमें कुछ नहीं चाहिए, आप हमारे स्वामी के प्राणों की रक्षा कीजिए। सीता ने उनको आश्वासन दिया कि राम उन्हें अवश्य माफ करेंगे। मैं उन्हें जानती हूँ, आप सब निश्चिंत रहिए।

लक्ष्मण ने राम से पूछा- सिंहोदर का क्या करें?

राम ने कहा- सिंहोदर वज्रकर्ण का अपराधी है, अतः वज्रकर्ण को बुलाकर उन्हीं से पूछो, क्या करना है?

वज्रकर्ण को बुलवाया। राम के पूछने पर वज्रकर्ण ने कहा- **धर्म का आराधक होने से मैं यह नहीं चाहता कि तिनके को भी पीड़ा हो**, अतः सिंहोदर को न केवल जीवनदान, बल्कि सिंहोदर को सिंहोदर का राज्य दीजिए।

धर्मात्मा वज्रकर्ण की रक्षा कर के उसे उसका राज्य दिलाकर राम, लक्ष्मण, सीता अपनी यात्रा पर निकल गए।

×××××

कुछ दिनों की यात्रा के बाद वे विंध्याचल के घने जंगल में पहुँचे। उसे पार करके वे धीरे-धीरे तापी नदी के तट पर पहुँचे।

थके हारे वे वहाँ एक गृहस्थ के घर जलपान की आशा से गए। गृहस्थ की पत्नी ने जलपान दिया था, इतने में घर का स्वामी आया। आते ही उसने इनसे भला-बुरा कहना प्रारंभ कर दिया। तब सीता ने कहा- **भूखे-प्यासे प्राण छोड़ना अच्छा है, पर ओछे लोगों के घर का कण भी स्वीकार करना अच्छा नहीं है।** तब वे बिना खाए पिए, वहाँ से गए। पास के जंगल में एक घने छायादार पेड़ के नीचे ठहरे।

उस पेड़ पर **इभकर्ण** नाम का यक्ष रहता था, वह तुरंत अपने स्वामी **पूतन** नामक यक्ष के पास जाकर बोला कि- कोई तीन मानव, जिनमें एक महिला है, मेरे वृक्ष के आश्रय से ठहरे हैं, उनके पुण्य-प्रभाव से परास्त होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।

पूतन यक्षराज ने अवधि-ज्ञान से जानकर कहा- ये अलौकिक धर्मात्मा हैं, उनकी सेवा करो। यक्षराज स्वयं आया। साथ में उसके सेवक आए थे। उसने एक दिव्य नगरी बसाकर एक सुन्दर महल में राम, सीता, लक्ष्मण को ठहराया। उस नगरी का नाम **रामपुरी** रखा। वे वहाँ कुछ दिन रहे।

जब वे वहाँ से जाने लगे तब जाते समय यक्षराज पूतन ने राम को स्वयंप्रभ नाम का अद्भूत हार दिया। लक्ष्मण को दो मणिमय कुण्डल दिए। सीता को दैदीप्यमान चूड़ामणि तथा वीणा दी। देखो पाप-पुण्य का उदय, **पाप के उदय से जलपान नहीं मिला। पुण्य का उदय आया तो यक्ष ने नगरी बसाकर दी और भेंट के रूप में दिव्य हार आदि दिए।**

इसके बाद वे वैजयन्तपुर पहुँचे। वहाँ एक स्थान पर रूके। वहाँ उन्हें पता चला कि **अतिवीर्य** नाम का राजा अन्य राजाओं के

साथ मिलकर अयोध्या पर आक्रमण करनेवाला है। राम ने सोचा-

अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भूतम्।
तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गताः॥

अर्थ- जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्यों को आश्चर्य में ड़ाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं, वे चुपचाप बरस कर गए हुए बादलों के समान अत्यंत प्रशंसनीय होते हैं।

इसलिए अज्ञात रहकर अतिवीर्य को वश में कर भरत की मदद करनी चाहिए। यही निर्णय कर उन्होंने सीता को **वरधर्मा आर्यिका** के पास रखा।

राम ने नर्तकी का भेष बनाया, लक्ष्मण ने सहयोगिनी स्त्री का भेष बनाया। दरबार में उन्होंने नृत्य दिखाया और राजा अतिवीर्य को बंधक बनाकर सीता के पास लाए। सीता से पूछा इसके साथ क्या करें? सीता ने कहा-

को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदा यान्त्यापदं नराः।
रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम्॥

अर्थ- इस बेचारे क्या दोष है? **मनुष्य यद्यपि कर्मों की सामर्थ्य से संकट को प्राप्त होते हैं, फिर भी सज्जन उनकी रक्षा करते हैं।**

इतरोऽपि खलीकर्तुं साधूनां नोचितो जनः।
किमुतायं नरेशानां सहस्राणां प्रपूजितः॥

अर्थ- सज्जन मनुष्य सामान्य मनुष्य को भी दुःख देना उचित नहीं समझते, यह अतिवीर्य हजारों मनुष्यों से पूजित है, अतः इसे क्षमा करें।

अतिवीर्य को क्षमा करके लक्ष्मण ने सीता के चरणों पर नमस्कार करते हुए कहा-

धन्य हो देवी, आप जैसी क्षमाधारिणी, (आर्यिका के अलावा) धरती की महिलाओं में दूसरी नहीं हो सकती। आप इसप्रकार के कार्यों से देवताओं के लिए भी पूज्य हो।

सीता की कृपा से अतिवीर्य को राज्य मिला, परंतु उसने यह कहा कि मुझे राज्य की इच्छा नहीं है, राज्य ने मुझे फल दे दिया है, **राज्य और संसार को भोगना उचित नहीं लगता; क्योंकि पूर्व में छह खण्ड़ के राज्य से भी चक्रवर्तियों को संतोष नहीं मिला,** उनकी तुलना में मेरा राज्य कितना-सा है? **संसार में कर्म की बलवत्ता देखो, राजा रंक होकर पैदल घूमता है, राहू चन्द्रमा को तेज रहित कर देता है। हजारों देव जिनके रत्नों की सेवा करते हैं, ऐसे वीर जंगल में एक बाण के द्वारा मरण को प्राप्त होते हैं।** अब मैं दूसरा जन्म लेने से भयभीत हो चुका हूँ। इसलिए मैं राज्य स्वीकार नहीं करूंगा- यह कहकर अतिवीर्य ने **श्रुतिधर मुनि** के पास दीक्षा ली। कुछ समय पहले का शत्रु अब नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया है।

×××××

उसके बाद राम, लक्ष्मण, सीता विजयपुर नगर गए। जहाँ का राजा पृथ्वीधर था। उसने उनका सत्कार किया और अपनी पुत्री वनमाला लक्ष्मण को दी। कुछ समय वहाँ रहकर वे आगे जाने लगे, तब वनमाला बहुत दुःखी हुई। दुःखी होकर उसने कहा- हे प्रिय मुझे इस तरह दुःखी कर क्यों जा रहे हो?

लक्ष्मण ने कहा- हे भद्रे, दुःखी मत होवो, मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊंगा। शीघ्र न आऊँ तो सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य को जो गति प्राप्त होती है, वह मेरी हो। साधुओं की निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्य के समान पाप से लिप्त हो जाऊँ।

हे प्रिये, हमें पिता के वचन की रक्षा करनी है, दक्षिण समुद्र के तट जाना है। वहाँ मलयाचल की तलहटी में जाकर उत्तम भवन बनाकर फिर तुम्हें ले जाऊंगा। तब तक धैर्य धारण करो।

वहाँ से निकलकर वे तीनों क्षमांजलि नगर गए। फिर **वंशस्थद्युति** नामक नगर में पहुँचे। उस नगर के पास उन्होंने

वंशधर नाम का पर्वत देखा। उन्होंने यह भी देखा कि लोग नगर से निकल-निकल कर कहीं अन्यत्र जा रहे हैं। तब राम ने एक मनुष्य से पूछा- आप लोग नगर को छोड़ कर क्यों जा रहे हो?

इसके उत्तर में उस मनुष्य ने कहा- इस पर्वत के शिखर पर रात के समय जोर-जोर से आवाज़ें आती हैं, जो बहुत ही ड़रावनी होती हैं। ये आवाज़े किसकी हैं? यह बुजुर्ग भी नहीं जान पा रहे हैं। उन आवाज़ों से धरती हिल उठती है। दसों दिशाएं चकराने लगती हैं, तालाबों का पानी घूमने लगता है, पेड़ उखड़ने लगते हैं, कान फटने लगते हैं। हम लोग रात होने से पहले ही नगर छोड़ देते हैं और सुबह होने पर लौट आते हैं। ऐसा होते करते आज तीसरा दिन है।

वह वृतान्त सुनकर सीता ने घबड़ाकर कहा- हे प्रिय, जहाँ ये लोग जा रहे हैं, वहीं हम भी चलें। राम ने हँसकर कहा- हे भीरू सीते! जहाँ ये लोग जा रहे हैं, वहीं तू जा, सुबह होने पर इस पर्वत के पास आना, हम तुम्हें खोज लेंगे। आज हम देखेंगे कि इस पर्वत पर ये आवाज़ें किसकी हैं? इन दीनहीन लोगों की, उनके बाल बच्चे पशुओं की रक्षा करेंगे। सीता ने कांपती हुई आवाज में कहा- आप लोगों की हठ केकड़े की पकड़ के समान बड़ी विचित्र है। मैं भी आपके साथ चलूंगी।

आगे राम, मध्य में सीता, अंत में लक्ष्मण - इस तरह तीनों पर्वत पर चढे।

उन्होंने ऊपर जाकर दो मुनिराज देखे, जो ध्यान में लीन थे, जिनकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं, वे परम तेज से युक्त थे, समुद्र के समान गंभीर थे, पर्वत के समान अचल, कांति के सागर थे, नये तारुण्य से युक्त थे, सिद्ध प्रतिमा को सिद्ध कर रहे थे।

उन्हें देख रामादि आश्चर्य से भर गए। उन्होंने हाथ जोड़कर

मस्तक से लगाए । उनके चरणों पर दूर से ही नमस्कार किया। उनके हृदय में भक्ति के भाव वैसे ही उमड़ आए ,जैसे चांद को देखकर समुद्र उमड़ता है। विनय से उनके शरीर नम्र हुए।

उन्होंने पास जाकर देखा कि उस समय अत्यंत भयंकर आकारवाले, काजल के समान काले,जिनकी जीभे लपलपा रही थीं- ऐसे सांप उन मुनिराजों के शरीर पर चल रहे थे। इसके अलावा जिन्होंने अपनी पूंछे ऊपर उठा रखी थीं, एक दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रंग के थे, ऐसे बिच्छुओं ने मुनियों को घेरा था।

मुनियों की ऐसी दुःखभरी दशा देखकर राम, लक्ष्मण, सीता सहसा भयभीत हो गए, क्षणभर के लिए निश्चल हो गए। सीता तो भयभीत हो पति से लिपट गई। राम ने सीता से कहा- ड़रो मत। वे मुनिराजों के और पास गए। सीता आश्वस्त होकर ड़र को मन से निकाल कर राम, लक्ष्मण के साथ मुनिराजों के शरीर से सांप, बिच्छुओं को हटाने लगी। सांप, बिच्छु लौटकर आते थे। धनुष के अग्र भाग से धीरे-धीरे उनको हटाया। सीता ने झरने के प्रासुक जल से मुनिराजों के पैर धोए, शरीर पोंछा।

तीनों ने मुनिराज की भक्तिभाव से वंदना की। राम ने वीणा को बजाकर, लक्ष्मण ने ताल देकर, सीता ने कोयल के समान मीठे स्वर से गीत गाकर मुनिराजों की भक्ति की। उनकी भक्ति के स्वर इतने मीठे थे कि जानवरों, पक्षियों के हृदय भी भक्तिमय बन कोमलता को प्राप्त हो गए थे। सीता ने ऐसा सुंदर, भावविभोर करनेवाला नृत्य किया, जैसे भगवान के जन्माभिषेक के समय सुमेरु पर्वत पर श्रीदेवी ने किया था।

उपसर्ग से त्रस्त होकर ही मानो सूर्य अस्त हो गया। उसके पीछे संध्या आ गई। संध्या के पीछे नक्षत्रों का मण्डल आ गया। सघन अन्धकार समस्त दिशाओं में फैल गया। उसी समय ऐसी

विचित्र आवाज़ें सुनाई दीं, जो दिशाओं को क्षोभ उत्पन्न कर रही थीं, आकाश को चीरती हुई-सी जान पड़ती थीं। जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दांतों की कुटिल पंक्ति से विकराल थे, ऐसे भूतों के झुण्ड़ महाभयंकर अट्टहास करने लगे थे। राक्षस नीरस शब्द करने लगे थे, अमंगलरूप श्रृगालियाँ अग्नि उगलती हुईं शब्द करने लगी थीं, सैकडों, कलेवर भयंकर नृत्य करने लगे थे। बादल बदबूदार मोटी-मोटी बूंदे बरसाने लगे थे। विकराल ड़ाकिनियाँ उपद्रव करने लगी थीं। राक्षसों की विकराल आकृतियाँ नृत्य कर रही थीं। वहाँ के पर्वतों की चट्टाने हिलने लगी थीं।

यह सब हो रहा था,परन्तु उन ध्यानमग्न मुनियों को इन चेष्टाओं का कुछ भी भान नहीं था। राक्षसों की भंयकर चेष्टाओं को देख सीता ड़रकर राम से लिपट गई। तब राम ने उससे कहा- हे देवी, ड़रो मत सब प्रकार का भय दूर करनेवाले मुनियों के चरणों का आश्रय ले बैठ जाओ। यह कहकर राम ने सीता को मुनिराज के चरणों के पास बिठाया।

स्वयं लक्ष्मण के साथ राक्षसों से युद्ध करने के लिए तैयार हुए। उन्होंने धनुष की टंकार की। जिससे राक्षस भयभीत हो गए। राम बलभद्र हैं, लक्ष्मण नारायण हैं, अवधिज्ञान से ऐसा जानकर मुनियों पर उपसर्ग करनेवाला **अग्निप्रभ नाम का ज्योतिषी देव** अपनी माया समेटकर वहाँ से चला गया। ज्योतिषी देव की माया समाप्त होने पर वातावरण शांत हो गया। आकाश निर्मल हो गया। उपसर्ग दूर होने के साथ ही उन दोनों मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। देव आ गए। उन देवों में एक **महालोचन** नाम का देव था, जो पूर्वपर्याय में उन पूज्य मुनियों के पिता थे। उसने राम, लक्ष्मण से कहा- आपने हमारे पूर्वपर्याय के पुत्रों का उपसर्ग दूर किया है, बताइए- आपको क्या वरदान दूँ ? तब राम ने कहा-

संकट के समय आपको याद करेंगे, तब आप हमारी मदत करना। सबने उनके केवलज्ञान का उत्सव मनाया। राम, सीता, लक्ष्मण ने उन केवलियों की पूजा की।

वे मुनि कुलभूषण और देशभूषण नाम के थे। राजकुमार थे, सगे भाई थे। गुरुकुल से पढ़कर आने के बाद अपनी सगी बहन को न पहिचान कर उस पर आसक्त हो कर एक दूसरे को मारने के लिए तैयार हो गए थे, सारथी के समझाने पर अपने अज्ञान पर लज्जित हो, दोनों ने दीक्षाएं ली थीं। जिस जगह यह घटना घटी थी, आज यह तीर्थ **कुंथलगिरि** नाम से प्रसिद्ध है।

×××××

वहाँ कुछ दिन रहकर वे आगे बढ़े। कर्णरवा नदी के किनारे पर विद्यमान निर्जन, भयानक ऐसे **दण्डकवन** में पहुँच गए। यहाँ पास ही समुद्र का भी किनारा था। दण्डकवन तक ही भरत का राज्य है। वहाँ तक उसकी आज्ञा चलती थी, उससे आगे नहीं। दण्डक वन पार कर समुद्र के किनारे पर भवन बनाकर रहेंगे- यह सोच कर उन्होंने दण्डकवन में प्रवेश किया। उस दिन से चौमासा शुरु हुआ था।

वहाँ कर्णरवा नदी के किनारे पर छायादार जगह पर ठहर गए। लक्ष्मण ने मिट्टी,पत्तों आदि से उपयोगी बरतन बनाए। इन्हीं बरतनों में सीता स्वादिष्ट तथा रसदार फलों से और वन की सुगन्धित धान से भोजन बनाती थी।

एक दिन अतिथि भोजनकाल के समय सामने से आते हुए **सुगुप्ति** और **गुप्ति** नाम के दो मुनि दिखे। वे मुनि आकाशमार्ग से जा रहे थे। उनके शरीर तप के प्रभाव से दमक रहे थे। वे बहुत ही सुंदर थे। मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञानों से सहित थे। उनके मन पाप की इच्छाओं से रहित थे। उन्होंने एक माह का उपवास किया था। उन्हें देखकर सीता ने राम से कहा-

देखो, देखो, तप से जिनका शरीर दुबला-पतला हुआ है, जो थके हुए से लग रहे हैं- ऐसे चलते फिरते सिद्ध के समान मुनियों का युगल देखो।

राम ने कहा- हे सौभाग्यवती, जिनके दर्शन-मात्र से चिरसंचित पाप क्षणभर में नष्ट होता है, ऐसे मुनियुगल को आपने कहाँ देखा? सीता उसके उत्तर में 'ये हैं, ये हैं' - ऐसा कह रही थी कि इतने में वह युगल उनके सामने आया।

उन्होंने मुनियों का चरणस्पर्श कर भक्ति-वंदना के साथ आहार कराया। मुनि ऋद्धियों के धारी थे, इसलिए वहाँ दुंदुभि बाजे बजने लगे, शीतल सुगंधित वायु बहने लगी, धन्य धन्य ऐसी देवध्वनि होने लगी, आकाश से पुष्पवर्षा हुई, दिव्यरत्नों की वर्षा होने लगी, ऐसे पांच आश्चर्य प्रगट हुए।

वहीं पर एक बहुत बड़ा पेड़ था। उस पर एक गिद्ध पक्षी बैठा था। मुनिराजों को देखकर उसे अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान प्रकट हुआ। वह सोचने लगा। पूर्व में मैंने अच्छा आचरण नहीं किया। इसलिए आज मांसभक्षी पक्षी बना हूँ। वह पश्चाताप करता हुआ वृक्ष से नीचे आया और मुनिराज के चरणों के जल को पीने लगा, उस जल को पीने से उसका शरीर अनेक प्रकार के रत्नों के समान अनेक रंगवाला हो गया। उसके पंख सोने के समान पीले हो गए। पैर नीलम के समान नीले रंग के हो गए। चोंच मूंगे के समान लाल हो गई। आँखें पद्मराग मणि के समान गुलाबी हो गई। अपने सुंदर रूप को देखकर मुनिराजों की भक्ति में डूबा गिद्ध नाचने लगा। साथ ही मुँह से मीठी-मीठी आवाज़ें निकाल रहा था।

नाच गाने के बाद वह पंखों को सिकोड़कर शिला पर विराजमान मुनिराज के चरणों के पास शांत भाव से बैठ गया।

राम, सीता, लक्ष्मण उसके बदले हुए रंगरूप एवं नृत्य

भक्ति को देखकर आश्चर्य में पड़ गए कि एक मांसभक्षी पक्षी में इस तरह का बाह्य और अंतरंग बदलाव कैसे आया ?

उन्होंने मुनिराजों से पूछ ही लिया कि हे भगवन, देवों की दुंदुभि की आवाज से सभी पक्षी उड़ गए, पर यह क्यों नहीं उड़ा? रोकने पर भी आपके पास क्यों आया? पहले अत्यन्त कुरूप था, अब अचानक सुंदर कांतिवाला कैसे हो गया? मांस खानेवाला यह आपके चरणों में कैसे शांत बैठ गया?

इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा -

इसी दण्डक देश में कर्णकुण्डल नाम का नगर था। उसमें यह दण्डक नाम का राजा था। एक दिन यह शिकार के लिए गया। उसे मुनि दिखे। उसने मुनि के गले में मरा हुआ सांप ड़ाला और शिकार के लिए निकल गया। लौटते समय वह जब उसी रास्ते से लौट आया तो उसने देखा कि एक मनुष्य उनके गले से सांप निकाल रहा है, मुनि ध्यान में वैसे ही लीन थे जैसे सुबह। दण्ड़क ने उस मनुष्य से पूछा-यह क्या कर रहे हो?

उस मनुष्य ने कहा- किसी पापी ने धर्मसाधक, वीतरागी मुनि के गले में मरा साँप ड़ालकर अपना नरक जाना पक्का कर लिया है। उसी पापी के पाप के विचार से काँपता हुआ साँप को हटा रहा हूँ।

दण्ड़क ने देखा कि मुनि वैसे ही शांत, ध्यानमग्न थे, जैसे सुबह थे। परंतु इस समय इनका शरीर जहर के प्रभाव से काला पड़ गया है। उसे आत्मग्लानि हुई, उसे बुरा लगा, उसने पश्चाताप करते हुए मुनि से क्षमा मांगी। उनसे उपदेश सुना। कुछ देर वहीं रूका। बाद में घर गया। उस दिन से उसने मुनियों की बहुत सेवा की। उनके उपसर्ग दूर किए। इस तरह वह मुनिभक्त बना।

दण्ड़क राजा की रानी परिव्राजकों की भक्त थी। परिव्राजकों का स्वामी रानी से गुप्त समागम भी करता था, दण्ड़क राजा

दिगम्बर मुनि का भक्त बना है-यह जानकर परिव्राजकों के स्वामी ने दिगम्बर रूप बनाकर रानी से समागम किया और अन्य मनुष्यों के द्वारा राजा तक यह संदेश पहुँचवाया कि एक दिगम्बर मुनि ने आपकी रानी के साथ घृणित कार्य किया है। राजा को विश्वास नहीं हुआ। पर दिगम्बर मुनियों से द्वेष रखनेवाले मंत्रियों, दरबारियों ने उसे भड़काया, वह उनके बहकावे में आया।

उसने मुनियों को घानी में पेलने की आज्ञा दी। वहाँ उस समय एक मुनिसंघ आया हुआ था, उस संघ के सभी मुनियों को घानी में पेला गया। उस संघ के एक मुनि आचार्य की आज्ञा से बाहर गए थे, वे लौटकर उसी नगरी की ओर आ रहे थे। रास्ते में उन्हें किसी दयालु मनुष्य ने यह कहकर रोका कि-

हे मुनि, नगरी में मत जाओ, नहीं तो घानी में पेले जाओगे, शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ, यहाँ से दूसरी ओर लौट जाओ। राजा ने निर्ग्रन्थ मुनियों को घानी में पेलने का आदेश दे रखा है।

संघ की इसप्रकार की दुःखद मृत्यु सुनकर उनके भीतर से क्रोधी रूपी शेर बाहर आया। उनकी आखों से निकलनेवाले लाल प्रकाश से सारा आकाश भर गया। उनके मुँह से 'हा' शब्द के उच्चारण के साथ धुंआ और उसके पीछे अग्नि निकली, उससे वहाँ सब कुछ भस्म हो गया।

इधर मुनिराज का चिरसंचित तप भी नष्ट हो गया, मुनि भी उसी समय भस्म हो गये। **'सब्र' यह शब्द ही क्रोधाग्नि में जल जाता है, तब अन्य कौन-सी वस्तु बचेगी?**

यही वही दण्ड़क देश है, जो आज भी दण्ड़क नाम से ही प्रसिद्ध है। यह गिद्ध उसी दण्ड़क राजा का जीव है,जो अनेक गतियों में भटकता-भटकता आज गिद्ध पर्याय में है।

आज उसे हमारे दर्शन से पूर्वजन्मों का ज्ञान हो गया है। **जब दूसरे का उदाहरण ही शांति का कारण बनता है, इसे तो अपनी**

ही बातें याद आयी हैं। इसलिए पश्चाताप करता हुआ चरणों पर गिरा है। हमारी ऋद्धि के निमित्त से व उसके पुण्य के उदय से उसका ऐसा सुंदर रूप बना है। अब इसने मांस का त्याग कर दिया है, अब यह श्रावक बन गया है-आप लोग इसका ध्यान रखना, पालन-पोषण करना। यह कहकर मुनि आकाशमार्ग से गए।

×××××

उस दिन से वह गिद्ध उन्हीं के साथ रहने लगा, सीता के हाथों से बना उत्तम स्वादिष्ट भोजन करता था। उसके शरीर पर रत्न एवं सोने के किरणों की तरह रंगवाली जटाएं सुशोभित हो रही थीं, इसलिए सीता आदि उसे **'जटायु'** नाम से बुलाते थे, वह सब का प्यारा था। वह तीनों संध्याओं के समय सीता के साथ अरहंत, सिद्ध व निर्ग्रन्थ साधुओं को भाव-नमस्कार करता था। सीता के द्वारा बनाए भोजन के अलावा जंगल के शुद्ध,स्वादिष्ट फलों को खाता था। वह मांसाहारी से शाकाहारी बना। **संकल्प करो तो क्या संभव नहीं है?**

जब सीता ताल का शब्द देती हुई धर्ममय गीतों को लयबद्ध गाती थी और राम,लक्ष्मण उसके स्वर में स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे, तब यह जटायु खुश होकर नृत्य करता था ।

उन तीनों ने वर्षाकाल का चौमासा दण्ड़कारण्य में ही पशु, पक्षियों के साथ आनन्द से बिताया। वहाँ के पशु, पक्षी उनके मित्र हो गए थे, क्योंकि-

तिर्यच्चोऽपि ह्येते रम्यं परूषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम्।

अर्थ- पशु,पक्षी भी कोमल चित्त के धारक मनुष्यों की मनोहर चेष्टाओं को समझते हैं।

×××××

उसी वन में एक दिन लक्ष्मण राम से आज्ञा लेकर रात्रि के समय अकेले ही घूमने गए थे। जंगल में उन्हें दिव्य सुगन्ध सूंघने में आयी। 'यह दिव्य सुगंध किसकी है?' ऐसा विचार कर लक्ष्मण उसकी खोज करते-करते, उसे सूंघते-सूंघते उस दिशा की ओर गए, जिस दिशा से वह आ रही थी।

दरअसल वह दिव्य गंध सूर्यहास खड्ग की थी, जिस सूर्यहास तलवार की एक हजार देव सेवा करते थे। जो व्यक्ति बारह वर्ष एक प्रकार का अन्न खाता है, निर्मल चित्त को धारण करता है, ब्रह्मचर्य से रहता है, इन्द्रियों को जीतकर एकान्त में रहता है, विधिपूर्वक मंत्र की साधना करता है, उसे उसकी प्राप्ति होती है।

उस दिन सूर्यहास खड्ग शम्बुक को प्रगट हुई थी। उस तरवार पर दिव्य सुगंध लेप रहता है, उसी की गंध लक्ष्मण तक पहुँची थी। सूर्यहास प्रगट होने के सात दिन के बाद ही उसे ग्रहण किया जाता है, सात दिन पहले उसे छू ले तो सिद्ध करनेवाले को भी मार ड़ालती है।

शम्बूक रावण का भांजा, खरदूषण और चंद्रणखा का बेटा था। बड़े लोगों के मना करने पर भी उसने साधना की, उस दिन उसे अपनी जिद्द के कारण सूर्यहास खड्ग प्रगट हुई थी।

चन्द्रणखा अपने पुत्र को देखने के लिए प्रतिदिन आती थी। उसने सूर्यहास खड्ग देखी और प्रसन्न होकर सूचना देने के लिए पति के पास चली गई थी।

उसी समय लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग तक पहुँच गए। लक्ष्मण ने उसे निसंकोच उठा लिया। लक्ष्मण के द्वारा सूर्यहास को उठाते ही, उस खड्ग के रक्षक एक हजार देवों ने लक्ष्मण से कहा- आप हमारे स्वामी हो। उन देवों ने नमस्कार कर उनकी पूजा की।

उसके बाद लक्ष्मण ने उसकी धार की तेजी परखने के लिए उस बांस के झुण्ड़ पर चलाया, जिसमें शम्बुक ध्यानस्थ बैठा हुआ

था, बासों के कटने के साथ शम्बुक का सिर भी धड़ से अलग हुआ।

देखों, पुण्य-पाप के उदय की विचित्रता जिस शम्बुक ने बारह वर्ष तक कठोर साधना करके जिसे पाया था, ऐसा वह सूर्यहास खड्ग पाप के उदय से उसी के वध का कारण बना। पुण्य के उदय से वह खड्ग लक्ष्मण को बिना साधना के ही प्राप्त हो गया।

चन्द्रणखा लौटकर पुत्र को देखने के लिए आयी, तब उसे वह बांस का वन कटा हुआ दिखा, जिसमें उसका पुत्र साधना के लिए पिछले बारह वर्ष से बैठाता था। उसने अनिष्ट की आशंका के साथ पास जाकर देखा, तब उसे पुत्र का सिर और धड़ अलग-अलग दिखे। उसने बहुत विलाप किया। कुछ देर बाद वह पुत्र के हत्यारे को ढूंढती हुई इधर-उधर घूमने लगी।

घूमते हुए वह वहाँ पहुँच गयी, जहाँ राम और लक्ष्मण थे। उनको देखते ही वह उन दोनों की सुंदरता में ऐसी उलझ गई कि उसने अपनी सुध-बुध खो दी। वह कामवासना से इतनी भर गई कि कुछ समय पहले मर चुके पुत्र के दुःख को भी भूल गई। उसके विचारों पर, बुद्धि पर वासना का रंग चढ गया था। उसने विचार किया कि इन दोनों पुरूषों में से मुझे चाहनेवाले को चुनूंगी। उसके मन में प्रेम की तरंगे उठने लगीं। वह हाथ की अंगुलियाँ चबाती हुई, ड़री हुई मुद्रा में एक वृक्ष के नीचे बैठकर रोने लगी। वह दीनता भरी आवाजें निकालने लगी। धरती पर लोट-पोट होकर विलाप करने लगी।

उसकी ऐसी दशा देखकर दया से भिगी हुई सीता उसके पास गई, पास जाकर उसे सांत्वना दी। उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। उससे सीता ने कहा-ड़रो मत, दुःखी मत होवो, रोओ मत। इस तरह उसे शांत कर राम के पास लायी। वह भी उनके पास आना ही चाहती थी। राम ने पूछा - इस भयानक जंगल में आप

कैसे आयी? तब उसने झूठ कहा-

मेरी माँ मर गई, उसके गम में पिताजी ने भी देह छोड़ दी। पूर्व के पाप कर्म का फल भोगती, वैराग्य हृदय में लिए भटकती हुई, रास्ता जिधर ले जाये, उधर बेसुध-सी चलती रही । पुण्य के उदय से आप दिख गए, आप जैसे को देखकर अपने आप रोना आया।

पाप का उदय कितना विचित्र है-देखो मैं मरना चाहती हूँ, पर जंगल के ये शेर आदि हिंसक जीव मुझे भी छोड़ देते हैं। परंतु हे सुंदर महापुरूष, जब तक मैं प्राण छोडूँ, उसके पहले मुझे स्वीकार करो। मेरी इच्छा पूरी करो,मुझ दुःखियारी पर दया करो।

राम, लक्ष्मण उसके इस तरह के निर्लज्ञ, बेहुदे शब्द सुनकर सकपका गए, एक दूसरे को देखकर चुप रहे। उनके भावों को वह ताड़ गयी। एक नया पासा समझ कर उसने लंबी सांस छोड़ते हुए कहा- मेरा मरण ही आपको अच्छा लग रहा है, तो मैं जाती हूँ, पर मेरे असमय मृत्यु का पाप आपको लगेगा- इसका ध्यान रखना। राम आदि ने उससे कहा- जैसी आपकी इच्छा।

वह दुःखी होकर मन मार कर मरे हुए पुत्र का भी ध्यान न कर सीधे पति खरदूषण के पास गई।

अपने को ठुकराने से अपमानित महसूस करती हुई छेडी हुई नागिन की तरह तड़पने लगी। अपने शरीर पर कईं घाव कर वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका विलाप देखकर गुस्से से भरा खरदूषण उसके पास आकर कहने लगा- हे प्रिये, बताओ, तुम्हारी ऐसी हालत किसने की ? मैं उसे अभी यमराज के घर भेज देता हूँ।

उसने कहा-नाथ मैं पुत्र को देखने के लिए दण्ड़कारण्य में गई थी। वहाँ मैंने देखा कि पुत्र शंबुक का सिर धड़ से अलग है, उसे शत्रु ने मारा है। मैं पुत्र का सिर गोद में लेकर विलाप कर रही थी कि मेरे पुत्र को मारनेवाला वहाँ आया। उस दुष्ट ने दोनों

भुजाओं से मेरा आलिंगन किया, ''मुझे छोड़, मुझे छोड़''- ऐसा मैं जोर जोर-से चिल्लाई, परंतु उसने नहीं छोड़ा, अपने दांतों और नाखुनों से मेरी ऐसी हालत कर दी। पुण्य ने मेरी रक्षा कर दी, अपने चरित्र की रक्षा करती हुई बड़ी मुश्किल से उसके चंगुल से बचकर आयी हूँ। देखो, तीन खण्ड का स्वामी ऐसे भाई की बहन तथा आप जैसे वीर की पत्नी होने पर भी मेरी यह हालत हुई है।

खरदूषण ने शीघ्रता से जाकर मृत पुत्र को देखा। उसे मृत देखकर वह साक्षात् यमराज जैसा भयंकर हो गया, गुस्से से लाल हो गया। वापिस लौटकर मंत्रियों व मित्र राजाओं से विचार कर रावण के पास संदेश भेजकर तुरंत ही चौदह हजार सैनिकों को लेकर दण्डकारण्य में गया।

इतनी बड़ी फौज को देखकर सीता घबरा गई। उसने राम से पूछा- यहाँ इतनी बड़ी फौज क्यों आई है?

राम ने कहा- ड़रो मत, अभी पता करते हैं। लगता है उसी दुष्टा ने हमें मारने के लिए इनको भेजा है। यह कहकर उन्होंने लक्ष्मण से अपना धनुष मांगा। लक्ष्मण ने कहा मेरे रहते आपको धनुष उठाने की जरूरत नहीं है। आप भाभी जी की रक्षा के लिए यहीं रहिए। यदि मुझ पर संकट आएगा तो मेरे सिंहनाद से मेरी आवाज पहिचान कर ही आना। इतना कहकर वह शत्रुओं की ही सेना है- ऐसा निर्णय कर अकेले ही उस सेना से युद्ध के लिए गए। उनसे युद्ध करने लगे। अपने पराक्रम से शत्रुसेना को पराजित करने लगे।

इसी बीच जिसे भांजे के मरण की खबर मिली थी, ऐसा क्रोध से भरा हुआ रावण वहाँ आया। रास्ते में अलौकिक सुंदरी सीता दिखाई दी। उसकी सुंदरता को देखकर रावण क्रोध भूल गया। युद्ध भूल गया। भांजे की मौत भी भूल गया। सब कुछ भूलकर वह सोचने लगा- इस अनुपम सुंदरी के बिना मेरा रनिवास

बेकार है। इसके बिना जीवन बेकार है, व्यर्थ है। रनिवास में अठारह हजार रानियाँ हैं, पर उनमें एक भी ऐसी सुंदरी नहीं है।

देखो, मन की विचित्रता और वासनाओं के ज्वार। पहले मृत पुत्र के दुःख को भूलकर चंद्रणखा राम-लक्ष्मण पर आसक्त हो गई, अब मृत भांजे की मृत्यु को भूलकर रावण भी सीता के मोह में फँस गया।

रावण ने सोचा- मेरा यहाँ आना, कोई जाने, उससे पहले ही मैं इस अनुपम सुंदरी का अपहरण करता हूँ। यह कार्य छिपाने योग्य है, दिखाने या दिखाकर करने योग्य नहीं है। यदि दिखाकर करता हूँ, तो संसार में मेरी बदनामी होगी, इसलिए छिपकर ही कार्य करता हूँ। मेरा प्रयोजन तो कार्यसिद्धि से है।

इस प्रकार का विचार कर उसने पहले अवलोकिनी विद्या के द्वारा राम, लक्ष्मण, सीता के बारे में जानकारी प्राप्त की। उसे विवाहिता जानकर भी मतिभ्रष्ट रावण उसे चुराने का विचार करने लगा।

राम को वहाँ से हटाए बिना मैं सीता का अपहरण नहीं कर सकूंगा यह सोचकर उसने राम को वहाँ से हटाने के लिए लक्ष्मण की आवाज़ में 'हे राम हे राम' - ऐसा जोर से पुकारा।

लक्ष्मण को संकट में जानकर राम ने सीता को फूल-पत्तों से ढ़क दिया और उससे कहा- आप ड़रो मत, यहाँ ऐसे ही छिपे रहना, मैं लक्ष्मण की सहायता करके अभी आता हूँ। जाते समय जटायु से कहा इस का ध्यान रखना, इसकी रक्षा करना। इतना कहकर राम युद्ध के लिए गए। रास्ते में अनेक अपशगुन हुए थे, पर लक्ष्मण के प्रति अनुराग की वजह से उनका उनकी ओर ध्यान ही नहीं गया।

इधर राम के जाते ही रावण सीता को बलपूर्वक पुष्पक विमान में बिठाने लगा। वह जोर-जोर से रोने लगी, विरोध करने लगी, पर बलशाली रावण के सामने उसकी एक न चली। माँ

समान सीता के दुःख को देखकर क्रोध से भरे जटायु ने रावण के सिर पर चोंच से चोंटें मारीं, उसके वस्त्र फाड़े, पर कामाग्नि से भरे रावण ने उसके सिर पर जोर का मुक्का मारा। 'कें कें' करता हुआ जटायु जमीन पर गिरा। अपनी अंतिम सांसे गिनने लगा।

सीता आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी। पति में ही जिसका मन था, ऐसी सीता को रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया। वह सोचने लगा। इसे मेरे प्रति प्रेम नहीं है, इसके मन में तो सिर्फ उसका पति ही बसा हुआ है। जो अपने पति के अलावा किसी दूसरे को चाहती ही नहीं, ऐसी इस सुंदरी को ले जाकर क्या करूं? यह सीता राम के लिए सीता है, पर मेरे लिए यह सीता, सीता नहीं, अपितु बदनामी का चिह्न होगी।

क्या मैं इसे तलवार से मार दूँ ? नहीं, **वीर महिलाओं को नहीं मारते।** इसे ले जाना व्यर्थ है, क्योंकि यह मुझे कभी नहीं चाहेगी, मैं इसके साथ जबरदस्ती कर नहीं सकता, क्योंकि अनंतवीर्य भगवान के सामने मुनियों की सभा में मैंने एक नियम लिया था कि **''जब तक परस्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी, तब तक स्वयं दुःखी होने पर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूंगा।**

अब मैं क्या करूँ? इसे मार नहीं सकता, इसे लौटा नहीं सकता, बदनामी का भय है, इसके साथ जबरदस्ती नहीं कर सकता, नियम टूटेगा, मैं मरकर भी नियम नहीं तोडूँगा। उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। अंत में उसने सोचा कि अपने नियम की रक्षा करता हुआ, इसे प्रसन्न करने की कोशिश करूंगा, हो सकता है कुछ समय बाद मेरा वैभव देखकर मुझे स्वीकार करे। यह सोच वह सीता को लंका की ओर ले गया।

इधर राम को युद्ध करते हुए देख लक्ष्मण ने पूछा-भैया, आप क्यों आये हो?

राम ने कहा-तुम्हारी पुकार सुनकर।

लक्ष्मण ने कहा- मैंने आपको पुकारा ही नहीं, इनके लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। जरूर यह शत्रु की कोई चाल है, जिसने आपको फँसाया है। आप शीघ्र जाइए और भाभीजी की रक्षा करते हुए, वहीं रहिए।

जब राम सीता की रक्षा के लिए आए, तब जहाँ सीता को छिपाया था, वहाँ सीता को न देखकर ''सीते, सीते, कहाँ हो? मैं आ गया, जल्दी आओ'', ऐसी आवाजें कई बार दीं, प्रत्युत्तर न मिलने पर सीता को संकट में जान बेहाश हो गए। होश में आने पर पागलों की भांति पेड़ आदि से सीता के बारे में पूछते हुए, जंगल में इधर-उधर खोजते रहे, उन्हे 'कें कें' आवाज करता हुआ मरणासन्न जटायु दिखा। उन्होंने उसके कान में णमोकार मंत्र का जाप किया। मरकर वह स्वर्ग गया।

सीता के वियोग, जटायु के मरण के दुःख से राम पुनः बेहोश हो गए। होश में आने पर करूणाभरा विलाप करने लगे। कहने लगे- हाय भाग्य, इस भयानक जंगल में धोखे से सीता का अपहरण करनेवाले ने मुझे मार दिया है। सीता के बिना कैसे जिऊंगा? वह शत्रु के पास कैसे रहेगी? बेचारी मेरे वियोग में मर जायेगी। हे वृक्षों, बताओ- सीता कहाँ है? लक्ष्मण की बातों का ध्यान न रखकर मैंने ही उसे इस तरह मौत के मुँह में धकेला है।

संसार में एक बार बीता हुआ मनुष्य भव और छुटे हुए प्रिय का साथ होना बड़ा कठिन है। ''यहाँ होगी, यहाँ होगी''- ऐसा सोचकर उन्होंने उसे कईं स्थानों पर ढूंढा, पर नहीं दिखी। **दुःखों का संसार बड़ा विचित्र है। एक समाप्त हो, उससे पहले दूसरा तैयार रहता है।** मुझ दुःखियारे पर और-और दुःख आते जा रहे हैं -

खञ्जपादस्य खण्डोऽयं हिमदुग्धस्य पावकः।
स्खलितस्यावटे पातः प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः॥

अर्थः-प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लंगडा होता है, उसी

में चोंट लग जाती है,जो वृक्ष बर्फ से सूख जाता है, उसी में आग लगती है, जो फिसलता है, वही गड्ढे में गिरता है, प्रायः करके अनर्थ, कष्ट बहुत संख्या में आते हैं।

इससमय राम के दुःखों को शब्दों में नहीं कह सकते, उन्हें वे ही जानते थे या सर्वज्ञ।

उधर युद्ध का पता चलने पर लक्ष्मण की सहायता के लिए विराधित आदि अनेक राजा आए। लक्ष्मण के बाणों से खरदूषण वैसे ही धरती पर गिरा, जैसे **पुण्य के क्षीण होने पर चंचल शरीर को धारण करनेवाला ग्रह (देव) पृथ्वी पर गिरता है।** घायल खरदूषण तलवार लेकर लक्ष्मण की ओर दौड़ा। लक्ष्मण ने खरदूषण के सिर पर वार किया, जिससे वह मर गया। उसके मरते ही सेना तितर-बितर हो भाग गई। युद्ध समाप्त हुआ।

लक्ष्मण राम को ढूंढते हुए राम के पास आए। राम को सीता के बिना धरती पर बेहोश देखा। घबराकर उन्होंने राम से कहा- भैया उठो, भाभीजी, जटायु कहाँ हैं ?

लक्ष्मण को घाव रहित देखकर आश्वस्त हो होश में आये राम ने कहा-लक्ष्मण, वह देवी कहाँ है, मुझे नहीं पता। मैंने उसे खोजा, पर वह यहाँ कहीं भी नहीं दिखी, जटायु मरणासन्न दिखा पर थोड़ी देर में वह भी शरीर छोड़ गया। लगता है सीता को कोई हिंसक भयानक जानवर खा गया है।

लक्ष्मण ने कहा- नहीं, देव, नहीं, ऐसी **पवित्र आत्मा पर हिंसक जीव भी वार नहीं करते।** मुझे विश्वास है कि उसे जानवर ने नहीं खाया है।

राम बोले- लक्ष्मण, तब तो इतना निश्चित समझो कि हमारा शत्रु छल से उसे उठा ले गया।

कानों में गरम शीशे की तरह राम के इन शब्दों से, सीता जैसी पवित्र धर्मात्मा पर संकट से लक्ष्मण क्रोध से उबलने लगे,

उनकी त्यौरियाँ चढ़ गईं, धनुष को जोर से लहराने लगे, तब राम ने उन्हें शांत किया और कहा- यह गुस्से का समय नहीं है, शांति से सीता का पता लगाने का है, पता लगने पर पराक्रम दिखाकर शत्रु को पराजित कर साक्षात जिनवाणी की तरह पवित्र देवी सीता को छुड़ाना है।

हे लक्ष्मण, इस समय हमारे कर्मों का उदय ठीक नहीं है, **कर्मों का उदय विपरीत हो तो शांत रहना ही एकमात्र कर्त्तव्य होता है।** इस समय-

दुःखार्णव प्राप्तो यां यां गृह्णाम्यहं लताम्।
दैवेनोन्मूल्यते सा सा कृत्स्नं विधिवशं जगत्॥

अर्थ- दुःखरूपी सागर के तट को प्राप्त मैं जिस-जिस लता को पकड़ता हूँ, दैव के द्वारा वही वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तव में समस्त संसार कर्मों के आधीन है। राम लक्ष्मण को यह बता ही रहे थे कि इतने में विराधित आदि राजा वहाँ आ गए।

लक्ष्मण ने उनसे कहा-सज्जनों! मेरे अग्रज राम की पत्नी, मेरी भाभी, सीता को कोई दुष्ट उठा ले गया है, उसके वियोग में ये अवश्य प्राण छोड़ देंगे, यदि ये प्राण छोड़ देते हैं तो मैं भी निश्चित ही अग्नि में कुदूंगा। क्योंकि मेरे प्राण इन्हीं के प्राणों के साथ जुड़े हैं। इसलिए बताइये, अब क्या करें?

तब विराधित आदि राजाओं ने सोच विचार कर कहा-भले ही इससमय समय हमारे अनुकूल नहीं है, कर्म की चाल भी हमारे विपरीत है, फिर हम उत्साह रखकर उनका मुकाबला करेंगे, धरती-पाताल एक कर देंगे, सीता का पता अवश्य ही लगाएंगे।

और भी सीता को खोजने की सांत्वना भरी बातें कर राम, लक्ष्मण को शांत किया।

×××××

इधर जब रावण सीता को ले जा रहा था, तब उसके विमान को रत्नजटी विद्याधर ने देखा था। विमान पर 'हे राम, हे राम, हे पुत्र लक्ष्मण' पुकारती, रोती सीता देखी थी। उसने विमान का पीछा किया और जोर से आवाज लगाकर कहा-

अरे दुष्ट रूक, रामदेव की पत्नी, भामण्डल की बहन को आदर के साथ छोड़ दे, नहीं तो मरने के लिए तैयार हो जा।

रावण ने सोचा- यदि मैं इसके साथ युद्ध करता हूँ तो हो सकता है, सीता अवसर पाकर प्राण छोड़ देगी, तब तो सब किए कराये पर पानी फिर जाएगा। रावण ने सिर्फ उसकी सभी विद्याएं छीन लीं। विद्यारहित रत्नजटी धरती पर गिरा। वह पैदल-पैदल **कम्बु** नामक द्वीप में पहुँचा। वहाँ के कम्बु नामक पर्वत पर रहने लगा।

×××××

कईं विद्याधर सीता की खोज में गए थे, वे निराश लौट आए, मुँह नीचा किए राम के सामने खड़े रहे। तब राम ने कहा- हे विद्याधरों, मुँह क्यों लटका रहे हो, अरे आपने हमारे लिए प्रयत्न किया, पर **भाग्य ही विपरीत हो तो, उसे सारा संसार भी बदल नहीं सकता**, इसलिए इसमें आपका दोष नहीं है।

राम मन में सोचने लगे- शोक भी विष का ही एक भेद प्रतीत होता है, जो मेरे शरीर को सुखा रहा है, **विष तो शरीर को ही सुखाता है, शोक तो विष से भी बढ़कर होता है, जो शरीर के साथ मन को भी सुखाता है, दुःखी करता है। भाग्यहीन कष्ट सहकर भी सुख नहीं पाता।** मैं संसार के सब दुःख जीवन भर सह सकता हूँ। दुःख सहूंगा, सिर्फ सीता संग रहे, उसके बिना संसार शून्य हैं। पता नहीं वह पुण्य दिन, शुभ घड़ी कब आयेगी? जब मेरी प्राणवल्लभी, पवित्र चित्त की धारक सीता दिखाई देगी। मैंने भाई-बधुंओं से दूर इस वन का आश्रय लिया, पर यहाँ भी

दुर्भाग्यरूपी शत्रु ने मुझ पर दया नहीं की, दुर्दैव मेरे पीछे पड़ गया है । **अधीर व्यक्ति कल्याण को देख नहीं पाता, इसलिए धैर्य रखना चाहिए।** यह सोच शांत हुए।

विराधित के आग्रह पर राम लक्ष्मण दण्डकारण्य से अलंकारपुर गए। वहाँ रहकर सीता की खोज करने लगे।

×××××

इधर विमान पर बैठा रावण सीता से कहने लगा - हे सुंदरी, मेरी ओर देखो, मुझ से मीठी-मीठी बातें करो।

मुँह में तिनका रखकर सीता बोली-

अरे नीच पुरूष, तुम देखने लायक नहीं हो, तुम्हारी आत्मा महामलीन है, तुम्हारी ओर देखने से देखनेवाले को पाप लगेगा। **जिनका शरीर कृश या मलीन हो, परंतु जिनकी आत्मा निर्मल होती है, ऐसे पुण्यपुरुष मुनिराज के दर्शन से आँखें थकती नहीं हैं,** तुम्हारे जैसे को देखने से पहले आँखे नष्ट हो जाएं तो अच्छा है। तुम ने पराये पुरूष की स्त्री का अपहरण किया है, तुम पापी ही नहीं, महापापी हो। अब भी इस महापाप को छोड़ दो, मुझे वापिस राम के पास ले जाओ। मुझे छूने की कोशिश भी मत करना, मुझे साक्षात् नरक की अग्नि समझो। भस्म हो जाओगे।

ऐसी कठोर वाणी सुनकर भी रावण की आसक्ति कम नहीं हुई। **कामान्ध व्यक्ति पर ड़ाट फटकारों का असर नहीं होता है।**

खरदूषण-लक्ष्मण का युद्ध समाप्त होने पर भी रावण के नहीं आने से मंत्रीगण चिंता कर रहे थे, इतने में उनको रावण का विमान दिखा। उन सबने रावण की अगवानी की। जय हो, जय हो के नारे लगाए। सीता समझ गई कि यह विद्याधरों का राजा है, परंतु **जिस जगह का राजा ही अनीति का आचरण करता हो, वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है?** फिर भी मैं यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि-

जब तक राम का कुशल समाचार प्राप्त नहीं होगा, तब तक मेरे आहार-पानी का त्याग है। रावण सीता को **देवारण्य** नाम के वन में ठहरवाकर महल में गया। उसके पहुँचते ही चन्द्रणखा, मंदोदरी आदि रानियाँ जोर-जोर से रोने लगीं, रावण समझ गया कि खरदूषण की मृत्यु हुई है।

चन्द्रणखा ने कहा- भैया, आप जैसे वीर के रहते हुए, मैं विधवा बनी हूँ।

रावण ने खरदूषण को मारनेवाले पर क्रोध करने की बजाय चन्द्रणखा को समझाया-

बहन, संसार के प्राणी पूर्व में किए कर्मों का फल अवश्य पाता है। जब तक मृत्यु का समय नहीं आता, तब तक सिर पर वज्र गिरे तो भी नहीं मरता, मृत्यु का समय आने पर अमृत भी जहर बन जाता है।

बहन को समझाकर रावण महल में आकर बिस्तर पर लेट गया। मंदोदरी ने पति की ऐसी हालत देखकर पूछा- नाथ, क्या बात हो गई कि आप असमय में लेटे हो?

तब रावण ने लड़खड़ाती वाणी में सीता संबंधी वृतान्त सुनाया।

रावण पर जिसे दया उत्पन्न हुई ऐसी मंदोदरी ने सीता के पास जाकर कहा-

हे सुंदरी, वह स्त्री धन्य है, जिसे रावण चाहता है। वह विद्याधरों का राजा है, इन्द्र जैसे राजाओं को उसने पराजित किया है, अद्वितीय सुंदर है, उसकी याचना करने पर भी उसे पति के रूप में क्यों नहीं चाहती हो? तुम्हारा पति साधारण भूमिगोचरी है, उसके लिए तुम इतना दुःखी क्यों हो? तुम्हारे इन्कार करने पर रावण गुस्से में आकर तुम्हारे पति और पुत्रतुल्य देवर लक्ष्मण को मार देगा। इसलिए रावण ने जो कहा, उसे मानो।

तब रोती हुई सीता बोली- हे भद्रे, तुम्हारे वचन नीति

विरूद्ध हैं, पतिव्रता स्त्रियों के मुख से ऐसे शब्द नहीं निकलते हैं। मेरे शरीर के आप लोग टुकड़े-टुकड़े कर दो, पर मैं पति के सिवाय अन्य पुरूष को मन में भी नहीं ला सकती, चाहे वह कामदेव के समान सुंदर क्यों न हो? मेरे पति व देवर असाधारण मनुष्य हैं, चरित्रवान हैं, वे ऐसे कामी के द्वारा नहीं मर सकते। **मरण का समय और निमित्त निश्चित हैं,** उसके लिए मैं अपना चरित्र क्यों छोड़ूँ? आपको अपने पति को नरक के मार्ग से हटाना चाहिए। उल्टे आप उनके पाप के मार्ग का समर्थन कर रही हो। आश्चर्य है, सच्चे हितैषी ऐसे नहीं होते, **सच्चे हितैषी वे होते हैं, जो कुमार्ग से हटाकर सच्चे मार्ग पर ले जाते हैं।**

कुशील मनुष्य की सम्पत्तियाँ केवल मल हैं, सुशील मनुष्य की दरिद्रता भी आभूषण होती है। तुम मेरे साथ चाहे जो कर लो पर मैं यह कार्य नहीं कर सकती।

इसी बीच रावण स्वयं वहाँ आया, उसने सीता से कहा- मुझ पर दया करो।

सीता बोली- कुशील मनुष्य दया के योग्य नहीं होते।

रावण- मैं तीनों लोकों में सुंदर हूँ, सबसे ज्यादा वैभवशाली हूँ, अनेक विद्याओं का स्वामी हूँ, बताओ मुझ में क्या कमी है?

सीता- तुम्हारे में चरित्र की कमी है, नीति की कमी है, धर्म की कमी है, मानवता की कमी है, एक कमी हो तो बताऊँ, तुम तो कमियों के पुतले हो। **चरित्र के बिना सुंदरता, वैभव, विद्याएं व्यर्थ हैं।** क्या तुम नहीं जानते कि स्वर्ग का स्वामी **इन्द्र भी चरित्रवान को नमस्कार करता है।**

रावण की दीनता क्रोध में बदल गई। उसने विद्या के द्वारा ड़रावने, विकराल, भयंकर पशु के रूप बनाकर सीता को ड़राया,पर सीता न ड़री, न रावण के शरण में गई।

×××××

दूसरे दिन सुबह विभीषण आदि रावण के पास पहुँचे। विभीषण को देखकर खरदूषण की स्त्रियाँ बहुत दुःखी होकर रोने लगीं।

उनकी रोने की आवाजें सुनकर सीता भी जोर-जोर से रोने लगी। सीता की आवाज सुनकर विभीषण ने कहा- यह किसी बहुत ही दुःखियारी स्त्री की आवाज लगती है, यह कौन है? यह सुनकर सीता और अधिक जोर से रोने लगी।

क्योंकि **सज्ञन के आगे शोक बढ़ता है।** सीता ने टूटे फूटे शब्दों से कहा-

हे बंधु, आप मेरे हितैषी कौन हो? जो इतने स्नेह से पूछ रहे हो। मैं राजा जनक की पुत्री, राम की धर्मपत्नी, भामण्डल की बहन, दशरथ की पुत्रवधू हूँ। खरदूषण के साथ लक्ष्मण युद्ध कर रहा था,तब मेरे भर्ता को छल से दूर कर इस दुष्ट रावण ने मेरा हरण किया। हे भाई, मेरे वियोग में मेरे पति प्राण छोड़ देंगे, उससे पहले मुझे उनके पास ले चलो।

इसके पश्चात् दुःख से भरे विभीषण ने रावण से कहा- हे भाई, यह परनारी, आप बिना विचारे क्यों लाये? दशों दिशाओं में फैले हुए आपके यशरूपी वन को जलाने के लिए यह दावानल के समान है। **परनारी की इच्छा अनुचित है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, दोनों लोकों को बिगाड़ने वाली है। लोकनिंदा विचारवान को मृत्यु से भी बढ़कर होती है। आप विचारवान हो, हम सब के स्वामी हो, चरित्र की मर्यादाएं राजारूपी किनारे के सहारे टिकी रहती हैं। राजा ही मर्यादाएं छोड़ दे तो प्रजा को सही मार्ग कौन दिखाएगा?** इसलिए मेरे विचार में सीता को वापिस लौटा दीजिए।

इस पर रावण ने कहा - हे भाई, इस धरती पर वह कौन-सा पदार्थ है, जिसका मैं स्वामी नहीं हूँ।

इस पर विभीषण ने कहा-वीतरागी मुनि,परायी स्त्री,पराये धन के आप स्वामी नहीं हो सकते।

विभीषण के साथ मारीच आदि भी रावण को सीता लौटाने के बारे में समझा रहे थे, रावण बीच में ही खड़ा हो गया और वैभव दिखाता हुआ देवारण्य वन में चला गया। उस वन में अशोक मालिनी नाम का बहुत बड़ा कुँआ था। उसके किनारे पर अशोक वृक्ष थे, उन्हीं अशोक वृक्षों के मण्डप में सीता को रखा था। उसकी निगरानी के लिए, अभिप्राय के अनुसार उसे मनाने के लिए रावण ने स्त्रियाँ नियुक्त की थीं। वह सीता के सामने जाकर गिड़गिड़ाया पर निराश होकर लौट आया।

महल से रावण दूती के रूप में स्त्रियाँ भेजता था, हर स्त्री हर बार निराश लौटती थी। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, वह सीता के लिए और ज्यादा दुःखी हो रहा था।

रावण कभी-कभी यह भी विचार करता था कि मैं मोहरूपी भूत से पीड़ित हो गया हूँ। वह कुछ-कुछ पागलपन की हरकतें भी करता था।

विभीषण ने मंत्रियों से सलाह की। सब ने यही सलाह दी कि सीता के वियोग में राम मर जायेगा, लक्ष्मण हमारा क्या बिगाड़ेगा? इसलिए हम सब मिलकर रावण की रक्षा करें और सीता यहाँ है- इसका बाहर किसी को पता न चले, ऐसा उपाय करें? यह निर्णय करके वे सब चले गए।

×××××

इधर किष्किन्धा नगरी का स्वामी सुग्रीव स्त्री के वियोग में दुःखी होकर सहायता के लिए खरदूषण के पास जा रहा था, उसने रास्ते में युद्धभूमि देखी। किसी मनुष्य ने उसे बताया कि खरदूषण और लक्ष्मण का युद्ध हुआ। उसमें खरदूषण मारा गया। राम की पत्नी सीता का अपहरण हुआ है। वह राम को अपने समान दुःखी जानकर राम के पास सहायता के लिए गया। राम के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया-

मैं किष्किन्धा नगरी के स्वामी सहस्ररश्मि का पुत्र हूँ। मेरे भाई बालि ने देवशास्त्रगुरु के अलावा अन्य को नमस्कार नहीं करने की प्रतिज्ञा ली थी, उससे रावण नाराज हुआ। वैभव, राज्य दोनों दुर्गति के कारण जानकर वे दीक्षा लेकर तपोवन में गये।

मैं पुत्र अंगद, पत्नी सुतारा आदि के साथ प्रेम से जीवन जी रहा था। कोई दुष्ट मायावी विद्याधर मेरे समान रूप धारण कर मेरी पत्नी व राज्य को हड़पना चाहता है। उसने मुझे राज्य से भगाया है। मैं कइयों के पास गया, किसी ने मेरा विश्वास नहीं किया, सभी ने मुझे ही नकली सुग्रीव समझ रखा है, इसलिए अंत में सहारा खोजता हुआ आपके पास आया हूँ।

राम ने मन में सोचा यह तो मुझ से भी ज्यादा दुःखी है, क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही इसे परेशान कर रहा है।

राम ने उसे सहायता का आश्वासन दिया। उन्होंने जाम्बूद मंत्री से दोनों सुग्रीवों का अंतर पूछा। असली सुग्रीव से कहा- आप नकली सुग्रीव से युद्ध करो। हम तुम्हारे साथ ही हैं, नकली को हम दबोच लेंगे।

दोनों में युद्ध हुआ, परन्तु दोनों की अत्यधिक समानता के कारण कहीं असली सुग्रीव न मारा जाय- यह सोच वे लौट आए।

इससे पूर्व हनुमान ने भी नकली सुग्रीव को हराने के लिए प्रयत्न किया था, परंतु अत्यधिक समानता के कारण वे भी वापिस लौट गये थे। सुग्रीव, हनुमान के ससुर थे, सुग्रीव की पद्मरागा नाम की पुत्री से हनुमान का विवाह हुआ था।

दूसरे दिन राम स्वयं ही नकली सुग्रीव के सामने युद्ध के लिए गए। उनके सामने आते ही नकली सुग्रीव के पास वैताली विद्या थी, वह भाग गई। उसी विद्या के कारण उस विद्याधर ने नकली भेष बना रखा था। नकली सुग्रीव का असली रूप सामने आया। वह साहसगति विद्याधर था। नकली सुग्रीव को राम ने

बंधक बनाया। सुग्रीव को उसका राज्य, पत्नी सुतारा आदि पुनः मिल गए। तब उसने प्रतिज्ञा की कि मैं सात दिन के भीतर सीता का पता लगाऊंगा, यदि सात दिन में पता नहीं लगा पाया तो अग्नि में भस्म हो जाऊंगा।

सुग्रीव ने अपनी तेरह पुत्रियाँ राम को दी थीं, उन्होंने अनेक प्रकार से राम को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया, पर वे राम को आकर्षित नहीं कर पाईं, क्योंकि राम का मन एकमात्र सीता से ही बंधा था।

सुग्रीव पत्नी व राज्य को पाने की खुशी में इतना मस्त हो गया कि वह सीता को खोजने के लिए जाना ही भूल गया। सुग्रीव के सीता का पता लगाने के लिए नहीं जाने से राम रोने लगे। राम का रोना देखकर लक्ष्मण ने सुग्रीव के पास जाकर गुस्से से कहा- अरे दुष्ट कृतघ्न तू अपनी पत्नी के साथ आनंद से रह रहा है, जिसने तुम्हारा समागम कराया, उस राम के दुःख को भूल गया।

घबराये हुये सुग्रीव ने राम के पास आकर क्षमा मांगी। और तुरंत ही वानरवंश की सेना जल्द ही चारों दिशाओं में भेजी। एक दूत के द्वारा भामण्डल के पास संदेश भिजवाया कि सीता का कोई अपहरण कर ले गया। भामण्डल बहन को याद कर खूब रोया। वह भी अपने स्तर पर खोज करने लगा।

सीता की खोज करता हुआ सुग्रीव स्वयं आकाशमार्ग से जा रहा था कि उसे कम्बु पर्वत पर हिलता हुआ कपड़ा दिखाई दिया, वह वहीं पहुँचा। वह कम्बु पर्वत था। उस पर्वत पर रत्नजटी था, जिसने सीता के अपहरण के समय रावण को रोका था, जिससे रावण ने उसकी विद्याएं छीन ली थीं, तब से वह इसी पर्वत पर रह रहा था। उसने सुग्रीव को, सुग्रीव ने उसे पहिचान लिया।

सुग्रीव ने उससे पूछा- पहले आप विद्याओं से युक्त थे, अब विद्यारहित दीनहीन क्यों, कैसे हो गए?

उसके उत्तर में रत्नजटी ने सीता के अपहरण संबंधी रावण के साथ घटित घटना सुनाई।

सीता के पता लगने से खुश हुआ सुग्रीव रत्नजटी को तुरंत ही राम के पास ले आया। सीता का समाचार सुनकर राम ने रत्नजटी का आलिंगन किया। उसे देवोपगीत नगर का राजा बनाया।

उसके बाद उत्सुकता से भरे राम ने विद्याधरों से पूछा - हे विद्याधरों बताओ लंका यहाँ से कितनी दूर है?

तब एक विद्याधर ने बताया लवण समुद्र में आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला एक **राक्षसद्वीप है। जो सात सौ योजन विशाल है,कुछ अधिक इक्कीस सौ योजन उसकी परिधि है। उस द्वीप के बीचों बीच त्रिकुट नाम का पर्वत है, जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है। वह स्वर्णमयी पर्वत अनेक रत्नों से जड़ा हुआ है। उस त्रिकुट पर्वत के शिखर पर लंका नाम की नगरी है। वह तीस योजन चौड़ी है, अनेक सुंदर नगरों से सहित है। वह राक्षस वंश के विद्याधरों की क्रीड़ाभूमि है।**

किसी दूसरे विद्याधर ने कहा- रावण इस समय उस नगरी का स्वामी है। विभीषण उसका भाई है, त्रिशूल नामक शस्त्र से सम्पन्न कुम्भकर्ण नाम का उसका एक और छोटा भाई है। उसके इन्द्रजीत, मेघनाद आदि अनेक वीर बेटे हैं। इसके अलावा उसके पास अनेक विद्याओं से सम्पन्न सैनिकों के अनेक झुण्ड़ के झुण्ड़ हैं, इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी अब तक अपराजित योद्धा है। उसने इन्द्र जैसे बलशाली राजा को हराया है। उसे युद्ध में जीतना असंभव है, इसलिए हमारे विचार में रावण से सीता को लाने का विचार ही निरर्थक है।

इस पर लक्ष्मण बोले- यदि रावण इतना बलवान है तो वह स्त्री का चोर क्यों हुआ? उसने चोरी छिपे स्त्री का अपहरण क्यों किया? वह कपटी, दुष्ट, नीच राक्षस है, उसमें शूरवीरता कहाँ है?

राम ने कहा- अब दूसरी बातों से क्या लेना देना? हमें जिसका समाचार भी मिलना असंभव था, उसका समाचार मिल गया है। हम हमले की तैयारी करें। उसके नीच कर्म ही उसे पराजित करेंगे।

तब एक वृद्ध विद्याधर ने कहा - हे राम, हे लक्ष्मण, हमारे पास इतना बल नहीं है कि हम रावण को पराजित कर सकें। परंतु एक उपाय है, जिसके द्वारा हम उसे पराजित करने के बारे में सोच सकते हैं। अनेकों ने आश्चर्य से पूछा बताइये, वह उपाय क्या है?

वह विद्याधर बोला- पहले एक बार रावण ने **अनंतवीर्य** नाम के सर्वज्ञ भगवान से हंसकर अपनी मृत्यु के बारे में प्रश्न किया था कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? तब भगवान ने बताया था जो देवों द्वारा पूजित, पवित्र कोटिशिला को उठायेगा, वही तुम्हारी मृत्य का कारण बनेगा।

उस समय रावण ने सोचा कि उस कोटिशिला को हिलाने की भी शक्ति किसी में नहीं है, उसे उठा सकने की बात तो बहुत दूर की है अर्थात् संसार में मेरी मृत्यु का कारण बन सके ऐसा कोई मनुष्य नहीं है।

वह विद्याधर बोला- यदि हममें से कोई कोटिशिला को उठाने में समर्थ होगा, तो ही हम रावण से युद्ध की सोचेंगे। अन्यथा उसके साथ युद्ध का मतलब हमारी मृत्यु है।

इसके बाद लक्ष्मण ने कहा- इसमें देर करने से लाभ नहीं है, चलें, इसी समय मैं प्रयत्न करता हूँ। रात्रि में ही सब कोटिशिला के पास गये।

कोटिशिला केशर, चंदन के लेप से महक रही थी। अनेक आभूषणों से सुसज्जित थी। सबसे पहले सबने उस शिला से मुक्त हुए सिद्धों को नमस्कार किया। सिद्धभूमि होने से सबने उसको

नमस्कार कर उसकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उसके बाद लक्ष्मण ने सिद्ध भगवान का स्तोत्र पढ़ा। सिद्ध भगवान की जय-जयकार के बीच वृद्ध विद्याधरों ने लक्ष्मण को आशीर्वाद देते हुए कहा कि इस सिद्धशिला से जो सिद्ध बने हैं, वे तुम्हारे लिए मंगलरूप हों, धर्म मंगलरूप हों।

इसके बाद लक्ष्मण ने ज्यों ही कोटिशिला उठाई, त्यों ही सबके चेहरे अचंभित करनेवाली खुशी से दमक उठे। प्रसन्नता से भरे उन सबने सिद्धों की, सम्मेदशिखर की, मुनिसुव्रत नाथ भगवान की पूजाएँ कीं। तीर्थक्षेत्रों की भाव-वंदनाएँ कीं और राम, लक्ष्मण की जय जयकार करते हुए सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धा में लौट आये।

वहाँ पहुँच कर राम ने कहा- अब किसकी प्रतीक्षा करनी है? चलें, लंका जाकर सीता को लाते हैं। वह बेचारी मेरे बिना बहुत दुःखी होगी। देर करने पर प्राण त्यागेगी।

इस पर एक बुजुर्ग विद्याधर ने कहा-हे राम! रावण तीन खण्ड़ का स्वामी है, उससे युद्ध बराबरी का युद्ध नहीं है। हम उसके सामने अल्प सेनावाले हैं। युद्ध में हिंसा भी बहुत होती है। यदि युद्ध लम्बे समय तक चला तो सीता की प्राप्ति में देरी होगी। इसलिए हममें से ज्यादातर का विचार है कि रावण को मान सम्मान देकर सीता को लौटाने के लिए कहा जाये। यदि रावण ससम्मान सीता को लौटाता है, तो युद्ध भी करना नहीं पड़ेगा, सीता भी शीघ्र प्राप्त होगी।

रावण विभीषण का कहा नहीं टालता। विभीषण अणुव्रतों का धारी धर्मात्मा है। विभीषण और रावण में परस्पर विशेष प्रेम है। विभीषण उसे समझायेगा, उसके समझाने से रावण समझ जायेगा और सीता को लौटा देगा। इसलिए हमारे संदेश को विभीषण एवं रावण तक पहुंचानेवाले, रावण को अपने वाणीचातुर्य से प्रसन्न

करनेवाले दूत को खोज कर उसे शीघ्र लंका भेजा जायें।

राम ने कहा- यदि यही उपाय आप सबको अच्छा लगता है, तो हम भी सहमत हैं, पर दूत को भेजने में देरी न करें। ऐसा दूत कौन हो सकता है? जो इस कार्य को निर्विघ्न सम्पन्न कर सके।

तब महोदधि नाम के प्रसिद्ध विद्याधर ने कहा- सुना है लंका की सुरक्षा बहुत कड़ी कर दी गई है। वहाँ बड़े-बड़े यंत्र लगाकर बाहर के किसी व्यक्ति का पहुँचना असंभव कर दिया है फिर भी पवनंजय राजा का बेटा **हनुमान** है, जो विद्यावान, प्रतापवान और बलवान है, वह उन यंत्रों को भेदने में समर्थ है। उसे ही इस कार्य हेतु निवेदन किया जाय।

'ठीक है', ऐसा कहकर राम ने श्रीभूति विद्याधर को शीघ्र ही हनुमान के पास भेजा। श्रीभूति ने अब तक का सारा वृतान्त हनुमान से कहा। सुग्रीव को राज्य और पत्नी की प्राप्ति करानेवाले राम के प्रति कृतज्ञता के भाव से हनुमान गदगद हुए, क्योंकि उस कार्य में हनुमान असफल हुए थे।

बिना किसी स्वार्थ के राम ने सुग्रीव की सहायता की थी, इसलिए राम को परोपकारी महापुरूष जान हनुमान श्रद्धापूर्वक सहर्ष कार्य के लिए तैयार हुए और तुरंत ही राम के पास आए। राम, लक्ष्मण को नमस्कार कर कहा- आपके गुणों से आकर्षित मैं शीघ्र ही आपका हितकारी कार्य करता हूँ, जाकर रावण को समझाऊंगा, वह बुद्धिमान है, समझ जाएगा। उसे समझाकर शीघ्र ही सीता को ले आता हूँ।

सीता, हनुमान को रावण की ही माया न समझ बैठे, इसलिए राम ने हनुमान को जीवन-प्रसंगों की अनेक अंतरंग बातें बतायीं और कहा कि ये बातें सीता से कहना, तब वह आपका विश्वास करेगी, क्योंकि ये बातें उसके और मेरे अलावा और कोई नहीं जानता। पहिचानस्वरूप मेरी यह अँगूठी उसे देना तथा मुझे

विश्वास दिलानेवाला महाकांतिमान् चूड़ामणि साथ ले आना।

सबसे नमस्कार कर उनके आशिष वचनों के साथ हनुमान लंका की ओर गए। अनेक नगरों को पार करते हुए हनुमान जब दधिमुखद्वीप के ऊपर से जा रहे थे, तब उन्हें नीचे जलता हुआ एक महावन दिखा। उसमें एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ दो चारण ऋद्धिधारी मुनि खड़े दिखे। उनसे थोड़ी दूरी पर तपस्विनी कन्याएं दिखीं। वे सभी धुंए से घिरे हुए थे, अग्नि उनकी ओर बढ़ रही थी। हनुमान ने विद्याबल से समुद्र के पानी से बादल बनाकर वर्षा करके आग को बुझाया, मुनिराजों का उपसर्ग दूर किया और जलते हुए अनेक प्राणियों के प्राण भी बचाए।

हनुमान ने मुनिराजों की वंदना की। पश्चात् उन तीन तरुणियों से पूछा - आप कौन हैं?

इसके उत्तर में उन तीनों में जो बड़ी थी, उसने बताया हम दधिमुख नगर के राजा गंधर्व की चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा, तरंगमाला नाम की पुत्रियाँ हैं। हमारी सुंदरता देखकर वहाँ का हर युवक हमारी ओर आकर्षित था, उनमें एक दुष्ट अंगारक था।

एक बार हमारे पिता ने अष्टांग निमित्त के ज्ञाता मुनिराज से हमारे विवाह के बारे मे पूछा था, तब उन्होंने कहा था कि साहसगति विद्याधर को मारनेवाला तरुण हमारा पति होगा। अंगारक को इस बात का पता चला तो वह बुरी नियत से हमें परेशान करने का अवसर ढूंढ रहा था। उससे बचने के लिए हम तीनों बहने **मनोनुगामिनी विद्या** सिद्ध करने लिए इस जंगल में आयी थीं, अंगारक को हमारा पता चला तो उसने आकर इस जंगल में आग लगाई। हमें यहाँ बारह दिन बीत गए हैं, अग्नि के उपसर्ग के कारण हमें आज ही विद्या सिद्ध हुई है। मुनिराजों को यहाँ आए हुए आठ दिन बीत गए हैं। हे बंधु, आप ने हम सब पर बहुत उपकार किया है।

हे महाभाग, आप नहीं आते तो हमारी मृत्यु तो निश्चित थी ही। चलते फिरते धर्मस्वरूपी मुनिराज भी जल जाते। इन्हें बचाकर आपने बहुत बड़ा पुण्यकार्य किया है।

पूछने पर हनुमान ने अपना परिचय देकर साहसगति विद्याधर को मारनेवाले राम का परिचय देकर, लंका जाने की बात विस्तार से बताई।

हनुमान लंका गए। लंका के बाहरी परिधि पर अनेक यंत्र लगे हुए थे, जो मायामयी थे। उसकी बाहरी परिधि की रक्षा वज्रायुध नाम का राजा कर रहा था। हनुमान को देख वज्रायुध सेना के साथ हनुमान पर झपटा। हनुमान ने उसे तेज बाणों से मार दिया। उसके मरते ही वज्रायुध की पुत्री लंकासुंदरी युद्ध करने लगी। युद्ध करते-करते वह हनुमान पर मोहित हो गयी। दोनों का मिलन हो गया।

लंकासुंदरी के पूछने पर हनुमान ने बताया कि रावण के प्रति मेरा सद्भाव था, परंतु सीता के अपहरण करने के बाद वह समाप्त हो गया है। इससमय मैं राम और सीता का मिलन कराने के लिए दूत बनकर आया हूँ । उसके बाद हनुमान ने निशंक होकर लंका में प्रवेश किया।

वे विभीषण के महल में गए। विभीषण हनुमान को पहले से ही जानते थे, इसलिए विभीषण ने उनका स्वागत किया। एक दूसरे की कुशलक्षेम पूछने के बाद हनुमान ने कहा-

तीन खण्ड का स्वामी रावण, तुच्छ व्यक्ति की तरह पराई स्त्री को चोरी करके लाया है- क्या यह उन्हें शोभा देता है? **राजा ही प्रजा का मूल होता है, वही अनाचार करे, तो प्रजा को अनाचार से कैसे रोक सकेगा?**

तब विभीषण ने कहा- मैंने रावण को कई बार इस विषय में समझाया, परंतु वे समझते नहीं। अब उन्होंने मेरे साथ बातचीत

बंद कर दी है। फिर भी आपके कहने से कल प्रातः मैं उनसे बात करूँगा।

सीता को आहार-पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है, फिर भी रावण को उससे विरक्ति नहीं हुई, उस पर दया नहीं आ रही है।

विभीषण से बात करके हनुमान देवारण्य उद्यान में गए, जहाँ सीता थी। हनुमान दूसरा रूप धारण कर चुपचाप पैर रखते हुए सीता के पास जाकर सीता की गोद में राम की दी हुई अंगूठी रख दी। अंगूठी देख सीता हँसी। सीता की हँसी के समाचार वहाँ की दासी ने रावण को दिये। उधर रावण खुश हुआ।

रावण के कहने से मंदोदरी सीता के पास जाकर कहने लगी- आज तुमने प्रसन्न होकर हम सब पर बड़ा उपकार किया है, अब रावण की रानी बनकर उसका प्रेम प्राप्त करो।

सीता ने गुस्से से कहा- हे दुर्बुद्धि, तेरा कहना मेरे स्वामी जान जायेंगे, तो समझ ले, तू निश्चित ही विधवा हो जायेगी। मेरे पति का समाचार आया है, इसलिए मैं हँसी थी। आज मेरा कोई हितैषी बंधु आया है। मंदोदरी ने सोचा यह भूख से पागल हो गई है।

इसी बीच हनुमान असली रूप धारण कर सीता के पास खड़े हो गए। सीता के सामने हाथ जोड़कर अपना परिचय देकर राम का संदेश सुनाया। सूखते हुए वृक्ष को पानी की तरह सुखद समाचार से सीता को नवजीवन-सा मिला। उसे कितनी खुशी हुई थी इसे शब्दों में नहीं कह सकते। उसने विश्वास पक्का करने के लिए हनुमान से कहा- मेरे वियोग से दुबले हुए राम की अंगुली से अंगूठी गिर गई हो, और वह तुम्हें मिली हो, उसे उठाकर तुम लाये हो। कहीं ऐसा तो नहीं?

हनुमान ने कहा-नहीं, देवी ऐसा नहीं है। उसके बाद हनुमान ने वो सारी गोपनीय बाते बतायीं। उससे सीता को पक्का विश्वास हुआ। उसके बाद यह भी बताया कि लक्ष्मण ने सूर्यहास खड्ग

कुतुहलवश उठाया था, उठाकर उसकी परीक्षा की थी। अनजाने में शंबुक मारा गया। चंद्रणखा दुःखी हुई। राम, लक्ष्मण को देखकर दुःख भूलकर उन पर आसक्त हुई। उनके द्वारा ठुकराने पर झूठा आरोप लगाकर पति खरदूषण से युद्ध करवाया। खरदूषण की सहायता के लिए रावण आया। रावण आपको देख मोहित हुआ। राम को छल से दूर कर आपका हरण कर लंका लाया है। इस तरह अब तक की घटित सारी घटनाएं सुनायीं। युद्ध से लाभ नहीं, इसलिए सबने मुझे दूत बनाकर भेजा है। श्रीराम के हम पर उपकार हैं। वे धर्मात्मा हैं, नीति पर चलनेवाले हैं, इसलिए उनका दूत बनकर आया हूँ।

उनके संवाद के बीच में मंदोदरी ने हनुमान से कहा - विद्याओं का स्वामी होने पर भी तुच्छ मनुष्यों का दूत बना है - क्या तुम्हे शोभा देता है?

हनुमान बोले- तीन खण्ड का स्वामी ,अठारह हजार कन्याओं का पति होते हुए तुम्हारा पति पराई स्त्री की चोरी करता है - क्या यह उन्हें शोभा दिया है? पटरानी होकर उन्हीं की दूत बनकर पापकार्य कर रही हो- क्या तुम्हें शोभा दे रहा है ?

कुपित होकर मंदोदरी बोली- तू रावण के उपकारों को भूलकर उनके विरोधियों का दूत बनकर आया है। इस बात का पता चलेगा तो वे तुम्हारी दुर्गति करेंगे।

हनुमान के बारे में ऐसे अनिष्ट शब्द सुनकर सीता को गुस्सा आया और गुस्से में बोली- **सत्य का पक्ष लेनेवालों की दुर्गति नहीं होती, बल्कि उनकी गति सुधरती है।** रावण चोर होने पर भी उससे सुलह की सोचनेवाले राम ही हो सकते हैं।

क्या रावण किसी चोर के साथ ऐसा बर्ताव कर सकता है? वह स्वयं चोर है, ऐसी चारित्रिक ऊंचाइयों को क्या छू पायेगा? **जो स्वयं गड्ढे में गिरा हुआ है, वह दूसरों को गड्ढे से कैसे निकाल**

सकता है?

यदि हनुमान के पास पुण्य है तो हजार रावण भी उसका बाल बांका नहीं कर सकते। इसलिए ऐसे अपशब्द अपने पास रखो। पापी पति के समर्थन से तुम सब शीघ्र ही वैधव्य को प्राप्त हो जाओगी।

सीता की नसीहत से मंदोदरी आदि रानियाँ आगबबूला होकर सीता की ओर उसे मारने के लिए दौड़ी थीं कि हनुमान नदी के सामने पर्वत की तरह उनके सामने खड़े हो गये। वे सब मन मसोस कर रावण के पास शिकायत करने पहुंचीं।

इधर हनुमान ने उनके साथ आयी **इरा** नाम की दासी को भोजन लाने के लिए भेजा। लंका की चारदिवारी से बाहर जहाँ हनुमान ने सैनिक रूकवाये थे, इरा उस डेरे में गई। शुद्ध आहार व जल लेकर आई, तब तक दिन निकले चार घड़िया बीत गईं जानकर तथा पति का समाचार मिलने तक की उसकी प्रतिज्ञा पूरी हुई जानकर हनुमान के आग्रह पर सीता ने पंचपरमेष्ठी की भक्ति करके आहार ग्रहण किया।

हनुमान ने विभीषण के महल में जाकर आहार लिया। आहार के बाद हनुमान सीता के पास जाकर कहने लगे- हे देवी, मेरे कन्धे पर चढो, आपका भाई आपको क्षणभर में ही समुद्र लांघकर जैसे मुनि निरंतर आत्मा का ध्यान करते हैं, वैसे आपका ही निरंतर ध्यान करनेवाले राम के पास पहुँचाता हूँ ।

सीता बोली- स्वामी की आज्ञा के बिना मेरा जाना योग्य नहीं है। इस अवस्था में पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगी? इस समय लोग मृत्यु के बिना मेरी शुद्धि का विश्वास नहीं करेंगे। भाई, **प्रजा बहुमुखी होती है। तरह-तरह की बाते करती हैं। हमारा कार्य ही उनका जवाब होता है।** इसलिए मेरा कार्य यही है कि मैं राम की आज्ञा के बिना यहाँ से नहीं जाऊँगी।

हे भाई, जब तक रावण की ओर से कोई संकट आये, उससे पहले शीघ्र ही जाओ, यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत करो। श्री राम को विश्वासदायक चूड़ामणि दो और उनको विश्वास दिलाने वाली ये बातें बताना। ऐसा कहकर सीता ने बहुत-सी बाते बताते हुए सीता रोने लगी। तब हनुमान ने उसे सांत्वना देकर जाने की आज्ञा मांगी।

हनुमान ज्यों ही जाने लगे, तब तक रावण के आदेश से हनुमान को पकड़ने के लिए अनेक सैनिक आये थे। हनुमान ने उनको तुरंत भगाया, तब तक और सैनिक आ गए। हनुमान के पास उस समय कोई शस्त्र नहीं था, इसलिए उन्होंने पेड़ उखाड़ उखाड़ कर उन पर फेंके। इसी बीच इन्द्रजीत और मेघवाहन ने आकर हनुमान को नागपाश से बांध लिया और रावण के दरबार में ले गए। रावण ने गुस्से में आकर लोहे की सांकलों से बंधवा दिया। भरे दरबार में कहा- इसे घसीटते हुए चौराहे तक ले जाओ, वहाँ इसे सबके सामने फांसी पर चढाओ। क्योंकि यह धोखेबाज है, निर्लज्ञ है, दुष्ट है, इसने भूमिगोचरियों की सेवा की है, न केवल सेवा की बल्कि हम को भारी नुकसान पहुँचाया है, यह सब तरह से कृतघ्न है।

यह सुनकर हनुमान को बहुत गुस्सा आया। फिर भी उन्होंने व्यंगात्मक हँसकर कहा-

कौन जानता है ? **पुण्य के बिना दण्डयोग्य कौन है ?** किसका पुण्य क्षीण हुआ है ? पुण्य क्षीण होने से दुर्बुद्धि के साथ किसकी मृत्यु यहाँ नाच रही है? यह हम कुछ ही दिनों में देखेंगे।

जैसे पर्वत बादल को रोक नहीं सकते, उसी प्रकार जिन के पराक्रम को कोई रोक नहीं सकता, ऐसे लक्ष्मण, राम के साथ यहाँ आ रहे हैं। ईंधन से अग्नि कभी शांत नहीं होती, ऐसे ही अठारह हजार रानियों से जो तृप्त नहीं हुए ऐसे आपकी कामाग्नि

को बाणवर्षा के द्वारा बुझाने के लिए राम लक्ष्मण आ रहे हैं।

हे रावण, **दुर्बुद्धिजन को सैंकडों लोगों का उपदेश व्यर्थ होता है,** उसी प्रकार तुम्हें लोगों का समझाना व्यर्थ गया, क्योंकि **विनाश पास हो तो बुद्धि सन्मार्ग पर नहीं चलती।** परस्त्री के लोभी आप इसी पाप के फल से लक्ष्मणरूप निमित्त से मृत्यु को शीघ्र प्राप्त होवोगे। तब लोग यही कहेंगे कि महाराज रत्नप्रभ से चले आ रहे, इस उत्तम वंश को अधम रावण ने नष्ट कर दिया। कहाँ गई तुम्हारी बुद्धि? जो जिनभक्ति में लीन रहती थी, चोरी छिपे पराई स्त्री का अपहरण करते हो, ऐसे कार्य के कारण तुम्हारा जीवन छिलके के समान असार, व्यर्थ हो रहा है। तुम्हें इस महापाप का फल अवश्य मिलेगा। अब भी समय है, सीता को लौटा दो।

हनुमान के शब्दबाणों से घायल रावण का हाथ ज्यों हि तलवार पर गया, त्यों ही हनुमान बंधन तोड़कर महल की छत को छिन्न-भिन्न करते हुए आकाश में वैसे ही उड़ गए, जैसे **मोहबंधन को तोड़कर मुनि आत्मा में प्रवेश करते हैं।** रावण का राजभवन बिखर गया, मात्र खंभे शेष रहे। दरबारीजन घायल हो गए। हनुमान के बंधन के समाचार से दुःखी, रोती सीता को दासी ने बताया रोओ मत, देखो, हनुमान तो बंधन तोड़कर आकाश मार्ग से उड़ते हुए जा रहे हैं।

सीता ने उसे कृतज्ञता और अनेक आशिष दिये। सीता ने सोचा ऐसे बंधनों को तोड़नेवाला मेरा यह भाई शीघ्र ही कर्मबंधनों को तोड़कर सिद्ध के रूप में मेरा नमस्कार प्राप्त करेगा। इन्हीं विचारों से हनुमान के प्रति श्रद्धा के रूप में उसके हाथ अपने आप जुड़ गए। वह निश्चिंत हो गई।

×××××

हनुमान किष्किन्धा नगरी के महल में पहुंच गए। सबसे पहले नमस्कार आदि विनय के साथ राम को सीता की कुशलता

के समाचार सुनाए। सीता का चूड़ामणि दिया और कहा- जैसे मोक्षार्थी जीव सब पदार्थों से लक्ष्य हटाकर एक मात्र आत्मा का चिंतन, मनन, ध्यान करता है, वैसे सीता सिर्फ आपका ही चिंतन, मनन, ध्यान करती है। रावण को समझाया पर सब व्यर्थ गया।

सीता के समाचार सुनते-सुनते राम की आंखों से आंसु छलक आये, वे बहुत दुःखी हुए, पर मन के किसी कोने में उनको सीता के जीवित होने के समाचार से तसल्ली भी महसूस होती रही।

हनुमान ने कहा शोक क्यों करते हों? भाग्य से सीता का पता चला है, वह पराक्रम से प्राप्त हो जाएगी?

राम बोले- सुग्रीव दीर्घसूत्री प्रतीत होते हैं, भामण्डल बार बार संदेश भेजने पर भी अब तक नहीं आये, भुजाओं और नौकाओं से लवण समुद्र पार करना अशक्य है, फिर भी कल सुबह ही प्रस्थान करेंगे।

वहाँ विद्यमान सिंहनाद विद्याधर ने कहा- रावण शक्तिशाली है, हनुमान के द्वारा उसके बाग-बगीचे तहस नहस कर देने से क्रुद्ध भी हो गया है, उसे कैसे जीते? सोच विचार कर आगे बढ़ना चाहिए।

वहीं पास बैठे चन्द्रमरीचि विद्याधर ने कहा- अपराध के कारण शेर भी हिरण जैसा होता है। रावण ने अपराध किया है। मृत्यु उसके आगे नाच रही है। वह कौन है? इससे क्या? हमें अपने कर्तव्य पर ध्यान देना है और रावण के अन्याय का विरोध करना है। जिनेन्द्र के वचन अन्यथा नहीं होते हैं। रावण का नाश लक्ष्मण के द्वारा ही होगा, इन्होंने ही कोटिशिला उठायी है, इसलिए जिनवचन हमारे पक्ष में हैं, हमें प्रयत्न करके उन्हें सिद्ध करना है।

चन्द्रमरीचि के वचन से सबके चेहरे खिल गए। सब सुबह की प्रतीक्षा करने लगे।

सुबह हुई। सब ने पंच परमेष्ठी की भक्ति की। **मंगसिर बदी**

पंचमी के दिन प्रातः सब ने प्रस्थान किया, तब निम्न शुभ शगुन हुए-दक्षिण में बिना धुंए की अग्नि दिखी, मोर की मधुर आवाजें सुनाई दीं, सजी धजी सुहागने दिखीं, सुगंधित वायु बहने लगी, मुनिराज के दर्शन हुए, घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई दी, घंटों की ध्वनियाँ सुनाई दीं, दही से भरा घड़ा दिखा। बायीं ओर कौआ बोलने लगा। शंख का शब्द सुनाई दिया। इन शुभ शगुनों के बीच जयकारों से आकाश को गुंजायमान करते हुए सब ने प्रस्थान किया।

थोड़े ही समय में वे वेलन्धर पर्वत पहुंचे। वहाँ समुद्र नाम का राजा था, उसे नल ने पराजित किया। वे आगे बढ़े। सुवेल नगर पहुँचे। वहाँ सुवेल नाम का ही राजा था, उसे पराजित किया। वहाँ अक्षय नामक उद्यान में रात भर रुककर आगे बढे। हंसद्वीप में पहुँचे। वहाँ के राजा हंसरथ को पराजित कर दूसरे दिन वहीं ठहरे। वहीं पर भामण्डल की प्रतीक्षा करने लगे ।यहाँ से लंका पास ही थी।

रामसेना आने की सूचना लंका में पहुंच चुकी थी। रावण भी युद्ध की तैयारी करने लगा था। रावण को युद्ध के लिए तैयार देख, विभीषण उसके पास गए और हाथ जोड़कर कहने लगे-

हे भाई, हे प्रजा-परमेश्वर, आप बहुत समय से मुझ से नाराज हो, मुझ से बात नहीं करते, आप शास्त्रों के पारगामी विद्वान हो, उत्कृष्ट भक्त हो, श्रेष्ठ श्रावक हो, प्रजावत्सल हो, पृथ्वीतल पर यशस्वी हो, परंतु एक मात्र पराई स्त्री के मोह के कारण आपके सभी गुण वैसे ही नष्ट हो रहे हैं, जैसे आग से अच्छे वृक्षों के साथ वन की शोभा नष्ट होती है। गुण पूर्णरूप से आपके छोड़ दे, उससे पहले ही सीता राम को सौंप दीजिए। इसमें आपको नुकसान क्या है? क्योंकि वह आपको चाहती ही नहीं, बल्कि चोर समझती है। आपके नियम के अनुसार जो स्त्री आपको चाहती नहीं, उसके साथ आप जबरदस्ती नहीं करेंगे। उस नियम को

ध्यान में रखते हुए भी सीता को लौटाने में आपको फायदा ही है। सुलह की पहल करके उन्होंने बड़प्पन दिखाया है, सीता सौंपकर हम भी अपना बड़प्पन दिखाये। इसमें कोई दोष नहीं है।

इसी बीच पिता के स्वभाव को जाननेवाले इन्द्रजीत ने कहा- हे भले मानुष! आपको किसने पूछा? जो इस तरह शत्रु के पक्ष की सलाह दे रहे हो, ऐसी सलाह देनेवाला मूर्ख होता है। आपको युद्ध से ड़र लग रहा हो तो मत करो, लेकिन नपुंसकता बढ़ानेवाले ऐसे शब्द तो मत कहो। मेरे पिता इस धरती के एकमेव राजा है, राजा का हर वस्तु पर अधिकार होता है। सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्रीरत्न को पाकर मूर्ख की तरह उसे क्यों खोये? इसलिए आपकी बातें भूसे की तरह बेमतलब की हैं।

उसे ड़ाटते हुए विभीषण ने कहा- इस तरह बोलनेवाला तू, रावण का पुत्र नामधारी शत्रु है। जो घर में लगी आग को ईंधन से बुझाना चाहता है। तेरा पिता सीता नहीं, अपने लिए दुर्गति लाया है। दुर्गत्ति से बचाने के लिए ही बिना पूछे समझा रहा हूँ।

विभीषण की इन बातों को सुनकर रावण को इतना गुस्सा आया कि उसने विभीषण को मारने के लिए तलवार निकाली, विभीषण ने भी वृक्ष उखाड़ लिया। दोनों आमने सामने हो गए। इन दोनों भाइयों को मंत्रियों ने बड़ी कठिनाई से रोका।

क्रोध से तिलमिलाए रावण ने कहा- आग जिस लकडी के आश्रय रहती है, उसी को जलाती है, वैसे ही अपने आश्रय को नष्ट करने पर तुला यह दुष्ट मेरे नगर से निकल जाये। नहीं तो यहाँ रहने पर इसे नहीं मार दूँ तो रावण न कहलाऊँ?

उसके बाद विभीषण ने कहा- मैं यहाँ रहूँ तो रत्नप्रभ का पुत्र ही नहीं। यह कहकर विभीषण लंका से निकल गए। उनके प्रेम व आदेश में रहनेवाले विद्युद्घन आदि अनेक शूरवीर उनके साथ गए। वे सब हंसद्वीप में राम के पास आये।

अनेक लोगों ने राम से शंकाएं कीं कि हो सकता है, यह रावण की ही कोई चाल हो आदि आदि, परंतु राम ने उनसे कहा- विभीषण की धर्मनिष्ठा, ईमानदारी विश्व-प्रसिद्ध है, इसलिए वे रावण की किसी तरह की चाल का हिस्सा नहीं हो सकते। **संसार में धन, जमीन, स्त्री के कारण भाई-भाई के बीच बैर होता है, उसमें जाति, कुल या एक पिता का सम्बन्ध कारण नहीं होता है।**

भामण्डल, विभीषण आदि के आने से उत्साहित राम आदि ने हंसनगर में आठ दिन बिताए, योजना बनाकर लंका की ओर चले। शीघ्र ही रणभूमि पहुँच गए।

युद्धभूमि की चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाई की कुछ सीमा ही नहीं थी। युद्धभूमि में दोनों ओर की सेनाएं आ गईं।

एक अक्षौहिणी सेना में इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ और इतने ही हाथी तथा पैंसठ हजार छह सौ दस घोड़े तथा एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास पैदल सैनिक होते हैं। ऐसी चार हजार अक्षौहिणी सेनाएं रावण के पास थीं। सुग्रीव की सेना एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण थी। भामण्डल की सेना कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण थी। इसके अलावा राम के पक्ष में अन्य मित्र राजाओं की सेनाएं थीं, जो पुण्यशाली राम के मित्र बन गए थे, क्योंकि-

पुण्यानुभावेन महानराणां भवन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः।
कुपुण्यभाजां तु चिरं सुशक्ता विनाशकाले परतां भजन्ते॥

अर्थ- महापुरूषों के पुण्य के प्रभाव से शत्रुराजा भी आत्मीय हो जाते हैं, और पुण्यहीनों के चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पराये हो जाते हैं। इसलिए

भ्राता ममायं सुहृदेष वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेति।
संसार वैचित्र्यविदा नरेण नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्याः।।

अर्थ- संसार की विचित्रता जाननेवाले मनुष्य को कभी ऐसा विचार नहीं करना चाहिए कि यह मेरा भाई, यह मित्र,यह मेरा सेवक है, यह बंधु है, यह सुख देनेवाला है, क्योंकि पुण्य के उदय में जो भाई आदि हैं, पाप के उदय में वे शत्रुत्व का व्यवहार करते हैं।

अठारह हजार रानियों के रहते हुए एक भूमिगोचरी की विवाहिता पत्नी को पाने के लिए युद्ध को तैयार रावण पुष्पक विमान पर आया था। रावण के आते समय निम्न अपशगुन हुए-

भालुओं का झुण्ड़ दक्षिण की ओर दिखायी दिया। गिद्ध आकाश में उड़ रहे थे। भय से व्याकुल अनेक पक्षी इधर-उधर उड़ रहे थे। इसप्रकार के अशुभ शगुनों के साथ रावण युद्धभूमि में पहुँचे।

रणभेरी के साथ युद्ध शुरू हुआ। सैनिक, प्रसिद्ध वीर एक दूसरे पर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा करने लगे। बहुत देर तक युद्ध के बाद नल ने हस्त को, नील ने प्रहस्त को घायल कर निर्जीव कर दिया। युद्ध में सैनिक परस्पर मारने लगे। अनेक मारे गए। अनेक बचाए गए, अनेक उदासीन रहे, क्योंकि-

हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना।
औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम्।।

अर्थ- पूर्व में जिसने जिसको मारा, उसके द्वारा इस जन्म में वह मारा गया। पूर्व में जिसने जिसकी रक्षा की, उसके द्वारा इस जन्म में उसकी रक्षा की। पूर्व में जो एक दूसरे से उदासीन रहे, वे इस जन्म में भी परस्पर उदासीन रहे।

एक दूसरे को ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ। रावण का कुम्भकर्ण नाम का प्रसिद्ध बलवान भाई हनुमान से युद्ध करने लगा। मेघवाहन ने भामण्डल को ललकारा। उस ने भामण्डल को नागबाणों से घेर लिया। इसी तरह इन्द्रजीत ने सुग्रीव को नागबाणों से बांध दिया। कुम्भकर्ण ने हनुमान को

अपने हाथों मे जकड़ लिया, अंगद ने चोरी-छिपे जाकर कुम्भकर्ण का अधोवस्त्र खोल दिया। जब तक वह वस्त्र को सम्भालता, तब तक हनुमान उसके हाथों की कैद से मुक्त होकर निकल गए।

लक्ष्मण ने राम से कहा- भाई, भामण्डल और सुग्रीव नागपाशों से बंधे पडे हैं। उससमय राम ने गरूड़ेन्द्र महालोचन को याद किया। गरूड़ेन्द्र महालोचन ने आकर राम के लिए सिंहवाहिनी, लक्ष्मण के लिए गरूड़वाहिनी- ये दो विद्याएं तथा लक्ष्मण के लिए विद्युत्वक्त्र नामक गदा तथा राम के लिए हल तथा मूसल शस्त्र प्रदान किए और चला गया।

लक्ष्मण गरूडास्त्र को लेकर आगे बढ़े। उनके आते ही नागपाश के बंधन नष्ट हुए। भामण्डल, सुग्रीव पाशबंधन से आज़ाद हुए।

युद्ध में रावण और विभीषण आमने-सामने हो गए। रावण विभीषण को सामने देख क्रोध से भड़क उठा और बोला- तू छोटा भाई है, अतः तू मारने योग्य नहीं है, तू सामने से हट जा, मैं तुझे देखना नहीं चाहता।

इस पर विभीषण बोले- आप उमर में बड़े हैं, पर आचरण में मुझ से बहुत छोटे हैं। कुछ समय पहले तक धर्मात्मा थे, पर पराई स्त्री के हरण से तुम्हारें सभी गुण नष्ट होकर कलंक के रूप में सामने आये हैं। अब भी भला चाहते हो तो सीता को लौटा दो, परस्त्री की वजह से वंश को कलंकित मत करो। जहर को अमृत समझ कर पी रहे हो। **जहर को अमृत के समझने से क्या जहर मारता नहीं है ?** दुर्गति से बचने के लिए अब भी मौका है।

विभीषण की बातों से आग में घी की तरह रावण का क्रोध बढ़ा।

रावण बोला-छोटा होकर भी मुझे उपदेश दे रहा है। अरे परिवारद्रोही! तुझे अभी खत्म करता हूँ, यह कहकर रावण ने विभीषण पर शूल नाम का अस्त्र छोड़ा, जिसे लक्ष्मण ने बीच में

ही रोका। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को नागबाणों से जकड़ लिया। राम ने कुंभकर्ण को।

रावण ने गुस्से में आकर लक्ष्मण पर शक्ति चलायी, जिससे लक्ष्मण घायल होकर धरती पर गिर पड़े। लक्ष्मण को घायल देखकर राम को गुस्सा आया। उन्होंने रावण पर बाणों से प्रहार किये। रावण को छह बार रथ से रहित कर दिया। लेकिन रावण न घायल हुआ, न ही मरा। राम ने सोचा रावण का अभी मरने का समय नहीं आया है, तभी तो छह बार रथ से रहित करने के बावजूद नहीं मरा। मेरे बाणों से पहाड़ भी ढह जाते हैं, आदमियों की बात ही क्या?

बाद में राम ने रावण से कहा- हे विद्याधरों के राजा पूर्व का पुण्य आज भी तुम्हारे साथ है, वही तुम्हारा रक्षक है,परंतु मेरा पुण्य ठीक नहीं है, भाई लक्ष्मण धरती पर बेहोश पड़ा है,मरनेवाला है, तुम अनुमति दो तो उसका अंतिम बार मुँह देख लूँ!

रावण यह सोचकर महल चला गया कि लक्ष्मण मरेगा, और वह मरेगा तो राम अपने आप मरेगा, सीता निरूपाय हो, अपने आप मेरी होगी। परंतु इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण को नागपाश से बांधकर शत्रु ले गए- यह सुनकर बहुत दुःखी भी हुआ।

श्रीराम लक्ष्मण के पास गए। लक्ष्मण को बेहोश देख, वे भी बेहोश हो गए। जब होश में आए तब विलाप करने लगे। लक्ष्मण से कहने लगे- भाई, मैं माताओं को क्या जवाब दूँ? उन्होंने तुम्हें मुझे सौंप रखा था। मैं भी तुम्हारे साथ अग्नि में प्रवेश करूंगा।

विलाप करते हुए राम को विभीषण आदि सांत्वना देकर ड़ेरे में ले आए। राम लक्ष्मण को छूना चाहते थे,पर जाम्बूद ने उन्हें यह कहकर रोका कि शक्ति लगनेवाले को छूने से उसका असर छूनेवाले पर भी होता है। जाम्बूद ने कहा कि राम दुःखी मत होवो, लक्ष्मण नारायण हैं, इनकी असमय में मृत्यु नहीं हो सकती।

इससे राम कुछ आश्वस्त हुए, पर उनका दुःख कम नहीं हुआ। सब मिलकर लक्ष्मण के इलाज की चिंता करने लगे। इलाज सूर्योदय से पूर्व ही होना चाहिए, क्योंकि सूर्योदय के बाद कुछ भी हो सकता है, लक्ष्मण की मृत्यु हो सकती है। सभी विचार करने लगे कि लक्ष्मण को लगी हुई शक्ति दिव्य है, उसे जड़ी बूटी, दवाइयों से हटाया नहीं जा सकता।

सीता ने सुना कि लक्ष्मण शक्ति से घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वह शोक से विलाप करने लगी। विलाप करते-करते बेहोश हो गई। फिर होश में आकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगी। कहने लगी-भाई ? मेरे कारण तुम्हारे ऊपर दुःखद घड़ी आई है। मैं ऐसी विपत्ति में हूँ कि तुम्हारा मुँह भी देख नहीं पाऊंगी? कैसे बुरे दिन आये हैं ? भाग्य कितना खराब चल रहा है? मेरे लिए आप लोग लड़ रहे हो, मर रहे हो। हे परमात्मा! देखो, मेरे कारण कितने जीव मर रहे हैं। मैं क्या करूँ? सीता के दुःख का ठिकाना नहीं था।

राम आदि सभी विद्याधर चिंता से व्याकुल होकर सोच रहे थे, परंतु कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। इसी बीच एक मनुष्य ड़ेरे के दरवाजे पर आकर ड़ेरे में जाने लगा, तब दरवाजे पर खड़े भामण्डल ने उसे रोका। पूछा- तू कौन है? भीतर क्यों जा रहा है? उस आदमी ने कहा - मैं राम के दर्शन करना चाहता हूँ। मुझे शीघ्र ही भीतर ले चलो, लक्ष्मण की शक्ति को दूर करने का उपाय जानता हूँ। देर मत करो, मुझे राम के पास ले चलो। चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है। भामण्डल उसे राम के पास ले गए। उसने राम से कहा- द्रोणमेघ राजा की बेटी विशल्या के द्वारा छुए हुए जल से लक्ष्मण को लगी शक्ति उनके शरीर से निकल जाएगी।

राम ने पूछा- तुम्हें कैसे पता? चन्द्रप्रतिम ने कहा- एक बार भरत के राज्य में महामारी फैली थी। ऐसा एक भी प्राणी नहीं

बचा था, जो बीमार न हो, सिर्फ द्रोणमेघ राजा का परिवार, उनसे सम्पर्कवालों में से कोई बीमार नहीं हुआ, जब भरत ने उन्हें कारण पूछा तब द्रोणमेघ ने बताया कि मेरी पुत्री विशल्या के छुए हुए जल, वायु से हम पर कभी कोई बिमारी नहीं आती। द्रोणमेघ की पुत्री के छूए सुगंधित पानी को छिड़कने से भरत आदि सब नीरोग हुए थे। हे राम, मुझ पर विश्वास कर शीघ्र ही विशल्या के छूए हुए सुगंधित जल को लाने का प्रयत्न करो और लक्ष्मण को शीघ्र ही शक्तिरहित स्वस्थ करो।

बिना देरी किए राम ने हनुमान, भामण्डल, अंगद को अयोध्या की ओर रवाना किया। भरत ने उनसे सारी घटनाएं सुनकर कहा विशल्या का स्नानजल क्या? आप विशल्या को ही ले जाइए। कैकयी स्वयं द्रोणमेघ के पास जाकर विशल्या को ले आयी।

हनुमान आदि विशल्या को लेकर आए। वह ज्यों-ज्यों लक्ष्मण के नजदीक आती गई, त्यों-त्यों शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकलने लगी। वह शक्ति ज्योंहि निकल कर जा रही थी, त्योंहि हनुमान ने उसे पकड़ लिया। उस शक्ति ने हनुमान से हाथ जोड़कर कहा-

हे देव, मुझ पर नाराज न होइए, हम पराधीन हैं। मेरा नाम **अमोघ-विजया** है। एक बार रावण ने बालि मुनि एवं जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करते समय वीणा का तार टूटने पर हाथ की नस तोड़कर वीणा से जोड़कर भक्ति की थी। उसकी भक्ति से धरणेन्द्र का आसन हिला, तब धरणेन्द्र ने रावण के पास जाकर मुझे सौंपा।

संसार में विशल्या के अलावा मुझे कोई किसी के शरीर से हटा नहीं सकता था। विशल्या ने पूर्वजन्म में ऐसा कठोर तप किया कि संसार की स्त्रियाँ उसका विचार या कल्पना भी नहीं कर

सकतीं, जो प्रायः मुनियों के लिए भी कठिन था। मात्र उसी के पूर्व तप के प्रभाव से मैं हार जाती हूँ। हे सज्ञन! मुझे छोड़ दीजिए। मैं अपने स्थान की ओर जाती हूँ। हनुमान ने उसे छोड़ दिया।

शक्ति चली गई। लक्ष्मण के शरीर से शक्ति के जाने से सभी खुश हुए और सभी ने उत्सव मनाया। लक्ष्मण के शरीर पर विशल्या ने चंदन का लेप लगाया। बचा हुआ चंदन श्री राम के आदेश से इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदि के शरीर पर लेप के लिए भेज दिया। जिससे वे भी नागपाश के बंधन से मुक्त हुए।

उसके बाद उसी जगह युद्धभूमि में ही लक्ष्मण-विशल्या का विवाह सम्पन्न कराया।

विशल्या के कारण लक्ष्मण के शरीर से शक्ति के निकल जाने का समाचार रावण को मिला तो वह ईर्ष्या से मन्द-मन्द मुस्कुराया। मृगांक आदि बुजुर्ग मंत्रियों ने रावण को समझाया कि सीता को लौटाकर राम के साथ संधि करने में ही हित है। रावण कुटिलनीति पर उतर आया। उसने सबके सामने कहा- जैसा आपको अच्छा लगे, वैसा ही करो। परंतु जिस दूत को राम के पास भेजा, उसे एकांत मे कुछ और ही बताया।

दूत ने जाकर राम से कहा कि रावण का संधि का संदेश है कि लंका का आधा राज्य आप लोग लीजिए और मेघदूत, कुम्भकर्ण को छोड़ दीजिए तथा सीता को रावण के लिए देना स्वीकार कीजिए, नहीं तो सीता तो हमारे पास है ही, भाइयों को हम छुड़वा ले जायेंगे। आपके के पास कुछ भी नहीं रहेगा।

यह सुनकर रामपक्ष के भामण्डल आदि दूत को मारने के लिए खड़े हुए। श्री राम ने उन्हें मना किया और कहा- **बुरे समाचार को सुनकर चिट्ठी फाड़ने से क्या होगा? हमें तो बुराई नष्ट करनी चाहिए। शेरों को चूहे पर क्रोध करना शोभा नहीं देता।** उन्होंने शांतभाव से कहा -रावण से कहना- हमें राज्य से प्रयोजन नहीं है।

हमें तो वे सीता को सौंप दें, हम उसके साथ जंगल में खुशी से रहेंगे। अपने धनी से कहना हमे सीताधन ही चाहिए अन्य धन या धरा से हमें कोई लेना देना नहीं है। संधि का आधार यही हो सकता है, अन्य नहीं। यदि वे परस्त्री पाने के लिए मरने को तैयार हैं, तो हम अपनी स्त्री के लिए प्राणान्त प्रयत्न क्यों नहीं करें।

दूत ने लंका जाकर रावण से एकान्त में कहा- स्वामी, जैसे **मुनिराज को अपनी आत्मचर्या ही प्रिय होती है,** उसी प्रकार राम को सीता ही प्रिय है, अन्य कोई वस्तु नहीं। तीन लोक का वैभव देकर भी उनसे सीता को प्राप्त नहीं कर सकते और सबके सामने कहा-

हे स्वामी, सुग्रीव आदि ने मुझसे कहा- लगता है लंका में कुशल वैद्य नहीं है, जो तुम्हारे स्वामी के पागलपन को ठीक कर सकें। इस प्रकार और भी जली कटी बातें कहकर मुझे घोर अपमानित किया।

दूत के समाचार के बाद रावण ने मंत्रियों से मंत्रणा की। एकान्त में सोचने लगा- पुत्र व भाइयों को छुड़ाने के लिए क्या करूँ? युद्ध करूँ तो भाई मारे जायेंगे। सीता लौटा दू तो संसार मे कायर कहलाऊँगा। क्या करूँ? विचार करते-करते उसे सूझा कि क्यों न मैं बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करूँ? उससे तो देव भी वशीभूत हो जाते हैं,सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या? इसमें हर्ज ही क्या है? फाल्गुन मास का अष्टान्हिका पर्व भी आया है, इन दिनों में तो युद्ध होगा नहीं। इन्हीं दिनों में साधना कर विद्या सिद्ध कर लूंगा। यह सोच उसने महल के प्रागंन में बने- शांतिनाथ भगवान के जिनालय को सजाने की आज्ञा दी। दुंदुभि बजवाकर सभी प्रजा से कहा कि इस **धर्मपर्व में कोई पापसेवन न करें, धर्म सेवन कर अपने जीवन को सफल बनाएं।** यदि कोई शत्रु तिरस्कार करें तो भी परम धैर्य धारण कर उसे सहें। पर्व में मात्र धर्म ही सेवन करें।

रावण शांतिनाथ जिनालय में बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने लगा।

रावण शांतिनाथ जिनालय में विद्या सिद्ध कर रहा है- यह समाचार राम पक्ष के लोगों ने सुना तो राम से आज्ञा मांगने लगे कि आज्ञा दीजिए, इसी समय रावण को मारकर सीता को लाते हैं।

श्री राम ने कहा- उसका मरण होना होगा तो विद्या भी कुछ नहीं करेगी। शत्रु यदि जिनमंदिर में हो तो अवध्य होता है। वह नियम लेकर मंदिर में बैठा है, उसे मारना घोर निंदनीय पाप कार्य है। इसलिए हम यह कार्य नहीं करेंगे, न करवायेंगे।

राम महापुरूष हैं, वे अनीति का कार्य नहीं करेंगे, न करने देंगे। ऐसा निश्चय कर क्या करना चाहिए? इसी ऊहापोह में विभीषण आदि के आठ दिन बीत गए। पूर्णिमा का दिन आया। तब सुभूषण, अंगद आदि पुत्रों को रावण की साधना में बाधा पहुँचाने के लिए विभीषण आदि ने भेज दिया। वे वहाँ गए- कई प्रकार से बाधा पहुँचाने की कोशिशें कीं; पर रावण टस से मस नहीं हुआ। पर्व के दिन समाप्त हुए। उसे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई। विद्या ने रावण से कहा- चक्रवर्ती के अलावा आपकी इच्छानुसार सभी का पराभव कर सकती हूँ , आप हमें आदेश देकर कार्य करवाइये।

विद्या सिद्ध होने पर रावण ने सोचा कि समझ लो मैंने शत्रुओं को मार दिया। स्नानादि से तैयार होकर युद्धभूमि में गया। विद्या की परीक्षा की। उसकी सहायता से उसने भयंकर युद्ध किया। राम की सेना भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगी। रावण हंसकर वहाँ से सीता के पास जाने लगा, जाते समय रास्ते में उसने सोचा राम का रूप धारण कर सीता के सामने जाने में मेरा रावणत्व नहीं रहेगा। उस रूप में भी वह चाहेगी तो राम को ही, मुझे नहीं। राम का रूप धारण करने पर वैसे विकार भी तो नहीं रहेंगे। फिर भी परीक्षा करने में क्या बुराई है? यह सोच रावण ने राम का रूप बनाया। सीता से कहा- सीते, चलो, मैं आया हूँ।

सीता ने कहा- अरे बहुरूपिया, तु बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर चुका है। रावण के भेष में तुझे मिल न सकी तो श्रीराम की शरण में ही गया, उन्हीं का रूप धारण कर लिया। रूप धारण कर लिया, पर उनके जैसे कार्य कर। वे सभी के दुःखदर्द दूर करने में अपने दुःख दर्द भूल जाते हैं, देख, अपना दुःख भूलकर उन्होंने सुग्रीव की सहायता की थी, वैसे तू भी उनके जैसे रास्ते पर चल, मुझे उनके पास ले चल। अरे, तूने इतना भी नहीं सोचा कि **लक्ष्मण तो राम के लक्षण हैं,** उनके बिना वे अकेले कैसे आयेंगे? कभी लक्षण को लक्ष्य से अलग देखा है? वे चोर की तरह अकेले कैसे आयेंगे? वे इंके की चोट आएंगे। तू पापी है, **महापुरूषों के भेष धारण कर महापुरूषों को बदनाम न कर। जब-जब पाखंडी धर्म का वेष धारण करते हैं, तब तब धर्म बदनाम होता है।** कम से कम महापुरूषों को तो बख्श दे।

सीता के द्वारा पहिचाने जाने पर रावण लज्जित हुआ। प्रत्यक्ष में रावण बनकर कहने लगा- अब तो तुम्हें पता ही चल गया है तो यह समझ लो तुम्हारे पति, पुत्रतुल्य लक्ष्मण व भाई भामण्डल आदि की मृत्यु के समाचार कल ही सुनोगी।

वह पति, देवर, भाई की मृत्यु की कल्पना मात्र से ही बेहाश हो गई। होश में आने पर रावण ने उससे कहा- यदि अब भी मुझे स्वीकार करती हो तो मैं युद्ध बंद करवाकर उन्हें जीवित रहने दूंगा।

सीता बोली - हे पापी, जीवन मृत्यु तुम्हारे हाथ नहीं हैं, न मेरे हाथ हैं। उन्हें अपने अधिकार में मत समझ। तू भी कौन-सा अमर है। **मोक्षगामी के अलावा प्राणी-मात्र जीवन मरण कर रहा है। प्रत्येक जीवन आयुकर्म के आधीन है।** इसका विचार कर, धर्म का सेवन कर, धर्म का त्याग नहीं कर। जिसे मरण का भय सताता हो,वह क्या धर्म धारण करेगा?

रावण का अंतिम हथियार भी जब बेकार चला गया, तब सोचने लगा कि मैंने उस पदार्थ के लिए अपना मन खराब किया, जो कभी मुझे मिलेगा ही नहीं। मैंने हवा को मुट्ठी में बांधने का प्रयत्न किया। बड़ा भारी महापाप बांध लिया। मैं पुण्यात्मा पुरूष नहीं हूँ, **पुण्यात्मा उसे कहते हैं, जिसका मन अपने वश में होता है।** यदि मैं पुण्यात्मा होता तो मेरा मन मेरे वश में होता।

लेकिन लोकनिंदा के भय से मैं सीता को सौंप नहीं सकता। कल युद्ध में राम, लक्ष्मण को जीवित पकड़ लूँगा फिर बड़े सम्मान व वैभव के साथ सीता को उन्हें सौप दूँगा। इसमें सभी का सम्मान बना रहेगा। यह सोच रावण वहाँ से चला गया।

दूसरे दिन युद्ध के लिए रावण जब जा रहा था, तब हाथी धरती पर सूंड़ पटक रहे थे, पूर्व दिशा में खून के समान लाल रंग की उल्का गिरी, तालाब अचानक सूख गए, पहाड़ ढ़हने लगे आदि अपशगुन हुए। ये अपशगुन राजा की शीघ्र मृत्यु का संदेश दे रहे थे। मंदोदरी ने कहा -स्वामी, आप अब भी सीता को लौटा दीजिए। हम अठारह हजार रानियाँ आपकी सेवा में हैं ही। रावण ने कहा- जैसा आप कह रही है, वैसा ही होगा, बस आज की ही बात है, मैं राम, लक्ष्मण को जीवित पकड़कर उन्हें सीता सौंप दूंगा, पुत्र व भाई को छुड़ाकर लाऊंगा।

मंदोदरी बोली- हे नाथ, मैं आपका विश्वास करती हूँ, पर कर्मों का विश्वास कैसे करूँ? **युद्ध में जीवन का पलभर का भी भरोसा नहीं होता।** आप ही हमारे नाथ हैं, जैसा आपको उचित लगे, वैसा ही करें, पर आज हमारा मन घबरा रहा है।

रावण आयुधशाला में जा रहा था, तब पीछे की ओर किसी ने छींक दिया, माहनाग ने उसका रास्ता काटा, तेज हवा से उसका छत्र टूट गया, धोती नीचे गिर गई, दाहिनी ओर कौंआ कांव कांव करने लगा। ये अपशगुन उसे युद्ध में जाने से मना कर रहे थे, पर

उसके दंभ ने इन अपशगुनों की ओर ध्यान देने नहीं दिया।

एक बुजुर्ग मंत्री ने समझाया कि सुना है-लक्ष्मण नारायण और राम बलभद्र हैं।

रावण ने किसी की बाते नहीं मानीं, न पत्नियों की, न मंत्रियों की। **तीव्र कर्म का उदय बुद्धि की बातें नहीं मानता।** युद्धभूमि में आया। उसकी आज्ञा से रणभेरी बजायी गयी। घमासान युद्ध शुरू हुआ। रावण विद्या से निर्मित रथ पर था। दस हजार विद्याधर उसके साथ थे।

राम, लक्ष्मण गरूड़ रथ पर सवार थे। राम सोच रहे थे, युद्ध हिंसा का कार्य है, इस युद्ध रूपी भोज में हर कोई भूखा ही उठता है। न चाहते हुए भी करना पड़ रहा है। काश, मुनि बने होते तो इस पाश से तो बचते, पर अब ऐसा होता दिखता नहीं।

रावण के द्वारा विद्या की सहायता से किए जानेवाले युद्ध से राम की सेना इधर उधर भागने लगी, तब उन्हें विश्वास दिलाते हुए राम आए। उन्होंने रावण के ससुर **मय** को बाणों से घायल किया,तब रावण गुस्से से भरकर राम की ओर दौड़ा, उसे लक्ष्मण ने रोकते हुए कहा-

अरे चोर, कहाँ भाग रहे हो? परस्त्री रूपी दीपक पर मिटनेवाले पतंगे रूक, पहली बार मैंने तुझे देखा है, मैं बाणों से तेरा स्वागत करता हूँ, मेरे बाणों का रस चख। श्रीराम, इस धरती के राजा, धर्मबुद्धि को धारण करनेवाले धर्मात्मा हैं, उन्होंने तुझे मारने के लिए मुझ जैसे सेवक को भेजा है।

रावण भी गुस्से से कहने लगा- संसार के राज्य व उसकी वस्तुओं के लिए मैं योग्य हूँ, हाथी के योग्य घण्टा कुत्ते के गले में नहीं बांधा जाता। तू साधारण मनुष्य है,तेरे साथ युद्ध करने में मुझे शर्म आ रही है, पर मैं क्या करूँ? चींटा हाथी के पैरों के नीचे आकर मरना ही चाहता है तो हाथी क्या करें?

इस पर लक्ष्मण ने कहा- यदि तू अपने आप को इतना ही वीर समझता है तो तू ने पराई स्त्री की चोरी क्यों की? वह भी तब, जब तेरे भांजे शंबुक की लाश पास ही पड़ी थी, तेरा जीजा खरदूषण युद्ध कर रहा था, उसके मरने की संभावना थी। इस पर भी तुझे महाचोर नहीं कहें तो क्या कहें? **चोरी करनेवाला वीर नहीं, कायर होता है।** बातों से नहीं बाणों से युद्ध कर। यह कहकर लक्ष्मण ने रावण पर बाणों की झड़ी लगा दी। उसे शस्त्ररहित कर दिया। बाणों के बाद रावण-लक्ष्मण के युद्ध में दिव्य-शस्त्रों का प्रयोग होने लगा।

उनका युद्ध महाभयंकर था। लक्ष्मण व रावण को इस तरह युद्ध करते-करते दस दिन बीत गए।

चन्द्रधर विद्याधर की आठ कन्याएं विमान के अग्रभाग पर बैठ कर उनका युद्ध देख रही थीं। उन्होंने लक्ष्मण से कहा- हे नाथ, आप सभी प्रकार से **सिद्धार्थ** होवो। उनके मुँह से सिद्धार्थ शब्द सुनकर लक्ष्मण को सिद्धार्थ शस्त्र की याद आयी, उन्होंने सिद्धार्थ शस्त्र रावण पर चलाया। विचलित होकर रावण ने बहुरूपिणी विद्या की सहायता ली। लक्ष्मण रावण का एक सिर काटते तो वे दो सिर हो जाते। दो हाथ काटते तो चार हो जाते थे। धीरे-धीरे वह हजारों सिर व हजारों हाथवाला हो गया। द्विबाहु लक्ष्मण ने सहस्रबाहु रावण को थका दिया। उसके मुँह से श्वास निकलना बंद हो गया। उसे पसीने आने लगे। उसने थक हारकर चक्ररत्न को याद किया।

वह वज्रमुखी चक्र वैडूर्यमणि से निर्मित, हजार आरोंवाला था, एक हजार यक्ष उसकी सदा सेवा करते थे। याद करते ही चक्ररत्न रावण के हाथ पर आ गया। रावण ने घूमाकर लक्ष्मण पर चलाया। उसे लक्ष्मण की ओर आते देख रामपक्ष के वीर लक्ष्मण की दशा का विचार कर घबराकर दुःखी हुए। सोचने लगे अब तो लक्ष्मण की मृत्यु निश्चित है?

भाग्य की बात देखो, चक्र ने लक्ष्मण को तीन प्रदिक्षणाएं दीं। लक्ष्मण के हाथ पर आकर रूक गया। राम पक्ष में हर्ष छा गया। अनन्तवीर्य केवली ने कहा था- लक्ष्मण आठवें नारायण होंगे व राम आठवें बलभद्र होंगे। इस घटना से वह बात सच होती देखी।

सुदर्शन चक्र को लक्ष्मण के हाथ पर खड़ा देख, रावण को चिंता हुई। रावण को अनन्तवीर्य केवली का उपदेश याद आया। जिसमें उसकी मृत्यु का कारण एक भूमिगोचरी को बताया था। वह सोचने लगा, थोड़े समय पहले तीन खण्ड़ की पृथ्वी मेरी दासी थी, वहाँ मैं एक भूमिगोचरी से पराजित हो रहा हूँ। धिक्कार है ऐसी राज्यलक्ष्मी को क्षणभर में किसी की, क्षणभर में किसी की। मैं जीवन भर मोहकर्म से पराजित होता रहा हूँ।

लक्ष्मण ने रावण से कहा- हे महापुरूष, अब भी सीता को सौंपकर यह कहो कि मैं श्रीराम की कृपा से जीवित हूँ। ऐसा कहो तो तुम्हारा राज्य अब भी तुम्हारे पास ही है।

रावण का पाप का उदय कम नहीं हुआ था। उसने कुटिलता से कहा तुच्छ लोग गर्व नहीं करते, अरे नीच, मैं अभी तेरी दुर्गति करता हूँ, मैं अभी भी विद्याधर हूँ और तू भूमिगोचरी है।

इस पर लक्ष्मण बोले- प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। देखो, चक्र मेरे हाथ पर विद्यमान है, इस का अर्थ यही है कि मैं तुम्हें मारनेवाला नारायण हूँ।

रावण ने व्यंग्य से कहा- तू मन से नारायण बन रहा है, तो मन से इन्द्र क्यों नहीं बनता? तुम्हें तो पिता ने घर से निकाला है। बेघर होकर जंगल में भटक रहे हो, न रहने का ठिकाना, न खाने का ठिकाना, चले नारायण बनने, खूब जानता हूँ ऐसे नारायणों को, **स्वांग बनाकर पेट भरना अच्छा है, पर घमण्ड करना अच्छा नहीं है।** चक्र तो कुम्हार के पास भी होता है, तो क्या वह भी नारायण है? **तुच्छ आदमी को छोटी-छोटी वस्तुओं से खुशी होती**

है। रुक, मैं औरों की तरह तुझे भी यमलोक भेजता हूँ।

रावण की बातें सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आया, क्रोध में चक्र घुमाकर रावण की ओर फेंका। भयंकर गर्जना करने वाले उस चक्र को रावण ने रोकने का बहुत प्रयास किया, परंतु रावण का पुण्य क्षीण हो जाने से वह रुका नहीं, पास आता गया। रावण ने चन्द्रहास तलवार से उसके टुकडें करने चाहे पर **पुण्य समाप्त होने पर सब प्रयत्न बेकार हो जाते हैं।** चक्ररत्न ने रावण के वज्र समान वक्षःस्थल को चीर दिया, पुण्य और आयुकर्म के नाश के साथ रावण धड़ाम से पृथ्वी पर गिरा। धरती पर मृत रावण ऐसा दिख रहा था, मानो कोई देव या कामदेव ही सो रहा हो।

रावण के धरती पर गिरते ही सेना इधर-उधर भागने लगी, तब राम आदि ने उन्हें तसल्ली देकर रोका।

रावण को मरा देख, विभीषण ने आत्महत्या करने के लिए छूरी पर हाथ रखा ही था कि राम ने बड़ी मुश्किल से उन्हें वैसा करने से रोका। विभीषण बहुत रोये। इसी बीच रावण की पत्नियाँ युद्धभूमि में आईं। वहाँ बहुत ही करूणाभरा वातावरण था, उनके विलाप को सुनकर वहाँ एक भी ऐसी आँख न थी, जिससे लगातार आंसुओं की धार न बह रही हो।

राम ने उपस्थित सभी से कहा- कर्मों की चेष्टाएं विचित्र होती हैं। मैं राजपुत्र होकर भी कर्मों के उदय से जंगल में भटक रहा हूँ , लक्ष्मण भी। सीता भी पूर्व कर्म के कारण हरी गई है। देखो, यह रावण जो शास्त्रों का जानकार, प्रजावत्सल, कार्यसाधन में चतुर परंतु मोह के कारण विनाश को प्राप्त हुआ। **मोह के कारण मनुष्य की बुद्धि अमावस के अंधकार के समान हो जाती है।** इसलिए हमें मोह के नाश का ही प्रयास करना चाहिए, जिससे हमारी दुर्गति न हो। रावण की मोही वृत्ति के कारण ही विभीषण उनसे अलग हुए। सीता को हरणे की बुद्धि हुई। अंत में मृत्यु को

प्राप्त हुए। रावण धन्य हैं, वीर हैं। वीरों के मरण का शोक नहीं करना चाहिए, इसलिए आप सब शोक मत कीजिए।

मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम्।

अर्थ - विद्वानों का बैरभाव मरण तक ही होता है। मरण के बाद बैर समाप्त हो जाते हैं। यह सोच राम ने उत्तम रीति से रावण का अंतिम संस्कार करने का आदेश दिया। **पद्म** नाम के सरोवर पर रावण का अंतिम संस्कार किया गया।

राम के आदेश से ही कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि को सम्मान के साथ छोड़ दिया, हालांकि इसका कुछ लोगों के द्वारा विरोध किया था, परंतु राम ने किसी की नहीं सुनी और उनको छोड़ दिया। इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, मारीच, मेघवाहन, मय आदि को छुड़ाने के बाद राम के सामने लाया गया। उनसे राम ने कहा- युद्ध का प्रयोजन न राज्य था, न ही रावण को मारना था। हमारे युद्ध का प्रयोजन सिर्फ सीता को पाना था, दूसरा उपाय नहीं रहने पर युद्ध करना पड़ा। सीता हमें मिल गई है, इसलिए आप अपना राज्य ले लीजिए, सुख से रहिए, हम यहाँ से सीता को लेकर जाते हैं।

इस पर इन्द्रजीत आदि ने कहा- हे राम! यह आपकी उदारता है, हम आपकी उदारता की प्रशंसा करते हैं, आपके भावनाओं की कद्र करते हैं, परंतु बंदीगृह में ही हम लोगों ने प्रतिज्ञा की थी कि यदि हम लोग बंधन से जीवित मुक्त हुए तो दीक्षा लेंगे, मुनिव्रत धारण करेंगे।

राम ने उन्हें बहुत समझाया, पर वे नहीं माने। उसी दिन लंका के कुसुमायुध उद्यान में **अनन्तवीर्य** मुनिराज पधारे थे। उन्हें वहीं केवलज्ञान हुआ था। देवों ने आकर उनका केवलज्ञान उत्सव मनाया था। इन्द्रजीत आदि ने अपने पूर्व भवों के बारे में भगवान से पूछा। अपने पूर्व जन्म जानकर उनका वैराग्य दृढ़ हुआ। उन

सब ने तुरंत मुनिदीक्षाएँ लीं।

मंदोदरी, चंद्रणखा आदि ने शशिकान्ता नाम की आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षाएं ग्रहण कीं। इसी समय अड़तालीस हजार स्त्रियों ने संयम धारण किया। इन्द्रजीत आदि मुनिराजों की वंदना, स्तुति करने के बाद राम, लक्ष्मण, भामण्डल आदि सीता के पास गए।

चिरकाल बाद श्रीराम के दर्शन से रोमांचित सीता ने राम के चरण अपने आंसुओं से धोएं। उनके सुखद समागम से प्रसन्न देवों ने उन पर फुलों की, गंधोदक की वर्षाएं कीं। देव परस्पर कहने लगे- देखो सीता का गाम्भीर्य, दृढ़ता, शीलव्रत सभी गुण प्रशंसनीय हैं। इसकी शीलव्रत संबंधी दृढ़ता अद्भूत है, शुद्ध आचरण को धारण करने वाली इस देवी ने रावण को क्षणभर भी मन में नहीं रखा, बल्कि उसे सदा पापी समझा, दूर रहने के लिए उसे समझाया। अहो, धन्य हैं ये देवी।

लक्ष्मण सीता के चरणों पर नमस्कार कर सामने खड़े हो गए। तब सीता ने उनसे कहा- हे पुत्र, मुनिराज के वचनों के अनुसार अब तुम चक्रधारी नारायण हो और राम बलभद्र हैं।

सुग्रीव आदि ने सीता को माला आदि अनेक वस्तुएं भेंट कीं। इसके बाद राम, सीता शांतिनाथ भगवान के मंदिर गए। वहाँ भगवान की भक्ति की। विभीषण के महल में पद्मप्रभ भगवान का मंदिर था, वहाँ जाकर भक्ति की। विभीषण के आग्रह पर वे कुछ दिन तक वहीं रहे।

इधर इन्द्रजीत आदि मुनिराजों ने केवलज्ञान पाकर मेघरव[1] नामक स्थान से मोक्षपद प्राप्त किया। जम्बूमाली मुनि स्वर्ग में अहमिन्द्र बने। कुम्भकर्ण नर्मदा के तट से मोक्ष गए। मारीच मुनि कल्पवासी देव बने।

×××××

1. यह तीर्थ आज बडवानी कहलाता है।

राम, लक्ष्मण के वियोग से उनकी माताओं की दशा दयनीय थी। नवप्रसूता गाय के समान अपने पुत्रों से मिलने के लिए सदा छटपटाती रहती थीं। कौशल्या कभी कौओं से कहती- राम आ जायेगा तो तुझे खीर खिलाऊंगी। उसी रास्ते को देखती थी, जिस रास्ते से वे गए थे। उनको याद करती हुई कहती थी। हे पुत्रों, बरसों हो गये, अब तो आ जाओ। जल्दी आने का वादा कर गए थे, क्या हुआ? कहीं जंगल के जानवर तो नहीं खा गए- यह सोच रोती, बिलखती। उसे न खाने की सुध थी, न पहनने, न ही ओढ़ने की। शोक से सूखकर कांटा हो गई थी।

एक दिन देवर्षि नारद वहाँ आए। **अवव्दार** उनका नाम था, कौशल्या ने उठकर उनका सम्मान किया, उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। सम्मान से प्रसन्न नारद ने पूछा- सुकौशल महाराज की लोकप्रसिद्ध पुत्री, महाराज दशरथ की पत्नी आज इतनी उदास दुःखी क्यों है?

कौशल्या ने बताया- हे देवर्षि बहुत वर्षों के बाद आये हो, इसलिए आपको पता नहीं है।

नारद बोले- हाँ माते, मैं धातकीखण्ड के पूर्वी विदेह में **श्री तीर्थंकर** के जन्म के उत्सव में गया था, उस सुंदर द्वीप में मैं तेईस वर्ष रहा हूँ। माता के समान भारतभूमि के दर्शन के लिए आज ही आया हूँ।

कौशल्या ने वनवास से लेकर सीता हरण तक की घटनाएं सुनाईं। फिर उसने कहा- उसके बाद क्या हुआ? हमें नहीं पता, कईं बरस बीत गए, उनका कोई समाचार नहीं है, इसलिए सदा दुःखी चिंतित रहती हूँ।

नारद ने कहा- माते, दुःखी मत हो, तुम्हारा यह पुत्र शीघ्र ही वहाँ जाकर उनका समाचार लाता है। यह कहकर नारद वहाँ से लंका की ओर चले गए।

लंका में जाकर नारद ने एक मनुष्य से पूछा लंकाधिपति रावण कैसे हैं? इतना पूछते ही उसे रावण का पक्षधर समझ लोगों ने घेर लिया। पकड़कर राम के पास ले गए। राम ने दूर से ही नारद को पहिचान कर लोगों से कहा- इन्हें पकड़ कर नहीं, सम्मान के साथ ले आओ, ये अवव्दार नाम के देवर्षि नारद हैं। एक-दूसरे की कुशलक्षेम पूछने के बाद नारद ने राम से कहा - मैं अयोध्या से आ रहा हूँ ।वहाँ कौशल्या आपके वियोग में बहुत दुःखी हैं,बहुत ही कमजोर हो गई हैं, अत्यधिक अस्वस्थ हैं। यदि आप शीघ्र ही नहीं पहुँचे, तो शरीर छोड़ देंगी।

एतस्मिन्ननु संसारे बंधुर्माता प्रधानतः।

अर्थ- यथार्थ में इस संसार में माता ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है।

जो हाल कौशल्या के हैं, वही सुमित्रा, कैकयी के भी हैं। वे सब कुररी के समान रोती रहती हैं। माताओं को याद कर राम लक्ष्मण बहुत रोये। उन्होंने नारद से कहा- खोटे कर्म के उदय से हम माताओं को भूल गए थे। आपने याद दिला कर हमारा बड़ा उपकार किया है। क्योंकि-

पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः।
कुरूते परिशुश्रूषां किंकरत्वमुपागतः।।

अर्थ- संसार में वह मनुष्य बड़ा पुण्यात्मा है, जो माता की विनय में तत्पर रहता है तथा सेवक भाव से सेवा करता है।

राम, लक्ष्मण तुरंत ही अयोध्या की ओर जाने के लिए तैयार हो गए, परंतु विभीषण ने सोलह दिन और ठहरने के लिए निवेदन करते हुए अपना मुकुट उनके चरणों पर रखा। राम उन्हें मना नहीं कर सके। माताओं के पास समाचार देने के लिए दूत भेज दिए। दूतों ने सारे समाचार कहे। रामादि की कुशलता के समाचार से सभी प्रसन्न हुए,उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। भरत ने **नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लंबी, अड़तीस योजन**

परिधिवाली अयोध्या ऐसी सजायी कि उसके सजावट का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

सोलह दिन पलभर की तरह बीत गए। सीता, राम, लक्ष्मण लंका से पुष्पक विमान पर अयोध्या के लिए रवाना हुए। रास्ते के स्थानों का परिचय कराते हुए राम सीता, लक्ष्मण के साथ शीघ्र ही अयोध्या पहुँच गए। माताओं से मिले, सब को प्रसन्न किया।

×××××

राम, सीता **नन्द्यावर्त** नाम के महल में रहने लगे। सबका समय हँसी खुशी बीत रहा था।

भरत की डेढ़ सौ रानियाँ थीं, पर उनका मन न रानियों से, न ही राज्यलक्ष्मी से प्रसन्न हो रहा था। उनके मन में वैराग्य बस गया था। **जिसके मन में वैराग्य रहता है, उसके लिए तीन लोक का वैभव भी प्रसन्न नहीं कर सकता।** शिकारी से भयभीत हिरण की तरह सुंदर, रमणीय स्थानों में भी उनका मन नहीं रमता था। उन्हें संसार असार दिखता था। उन्हें संगीत और रुदन में कोई फर्क नहीं दिखता था। भरत की दीक्षा में विघ्न डालनेवाले दिन बीत गए। उसकी दीक्षा की प्रतिज्ञा पूरी हुई थी। वे दीक्षा की आज्ञा लेने के लिए राम, लक्ष्मण के पास गए तब राम, लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया, पर उन्होंने उन से यही कहा कि-

हे राजन ! नाना योनियों में भटकते-भटकते हमें गर्भादिक के दुःख सहते-सहते अनन्त जन्म बीत गए, अब मैं पुनः उन दुःखों को सहन करना नहीं चाहता। व्रतरूपी जहाज से दुःख रूप संसार सागर से पार होना चाहता हूँ। **उत्तम कार्य से जैसे बने, वैसे सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। चक्रवर्ती की लक्ष्मी भी भोगी की भोगवासना को संतुष्ट नहीं कर सकती। ईंधन अग्नि को बढ़ाता है, बुझाता नहीं, इसी प्रकार भोग वासना को बढाते हैं, घटाते नहीं।** इसलिए मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिए।

×××××

भरत दीक्षा का विचार कर ही रहे थे कि उसी दिन भरत के त्रिलोकमंडन हाथी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। वह पूर्व में ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में भरत का मित्र था। उसने आहार पानी छोड़ दिया। आहार पानी छोड़े उसे चार दिन बीत गए थे।

देशभूषण केवली का समवशरण अयोध्या के पास आया था। भरत आदि ने समवशरण में देशभूषण केवली से हाथी के आहारपानी छोड़ने के विषय में पूछा। केवली ने बताया- पूर्व में हाथी का जीव एक राजा का **मृदुमति** नाम का पुत्र था। वैराग्य होने पर दीक्षा ली। मृदुमति नाम का मुनि बना।

एक बार दुर्गगिरि के शिखर पर **गुणनिधि** नाम के मुनिराज ने आहारपानी छोड़कर चौमासा किया था। वे ऋद्धिधारी थे।

चौमासा पूर्ण होते ही वे आकाश मार्ग से चले गए। संयोग से मृदुमति उसी पर्वत के शिखर पर आये। जब वे वहाँ से आहार के लिए आये, तब लोगों ने कहा- देखो, कितने बड़े तपस्वी हैं। उन्होंने एक बार भी यही नहीं कहा कि मैं दुर्गगिरि पर चौमासा करने वाला मुनि नहीं हूँ, न गुरू होते हुए भी अपनी शल्य निकाली। उसी के फलस्वरूप स्वर्ग से आकर अब हाथी बना है।

देशभूषण केवली से हाथी व स्वयं के पूर्वजन्मों के बारे में सुनकर भरत का वैराग्य और दृढ़ हुआ, उन्होंने दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षाएं लीं। पुत्र के वियोग से दुःखी कैकयी ने भी अन्य तीन सौ स्त्रियों के साथ **पृथ्वीमती आर्यिका** के पास दीक्षाएं लीं।

हाथी सल्लेखना धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में महान ऋद्धिधारी देव बना। भरत ने कठोर तपकर मोक्ष प्राप्त किया।

×××××

राम ने शत्रुघ्न को मथुरा का राज्य दिया था। एक बार वहाँ **सप्तर्षि** आये थे। अर्हद्दास सेठ उनकी भक्ति पूजा के लिए अपने

परिकर के साथ जा रहे थे। शत्रुघ्न ने उनसे पूछकर मुनिराजों के लिए आहार बनवाया। मुनियों के पास जाकर नमस्कार कर कहा- आपके उपवास की प्रतिज्ञा पूरी हुई है, इसलिए आहार लीजिए। तब संघ के आचार्य बोले- हे नरश्रेष्ठ! **संकल्प करके बनाये हुए आहार में मुनियों की प्रवृत्ति नहीं होती।**

अकृताकारितां भिक्षां मनसा नानुमोदिताम्।
गृह्णतां विधिना युक्तां तपः पुष्यति योगिनाम्।।

अर्थ- स्वयं या दूसरे के द्वारा वचन या मन से अनुमोदना नहीं करते हुए भिक्षा में प्राप्त अन्न से योगियों का तप पुष्ट होता है।

उस दिन मुनियों को आहार नहीं दे पाने से शत्रुघ्न दुःखी होकर सोचने लगा कि अब मैं कब आहार दे पाऊंगा?

उस समय आचार्य ने उसे काल का प्रभाव इस प्रकार बताया- **तीर्थंकरों का काल बीत जाने पर धर्मकर्म से रहित अत्यंत भयंकर समय आयेगा। पाखण्डियों के कारण धर्म वैसे ही विलुप्त हो जाएगा, जैसे धूल या बादलों के कारण सूर्य का प्रकाश विलुप्त हो जाता है। उस समय घर, ग्राम, नगर, देश धर्म से रहित हो जायेंगे। लोग कुकर्मों, पापों में लीन रहेंगे, लोगों की भावनाएँ दुष्टताओं से भरी रहेंगी। पृथ्वी पर हिंसा का ताण्ड़व हो जायेगा। माता-पिता, पिता-पुत्र, भाई-बहन आदि में स्नेह नहीं रहेगा। राजा, नेता धन के कीड़े बनेंगे। कषायों की बहुलता से स्वर्ग आदि से देवों का आना आदि अतिशय नहीं होंगे।** इस तरह अनेक प्रकार से बुरा समय आएगा। इसलिए ऐसा कार्य करो, जिससे आत्मकल्याण हो सके। शोक मत करो। यह कहकर सप्तर्षि ऋद्धि के बल से आकाशमार्ग से चले गए।

वह संघ मथुरा से क्षणभर में ही अयोध्या में सीता के महल के सामने पहुँचा, सीता मुनिसंघ देखकर बहुत आनंदित हुई। सीता ने नमस्कार करके अति आदर के साथ उनका पड़गाहन

कर उत्तम अन्न का आहार दिया। आहार लेकर मुनि आकाशमार्ग से चले गए।

×××××

सीता के दान, पुण्य में कई दिन बीत गए। दिन ऐसे बीत गए कि पता ही नहीं चला। एक दिन सीता ने रात्रि के अंतिम प्रहर में दो स्वप्न देखे। स्वप्नों का फल जानने के लिए राम के पास गई। सीता ने राम से कहा- हे नाथ, आज सुबह मैंने दो स्वप्न देखे हैं। आज पहले स्वप्न में देखा कि दो अष्टापदों ने मेरे मुख में प्रवेश किया है। दूसरे स्वप्न में देखा कि तेज हवा के कारण मैं पुष्पक विमान से धरती पर गिरी हूँ।

स्वप्नों के फलों के जानकार राम ने बताया कि- हे देवी तुम्हारे मुख में अष्टापदों ने प्रवेश किया है, इसका फल यह है कि आप दो वीर पुत्रों को प्राप्त करोगी। यह कहकर राम चुप हुए।

सीता ने पूछा- नाथ, आप चुप क्यों हो गए, दूसरे स्वप्न का फल भी बताइए।

राम ने गंभीर होकर कहा- देवी घबराओ मत। दूसरे स्वप्न का फल थोड़ा अशुभ है, परंतु हम दान, पुण्य, शांतिकर्म के द्वारा पाप के उदय को दूर कर देंगे। अन्य चर्चा के बाद सीता चली गई। अपने कार्यों में व्यस्त हो गई। वह पहले से भी अधिक दान-पुण्य करने लगी।

धीरे-धीरे समय बीत गया। वसन्त ऋतु आ गई। वसन्तोत्सव मनाने के लिए राम, सीता, लक्ष्मण आदि सम्पूर्ण राजपरिवार नगरवासियों के साथ अयोध्या के पास बने हुए महेन्द्र नाम के सुन्दर बगीचे में गया।

वहाँ गर्भ के भार से अलसाई-सी थकी हुई सीता से राम ने पूछा- हे देवी, आपकी क्या इच्छा हो रही है ? वह बताइये मैं पूर्ण करता हूँ।

सीता ने कहा- नाथ, मुझे धरती के सभी चैत्यालयों,

जिनमंदिरों के दर्शन की इच्छा हो रही है। स्वर्ण, रत्नों के पुष्पों से जिनेन्द्र भगवन्तों की पूजा व दानादि द्वारा धर्मप्रभावना की इच्छा हो रही है।

राम ने मंत्री को बुलाकर आदेश दिया कि जिनमंदिरों को सजाया जाय, निर्वाण-क्षेत्र के मंदिरों को विशेष रूप से सजवाइये। जिनमंदिरों में पूजा की सीता की विशेष इच्छा है, यही उसके गर्भ का दोहला है। मैं पूजा करता हुआ,धर्म की प्रभावना करता हुआ सीता के साथ जाऊंगा। मेरे व सीता के जाने का प्रबन्ध कीजिए।

'जो आज्ञा'- कहकर मंत्री चला गया। अयोध्या के मंदिरों में शीघ्र ही सजावट की गई। दूसरे दिन राम, सीता ने अयोध्या के मंदिरों में दर्शन-पूजन किए।

महेन्द्र उद्यान में राम के पास अनेक लोग पहुँचे।

यह समाचार सीता ने सुना था, तब सीता की दाहिनी आँख फड़कने लगी थी। सीता सोच में पड़ गई। वह सोचने लगी- यह दाहिने आँख की फड़कन न जाने कौन-सा दुःख ला रही है? कर्मों ने पहले मुझे लंका में ले जाकर दुःख पहुँचाया। पुण्य के फलस्वरूप अब दो दिन भी सुख के बिता नहीं पाई कि फिर ये फड़क रही है। सीता को दुःखी देख माला नाम की रानी ने कहा- दुःखी मत होइए। अशुभ कर्म का प्रभाव किमिच्छक[1] दान करने से कम होता है। इसलिए किमिच्छक दान दीजिए।

सीता ने **भद्रकलश** नाम के कोषाध्यक्ष को बुलाकर प्रसूति तक किमिच्छक दान देने के लिए कहा। स्वयं पूजन-भक्ति में लीन हो गई। उसने अपनी शक्ति के अनुसार अनेक नियम लिए।

उद्यान में राम के पास अनेकों लोग इ़रते-इ़रते आकर चुपचाप खड़े हो गए थे। उन सब को सहमे-सहमे चुपचाप देखकर

1. याचक जो भी मुँह से मांगे, उसे उस वस्तु दान करना किमिच्छक दान कहलाता है।

राम ने पूछा आप लोग ड़रे हुए सहमे से क्यों हो? कुछ बोलते क्यों नहीं?

इतने पर किसी ने चुप्पी नहीं तोड़ी,कोई कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। फिर राम ने दुबारा कहा- बोलिए, बताइए, इस तरह चुप मत रहिए। ड़रो मत, बताइए, क्या कहना है? तब उनमें से एक विजय नाम का मुखिया हाथ जोड़कर टूटी फूटी भाषा में बोला- हे नाथ, प्रजा धीरे-धीरे अपनी सीमाएं लांघ रही है। लोग व्यावहारिक मर्यादाएं तोड़ रहे हैं।

स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः।
प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम्।।

अर्थ- यह मनुष्य स्वभाव से ही महाकुटिल मनवाला है। फिर यदि कोई दृष्टान्त प्रकट मिल जाता है तो फिर उसे कुछ भी कठिन नहीं रहता है।

जिनके चित्त में पाप समाया हुआ रहता है, ऐसे बलवान लोग कमजोर लोगों की स्त्रियों का अपहरण करने लगे हैं। जब कोई स्त्री किसी तरह बचकर लौट कर घर आती है तो घर में उसका पति प्रवेश नहीं करने देता, तब विवाद में उदाहरण दिया जाता है, कहा जाता है कि राम ने भी कईं दिनों तक शत्रु के घर रहनेवाली सीता को घर में रखा है। जब राजा को कोई परेशानी नहीं हुई तो आप लोगों को क्यों हो रही है?

न केवल विवादवाली जगह बल्कि आम जगह इसी अवर्णवाद की चर्चा कईं दिनों से हो रही है। जैसे राजा करता है, वैसे ही प्रजा करती है। इसलिए हम सब आप से निवेदन करने आए हैं कि इस विषय में कुछ कीजिए।

राम गहरी सोच में डूब गए। वे सोचने लगे जिसके विरह के दुःख को नहीं सह पाने के कारण युद्ध कर जिसे पाया, वही मेरे कुल व राज्य के लिए कलंकरूप बन रही है। भीतर सभी जानते हैं

वह निर्दोष है, पर अपने पाप को छिपाने के लिए उसके नाम का आधार ले रहे हैं।

जिसके बिना क्षणभर में ही दुःखी होता हूँ। जिसके गुणों का निवास मन के रग-रग में है, उसके विषय में क्या निर्णय करूँ? सीता गुणों का भण्डार है, शील की खान है, सतीत्व के लिए आदर्श है। वही सीता मेरे धैर्य को विचलित कर रही है। इस समय वह गर्भवती है, वन में उसने बहुत कष्ट सहे, अब उसके साता के चार दिन आए थे कि पापकर्म ने कैसा प्रसंग लाकर खड़ा कर दिया है? मैं क्या करूँ?

यह तो युद्ध से भी भयंकर स्थिति आ पड़ी है। युद्ध में शत्रु सामने होता है, पराया होता है। यहाँ अपनी प्रजा ही हमारी शत्रु बन रही है। क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आ रहा है। बुद्धि काम नहीं कर रही है।

सचमुच राज्य करना कितना कष्टकारी है? सोचते कुछ हैं, कर्मोदय से होता कुछ और है, **जहाँ शरीर का परिणमन अपनी इच्छानुसार नहीं होता, वहाँ प्रजा के इतने लोगों का परिणमन अपनी इच्छानुसार कैसे होगा?** सीता को घर में ही रखूँ तो उसका अवर्णवाद कैसे दूर होगा? वह निर्दोष है, उसे छोड़ूँ कैसे? राज्य छोड़ दूँ तो तब भी उसका अवर्णवाद दूर नहीं होगा।

वह धर्मात्मा है, कर्मोदय को स्वीकार कर सब दुःख सहन कर लेगी। प्रजा तो धर्मात्मा नहीं है, वह तो पर के दोष ही देखेगी। उसका एक समय का विरह भी मुझे सहन नहीं होता है, हमेशा के लिए कैसे छोड़ूँ? यद्यपि और भी बहुत-सी रानियाँ हैं, परंतु सीता के बिना सब वस्तुएं असार हैं, बेकार हैं। सीता को नहीं त्यागूँ तो उस पर जीवन भर कलंक रहेगा। उसको छोड़ने में उसी का हित है। पुण्यात्मा है, पुण्य के कारण लवण समुद्र के बीच लंका से वापिस मिली है, जिसका पता लगाना कठिन था, ऐसी जगह से

वह मिली है। पुण्य के कारण उसे सुरक्षा मिलती रहेगी, सुरक्षित रहकर पुनः मुझे मिल जायेगी, यह सोच राम ने उसे छोड़ने का कठोर निर्णय कर कृतान्तवक्र सेनापति को कान में धीरे से कहा- सीता को तीर्थयात्रा के लिए कहकर भेज रहा हूँ, उसे हमारे राज्य से दूर एकान्त निर्जन **सिंहनाद** नाम के वन में छोड़कर आ जाना।

वृद्ध कृतान्तवक्र सेनापति को सदमा लगा, पर वह पराधीन था, क्या करता? 'जो आज्ञा' कहकर चला गया। लक्ष्मण आदि को इस बात का पता चला तो क्रोध में राम के पास जाकर कहने लगे- आप आज्ञा दें तो इसी समय कहनेवालों को मार दूँ?

राम ने कहा- लक्ष्मण किस-किस को मारोगे। प्रजा के नाश का मतलब हमारा नाश। प्रजा ही नहीं रहेगी तो हम किसके राजा रहेंगे। यह कोई उपाय भी नहीं है । ऐसा करने पर भी सीता पर लगा कलंक तो नहीं मिटेगा। वह मैं भी कर सकता हूँ, जो आप कह रहे हो, हे लक्ष्मण, मैंने बहुत सोचा, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं सूझा, पराये हाथों भरतक्षेत्र से दूर समुद्र में से वापिस मिली है। अपने हाथ से रखी हुई वस्तु की तरह क्यों नहीं मिलेगी? लक्ष्मण धैर्य रखो।

लक्ष्मण ने कहा- औरों की बातें जाने दीजिए, आप स्वयं जानते हैं कि वह सतियों में शिरोमणि है, इस समय गर्भिणी है; फिर भी उनका त्याग क्यों कर रहे हो?

राम बोले- लक्ष्मण इस बात को मैं जानता हूँ, पर उसके लोकापवाद को शास्त्र या शस्त्र से दूर नहीं कर सकते, न घर में रखकर उसे दूर किया जा सकता है, क्या करूँ? नहीं चाहते हुए भी कलेजे पर पत्थर रखकर यह निर्णय करना पड़ रहा है, नहीं तो सूखे ईंधन में आग की तरह यह अपवाद फैलता ही जायेगा। वह निर्दोष होते हुए भी कलंकित रहकर शरीर छोड़ेगी। उससे दूर रहकर हम जी लेंगे पर उस पर कलंक रहेगा तो हम भी दुःखी ही

रहेंगे। इतने में कृतान्तवक्र सेनापति रथ लेकर आये। आँसु भरे आँखों से राम, लक्ष्मण आदि ने सीता को रथ में बिठाया। राम ने सेनापति से कहा- रास्ते में जो जिन-मंदिर, निर्वाण-क्षेत्र आदि आये, उन सबके दर्शन कराते हुए ले जाना। सीता ने कहा- नाथ, आप नहीं आ रहे ! राम ने कहा- देवी, मैं बाद में आऊंगा। अपना ध्यान रखना। धर्म में मन लगाना, कर्म का उदय विचित्र होता है। यह कहकर राम रोने लगे। सीता ने कहा- नाथ, रोइए मत, कुछ दिनों की ही तो बात है।

सीता ने सखियों से कहा- आप लोग निश्चिंत रहना, मैं जल्द ही आऊंगी। सीता के शब्द सुनकर राम, लक्ष्मण को जोर से रोना आया। सेनापति से 'जल्दी ले जाइए' कहकर उन्होंने मुँह फेर कर सीता को विदा किया।

सीता के रास्ते में सूखे वृक्ष पर कौआ बोलने लगा, बिखरे बालोंवाली स्त्री रो रही थी, पर जिनदर्शन के भावों से भरी सीता का उन अपशगुनों की ओर ध्यान नहीं गया।

धीरे-धीरे दर्शन पूजन करते हुए कई दिन बीत गए। सिंहनाद अटवी आ गई। तब सेनापति का धैर्य जवाब दे गया था। वे रोने लगे।

तब सीता ने पूछा-क्यों रो रहे हो? तब सेनापति बोले- हे देवी, दुर्जनों के विष, अग्नि, शस्त्र से भी अधिक घातक आपकी निंदा के शब्दों को सुनकर आपकी निंदा से बहुत भयभीत श्रीराम ने दोहले के बहाने आपको इस घने जंगल में निराश्रित छोड़कर आने के लिए आदेश दिया है, उसी का पालन करते हुए रोना आ रहा है। यह सुनकर सीता बेहोश हो गई। होश में आने पर- उसने कहा- हे पिता के समान सेनापति जी, इसमें आपका क्या दोष है? आप तो पराधीन हो, पूर्वकर्म के उदय ने आज इस स्थिति में मुझे पटका है, इसमें श्रीराम या आपका कोई दोष नहीं है। आप लोग तो निमित्तमात्र हैं। **निमित्तों को दोष देना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है।**

सेनापति ने सीता से कहा- हे देवी, आपकी दशा देखकर जाने का मन नहीं है, परंतु पराधीन हूँ, जाना ही पड़ेगा। आप यदि कोई संदेश राम को देना चाहती हो तो बताइए।

सीता ने कहा- सेनापतिजी, श्रीराम स्वयं ज्ञानी हैं, समझदार हैं, विवेकवान हैं, उन्हें संदेश क्या दूँ? फिर भी मन नहीं मान रहा है, इसलिए इतना-सा मेरी ओर से कहना कि **जैसे उन्होंने लोकापवाद के कारण मुझे दूर कर दिया, वैसे लोकापवाद के कारण धर्म को दूर न करें**, क्योंकि मुझे दूर करने से उन्हें अधिक नुकसान नहीं है, परंतु धर्म को दूर करने से उन्हें जन्म-जन्मांतरों में भारी नुकसान होगा। **धर्म राज्य से भी बढ़कर होता है, पाप या पुण्य के उदय से नष्ट नहीं होता है। धर्म मोक्षसुख दिलाता है, उसका त्याग नरक-निगोद ले जाता है।** इतना कहते ही सीता उबड़-खाबड़ पृथ्वी पर फिर बेहोश होकर गिर पड़ी। अपनी दीनता का विचार कर दुःखी मन से सेनापति सीता को कर्मोदय की शरण में छोड़कर चले गये।

होश में आने पर सीता बहुत रोने लगी। हे कर्म, तुम कितने बलवान हो! पिता राजा हैं, पति बलभद्र हैं, देवर नारायण हैं, परिवार के अन्य लोग समर्थ हैं, परंतु तुम इन से भी ज्यादा बलवान हो, क्योंकि उनके रहते हुए भी मुझे असहाय दशा में भयंकर वन में पटक दिया है। अब क्या होगा? कर्मोदय अब और क्या दुःख देगा? इसका पता नहीं, मेरे पुण्य का क्षय हो गया है। दुःखों के सागर में डूब गई हूँ, पर मैं अपनी समता नहीं छोडूंगी- यह सोचकर वह जोर-जोर से रोने लगी।

इस तरह जब सीता विलाप कर रही थी, उसी समय **वज्रजंघ** राजा वहाँ से जा रहा था। वह पुण्डरीकपुर का राजा था, भगवान के दर्शन कर लौटते समय उसका हाथी जंगल में घुसा था, उस हाथी को पकड़ने के लिए वन में आया था, हाथी पकड़कर जा रहा था। उसे स्त्री के रोने की आवाज़ सुनाई दी। आवाज़ सुनकर उसी

दिशा में गया। सीता उसे देखकर ड़र गई और इस घने जंगल में कोई उसे लूटने आया है- समझकर अपने गहने उतारकर देने लगी। तब वज्रजंघ ने सांत्वना देते हुए कहा - बहन ड़रो मत, मुझे अपना ही भाई समझो। आप भले घर की दिख रही हो, पर इस भयानक जंगल में कैसे आ गई हो? मैं कोई चोर, डाकु, लुटेरा नहीं हूँ। मुझे लुटेरा मत समझो, अपना भाई समझो। हमें आभूषणों से क्या प्रयोजन? ये आपके पास ही रखो। शांति धारण करो।

मैं पुण्डरीकपुर का राजा वज्रजंघ हूँ। अब आपका भाई हूँ। हाथी को ढूढ़ने के लिए जंगल में आया था, आप दिख गई हो। मैं धर्मधारी, पापों से ड़रनेवाला मनुष्य हूँ। शस्त्र और शास्त्र का अभ्यासी हूँ। पराई स्त्री को बहन या माँ के समान समझनेवाला हूँ। अतः आप बेझिझक मुझे अपना परिचय दीजिए, जिससे मैं आपको आपके घर पहुँचा सकूँ।

सीता को विश्वास होने पर उसने कहा- हे भाई, मैं अयोध्या के राजा बलभद्र श्री राम की पत्नी हूँ। लक्ष्मण मेरे देवर हैं। भामण्डल मेरे भाई हैं। जनक मेरे पिता हैं। दशरथ मेरे ससुर हैं। इसके बाद उसने अपने जीवन की सभी घटनाएं बतायीं और बताया कि लोकापवाद के कारण मेरे स्वामी ने विचार किया कि- **स्वभाव से कुटिल लोक किसी भी प्रकार से आधीन नहीं हो सकता। इसलिए प्रियजन का त्याग मृत्यु से भी बढ़कर हो, फिर भी कलंक की बजाय अच्छा है।** इसी कारण मेरा सदा ही कल्याण चाहनेवाले मेरे प्रिय राम ने मुझे इस भयानक जंगल में छुड़वाया है। इसके बाद सीता फूट-फूट कर रोने लगी। उसके रोदन को देखकर वज्रजंघ की आँखों में आँसु आ गए, उसने दुःखी होकर कहा- हे जिनधर्म का श्रद्धान करनेवाली देवी मिथ्यादृष्टि स्त्री के समान क्यों रो रही हो? धैर्य धारण करो। **पापोदय में धैर्य ही उपाय होता है।** पूर्व पापोदय से निन्दारूपी सांप से ड़सी गई, तुम बिना अपराध के यहाँ छोड़ी गई हो।

परंतु आज भी तुम्हारा पुण्य पूर्ण नष्ट नहीं हुआ है, देखो तुम्हारा वज्रजंघ नाम का भाई तुम्हें लेने आया है। आप धर्मविधि से मेरी बड़ी बहन हो। हे बहन, चलो मेरे साथ, श्रीराम तुम्हें अवश्य खोजेंगे, तब तक भाई के घर रहो, धर्म की आराधना करो।

तब सीता ने कहा- धर्म को हृदय में रखनेवाले भाई से बढ़कर और ज्यादा कौन हितैषी हो सकता है? वज्रजंघ सीता को पालकी में बिठाकर तीन दिन के बाद पुण्डरीक नगर में पहुँचे।

सीता के आगमन पर राजा के आदेश से शहर सजाया गया। राजा की पत्नियों ने अपनी नई ननद का आरती उतार कर स्वागत किया। देखिए, **पाप सीता को वन में ले गया, पुण्य उसे नगर ले आया, उसे एक भाई और बहुत सी भाभियों का संयोग करा गया।**

सीता वहाँ धर्मकार्यों में, पूजनपाठ में समय व्यतीत करती रही। कुछ समय राम की कथाएं सुनाकर बिताती थी। राजा वज्रजंघ के पास जो भेंट आती थीं, वे सब वह सीता के लिए देता था। सीता उनको दानादि में खर्च करती थी।

×××××

सेनापति मुख नीचे किए हुए राम के पास पहुँचे। सीता का संदेश सुनाया और उन्होंने कहा- हे देव आपकी आज्ञा पूरी कर दी है। सीता को घने जंगल में छोड़कर आया हूँ, जहाँ उसके पुण्य-पाप ही उसके पास हैं।

राम शोक से विह्वल हो बेहोश गए। उन्हें अपनी गलती का एहसास था, वे सोचने लगे- मुझ मूर्ख ने दुष्टों के कहने से यह क्या कर डाला? कहाँ भयानक जंगल और कहाँ कोमल अंगोंवाली सीता? यह सोचकर विलाप करने लगे। हे निरपराध सीते, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। निर्दयी होकर मैंने मौत के मुँह में भेजा है।

तुम प्रशस्त शील की धारक हो और मैं अत्यंत क्रूर प्रकृति का हूँ। तुम कितनी विशाल हृदयवाली हो, जिसने मौत जैसा दुःख दिया, उसी का अब भी भला चाहती हो। पहले शत्रु ने हरण किया था, इसलिए सभी ने मेरी मदद की थी, पर अब की बार मैंने खुद ही तुम्हें छोड़ा है। तुम्हें खोजने में कौन मेरी मदद करेगा?

लक्ष्मण, राम के पास आए। राम की ऐसी दशा देखकर खुद भी रोने लगे। धीरे-धीरे यह खबर अयोध्यावासियों को पता चली। सारी अयोध्या रोने लगी। बड़े लोगों के समझाने के बाद राम ने कुछ धैर्य धारण किया। भद्रकलश खजांची को बुलाकर कहा- सीता ने तुम्हें जिस विधि से दान देने के लिए कहा गया था, उस विधि से नौ मास तक दान देते रहना।

राम की आठ हजार रानियाँ थीं, पर सीता के बिना राम का उनमें मन नहीं लगता था। उन्हें हर जगह सीता ही सीता दिखाई देती थी। राम का हर पल सीता की याद में बीतता था। राम को सीता न केवल सती, न केवल पत्नी, न केवल पटरानी, अपितु वह धर्मात्मा दिखती थी। यही वजह है कि उन्हें लगता था कि मैंने एक धर्मात्मा पर अत्याचार किया है। ऐसे सोचते-सोचते उनका समय बीतता था।

×××××

इधर सीता को दर्पण होते हुए तलवार की धार में मुँह देखने की आदत पड़ चुकी थी। वीणा की जगह धनुष की टंकार सुनना चाहती थी। शेरों को देखना पसंद करती थी। इसी तरह दिन बीत गए।

श्रावण मास की पूर्णिमा, रक्षाबंधन के दिन शुभ नक्षत्र में सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वज्रजंघ ने बहुत बड़ा उत्सव किया।

एक पुत्र का नाम **अनंगलवण** तथा दूसरे का नाम **मदनांकुश** रखा गया। बालक इतने सुंदर थे कि सबकी आंखों के तारे दुलारे

बने थे। समय बीतते देर नहीं लगी। पुण्डरीकनगर को आनंदित करते-करते कब बड़े हो गए! पता ही नहीं चला।

×××××

एक दिन **सिद्धार्थ** नाम का एक क्षुल्लक वज्रजंघ के नगर में आया था। वह महाविद्याओ में इतना निपुण था कि तीनों समय की संध्याओं के समय मेरूपर्वत पर विराजमान जिनप्रतिमाओं के दर्शन कर आता था। अणुव्रती था। केशलोंच करता था। शांत, धीर, वीर एक वस्त्रधारी था। हाथ में पींछी लिए संयोगवश सीता के घर के सामने पहुँचा।

उसे देखते ही सीता नम्रता के साथ आई। उसने आदर के साथ अन्न-जल दिया। सीता के मान-सम्मान, आदर से संतुष्ट सिद्धार्थ क्षुल्लक वहीं बैठ गया। वहाँ क्षुल्लक ने लवण, अंकुश को देखा, वह अष्टांग निमित्तों का ज्ञाता था, इसलिए देखते ही समझ गया कि ये वीर बालक विशेष पुण्यात्मा हैं। उसने श्राविका के व्रत धारण की हुई सीता से पुत्रों के जन्म के बारे में पूछा, तब सीता ने रोते हुए आप बीति घटनाएं सुनाईं। सीता के दुःख से दुःखी क्षुल्लक ने कहा। देवकुमारों जैसे दो पुत्रों के होते हुए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। बहन दुःखी मत हो। बहन, मैं इन्हें शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दूंगा। क्षुल्लक ने थोड़े ही दिनों में लवणांकुश व मदनांकुश को विज्ञान, विद्या, कला, गुणों में कुशल बना दिया और वहाँ से चला गया।

सीता के इन दो पुत्रों ने अपने पराक्रमों से चारों ओर प्रसिद्धि पाई।

वज्रजंघ ने लवणांकुश का शशिचूला आदि बत्तीस राजकुमारियों के साथ विवाह तय किया तथा मदनांकुश के विवाह के लिए पृथु राजा के पास दूत भेजकर उसकी बेटी कनकमाला हाथ मांगा, परंतु उसने मना किया। स्वयं वज्रजंघ ने याचना की,

फिर भी उसने मना कर दिया। कहा- इनके कुल-शील का पता नहीं है। तब वज्रजंघ ने युद्ध करने हेतु भेरी बजाई। भेरी सुनकर लव व कुश ने कहा- मामा हमारे होते, आप युद्ध हेतु मत जाइए। वज्रजंघ ने छोटे जानकर उन्हें युद्ध पर जाने के लिए मना किया, परंतु वे नहीं माने। उन्होंने पृथु को अपने युद्ध-कौशल से कुल-शील का पता बता दिया। उसे पराजित कर दिया। तब हारे हुए पृथु ने अपनी कन्या कनकमाला को उसे देना निश्चित कर दिया।

पृथु को जीतने के बाद वे दोनों पृथ्वी को जीतने के लिए निकल पड़े। अनेक राजाओं को जीतकर सीता के पास आए। सीता उन्हें देख आनंद के सागर में डूब गई।

इधर सीता के त्याग की बात का पता चला, तब नारद ने कृतान्तवक्र सेनापति से सीता को जिस जगह छोड़ा, उस जगह का पता पूछा। सीता के पास जाने के लिए पूछते-पूछते वे पुण्डरीकपुर पहुँचे। वहाँ उन्हें लव, कुश दिखाई दिए। लव, कुश ने उनका बहुत सम्मान किया, तब नारद ने उन्हें **'राम, लक्ष्मण जैसी विभूति प्राप्त हो'** यह आशीर्वाद दिया। लव-कुश ने पूछा- ये राम लक्ष्मण कौन हैं? नारद ने उन्हें सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया।

कुश ने पूछा- हे महर्षि, राम धर्मात्मा हैं तो उन्होंने हमारी माँ को क्यों छोड़ा? नारद बोले- हे पुत्रों तुम्हारी माँ आठ हजार रानियों में प्रधान है, विदुषी, पवित्रता में श्री, धृति, कीर्ति आदि देवियों से बढ़कर है, जिनवाणी के समान निर्दोष है, यह राम जानते थे, परंतु लोकापवाद के कारण उन्होंने उसे छोड़ा था। पूर्व जन्मों के कर्म और संसार की विचित्रता ही इसमें कारण है। आर्जवादि गुणों की धारी सीता जैसी निर्मल स्त्री की निंदा होती है, तो इसमें संसार का स्वरूप ही कारण समझो। इस पर लव ने कहा- राम ने अपने कुल के अनुरूप कार्य नहीं किया है।

नारद ने कहा- उन्होंने कुल और सीता कलंकित न हो-

इसलिए सीता को त्याग दिया।

लव ने कहा- हमें पराक्रम दिखाकर उन्हें अपना परिचय और उनकी गलती का आभास कराना चाहिए। इसलिए आप हमें अयोध्या का पता बताइए।

नारद ने बताया- यहाँ से अयोध्या साठ योजन दूर है।

लव कुश ने कहा- हम उन्हें पराजित करने के लिए जाते हैं। इसके बाद लव ने वज्रजंघ के पास जाकर कहा- मामा अपने पक्ष के राजाओं के साथ हमें अयोध्या पर आक्रमण के लिए आज्ञा दीजिए।

अयोध्या पर आक्रमण की बात सुनकर सीता रोने लगी। तब सीता के पास खड़े सिद्धार्थ क्षुल्लक ने नारद से कहा- हे नारद, आपने ऐसा अप्रशंसनीय कार्य क्यों किया? हम ने आज तक लव कुश से ये बातें छिपाकर रखी थीं।

तब नारद बोले- हे क्षुल्लक, मुझे ऐसा पता नहीं था कि मेरे बताने पर ये युद्ध के लिए तैयार हो जायेंगे। ऐसा पता होता तो मैं नहीं बताता।

सीता ने लव कुश से कहा- तुम दोनों श्रीराम के शरीर से उत्पन्न हों। श्रीराम ने लक्ष्मण के साथ मिलकर समुद्र तक पृथ्वी को दासी बना रखा है। उनके साथ युद्ध का मतलब महायुद्ध है। इस महायुद्ध में मैं कौन-सा अमंगल समाचार सुनूँ? क्या मैं पति का या देवर का या मेरे सुख के आधार तुम दोनों का?

लव, कुश ने कहा- माँ क्यों दुःखी हो रही हो? हम आपको ऐसा समाचार सुनने का मौका नहीं देंगे। वे हमारे शत्रु हैं, उन्होंने निर्दोष होते हुए भी आपको वन में अकेली ही छोड़ा था।

क्या सीधे जाकर हम उन्हें यह कहें कि 'हम आपके पुत्र हैं?' हम अपना पराक्रम दिखाकर उन्हें जीवित पकड़कर उनका राज्य उनको लौटा कर अपना परिचय देंगे। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि उनको खरोंच तक नहीं आने देंगे। अब आप हमें

खुशी से विदा कीजिए।

सीता बोली- हे पुत्रों, पिता-पुत्रों के युद्ध में खुशी कैसी? युद्ध नाम ही हिंसा और भय का है। फिर भी **जोश, अनुभव की बातें कहाँ सुनता है?** न जाने कर्म और क्या दिखाएगा?

वो हमारे शत्रु नहीं हैं, हमारे पूर्व के दुष्कर्म हमारे शत्रु हैं। मैं किस मुँह से तुम्हें जाने के लिए कहूँ?

उसके बाद सिद्धों को नमस्कार कर लव कुश अनेक राजाओं के साथ अयोध्या की ओर चल दिए। उनकी सेना एक योजन तक फैली हुई थी। वे शीघ्र ही अयोध्या की ओर चल दिए। अयोध्या के पास की **सरयू** नदी के किनारे सेना ठहरा दी।

राम तक समाचार पहुँचते ही उन्होंने बिना देरी किए युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। राजाओं को सहयोग के लिए बुलाया। वे भी शीघ्र ही आ गए।

अवद्धार नारद और सिद्धार्थ क्षुल्लक ने भामण्डल के पास समाचार भेजे, सीता के हाल सुनाए। दुःखी, किंकर्त्तव्यमूढ़ हो, भामण्डल माता-पिता को साथ लेकर सीता से मिलने गए ।माता, पिता, भाई के गले मिलकर सीता फूट-फूट कर रोई। उसके दुःख बांध तोड़नेवाली नदी के प्रवाह की तरह निकले।

सीता को शांत कर भामण्डल ने कहा- बहन, लव कुश ने बलभद्र ,नारायण के साथ युद्ध का निर्णय कर अच्छा नहीं किया। बहन, चलो, चलकर लव कुश की सुरक्षा का कोई उपाय सोचते हैं।

सीता, भामण्डल, उनके माता, पिता अयोध्या आ गए। ये जब तक आए, तब तक युद्ध प्रारंभ हो चुका था। भामण्डल अपने भानजे लव कुश के पक्ष में खड़े हो गए। हनुमान लव कुश को सीतापुत्र जान अनेक विद्याधर राजाओं के साथ लव कुश के पक्ष में आ गए। विमान पर सीता को देखकर अनेक विद्याधर राजा

युद्ध छोड़कर सीता को प्रणाम कर उसके पास ही खड़े हो गए। सीता युद्ध देखकर कांपने लगी। उसकी कंपकंपी तब और बढ़ गई, जब उसने राम, लक्ष्मण को और लव कुश को आमने सामने युद्ध करते हुए देखा।

लव ने राम की ध्वजा और धनुष काट दिये और रथ भी तोड़ दिया। राम दूसरे रथ पर सवार होकर गुस्से में आकर लव की ओर गए। उन दोनों में विकट युद्ध हो रहा था। इधर लक्ष्मण और कुश में भी महायुद्ध हो रहा था। युद्ध में लव के रथ के सारथि राजा वज्रजंघ, कुश के सारथि राजा पृथु, लक्ष्मण के विराधित और राम के कृतान्तवक्र सेनापति थे।

राम ने कृतान्तवक्र से कहा- सेनापतिजी, रथ को तेजी से ले चलो। सारथि ने कहा- गति में तेजी कहाँ से आए? घोड़े तो घायल हैं। राम ने कहा- पता नहीं मेरा भी इनसे युद्ध करने का मन नहीं कर रहा है। मेरे शस्त्र अस्त्र लक्ष्य पर नहीं लग रहे हैं।

लव और कुश को राम और लक्ष्मण के साथ अपने संबंधों का पता था, इसलिए वे उनके शरीर को विशेषरूप से बचाकर शस्त्र और अस्त्र को चला रहे थे। लव ने राम को, कुश ने लक्ष्मण को हल्का-सा घायल कर दिया।

लक्ष्मण को घायल देख सारथि ने रथ अयोध्या की ओर मोड़ा। लक्ष्मण ने गुस्से में आकर कहा - यह क्या कर रहे हो? रथ वापिस मोड़ो। लौटकर लक्ष्मण ने गुस्से से चक्ररत्न उठाया। कुश को निशाना साधकर उसे चलाया। वह चक्र कुश की परिक्रमा देकर लौटकर लक्ष्मण के हाथ पर आकर ठहर गया। लक्ष्मण ने उसे बार-बार चलाया, चक्र बार-बार लौटकर आता गया। इसे देखकर सभी योद्धा आश्चर्य में पड़ गए।

कुश ने अपने धनुष को गोल चक्राकार घुमाया, उससे लक्ष्मण के साथ सभी भ्रम में पड़ गए, सोचने लगे ये दोनों वीर

नये बलभद्र और नारायण उत्पन्न हुए हैं।

क्षुल्लक सिद्धार्थ ने लज्जित लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! जिनेन्द्र की कही बात अन्यथा नहीं होती है, नारायण, बलभद्र के पद के स्वामी तो आप दोनों भाई ही हों, ये दोनों वीर तो आपके भतीजे, सीता के पुत्र हैं। एक का नाम अनंगलवण है और दूसरे का मदनांकुश है।

लक्ष्मण का हृदय तो मानो वात्सल्य का सागर ही बना। उन्होंने तुरंत शस्त्र छोड़ दिए। कवच उतार दिया। राम को पता चला तो सीता के दुःखों को यादकर वे बेहोश हो गए। होश में आने पर दोनों पुत्रों से मिलने गए।

लव, कुश ने रथ से उतर कर राम, लक्ष्मण के चरणों पर नमस्कार किया। राम पुत्रों से मिलकर खूब रोये । फिर कहने लगे- हे पुत्रों मैं आपका और आपकी माँ का बहुत बड़ा अपराधी हूँ । तुम दोनों निर्दोष बालकों को सीता के साथ गर्भ में ही भयानक वन में छोड़ दिया था । यदि उस समय ये परोपकारी वज्रजंघ नहीं होते तो आपके मुँह कैसे देख पाता? युद्ध में तुम दोनों हमारे कभी व्यर्थ न जानेवाले शस्त्रों से मारे नहीं गए, इसका मतलब यह है कि तुम दोनों बहुत पुण्यशाली हों। हे पुत्रों! युद्ध में यदि तुम मारे जाते तो सीता के क्या हाल होते? सीता ने जीवनभर कष्ट ही झेले हैं, जनम से ही भाई के वियोग से लेकर आज तक वह कष्टों में ही जीती रही है। कष्ट सीता का पर्यायवाची शब्द बना है।

पुत्रों ने पिता से कहा- आप शास्त्रों के जानकार, लोकव्यवहार में कुशल, राजधर्म का श्रेष्ट रीति से पालन करनेवाले होकर भी रुदन कर रहे हो? आपने सीता को मन से नहीं छोड़ा। वह तो आपके राजधर्म, उनके पूर्वकर्म के उदय एवं दुष्टों के विचारों के द्वारा छोड़ी गई है। आप चलाकर छोड़ते तो हम आपको दोषी एवं हमारा शत्रु मानते। आप शांत होइए। पुत्रों के उदार हृदय,विवेक

पूर्ण ज्ञान को देखकर राम प्रसन्न, शांत हुए।

सीता दूर से पिता-पुत्र का मिलन देखकर खुशी से पुण्डरीकपुर वापिस लौट गई।

भामण्डल ने भानजों का आलिंगन किया। हनुमान ने उनका आलिंगन कर बहुत सम्मान किया। विराधित, विभीषण आदि सभी राजाओं ने बड़ी श्रद्धा से उनको देखा। उनसे बातें कीं। लव, कुश उन सबसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

राम ने लव, कुश के मिलन को तीन लोक के वैभव से भी अधिक मान उनके रक्षक, राजा वज्रजंघ का बहुत सम्मान किया और कहा -हे वज्रजंघ आज की खुशी के एकमात्र आप ही आधार हो। आप नहीं होते तो यह दिन देखने को नहीं मिलता, न जाने क्या होता? आप हमारे लिए दूसरे भामण्डल ही हों।

लव, कुश को अयोध्या में देखकर राम को अयोध्या स्वर्ग से भी अधिक सुंदर दिखाई दी। अयोध्या में सब ओर खुशियाँ मनाई गईं। एक दिन हनुमान, सुग्रीव, विभीषण ,विराधित आदि ने राम से सीता को लाने के लिए निवेदन किया। उसे लाने के लिए आज्ञा प्रदान करने की बात कही।

तब राम ने कहा- यद्यपि शुद्ध हृदयवाली सीता के शील तो निर्दोष है, ऐसा जानता हूँ फिर भी लोकापवाद के कारण उसका मुँह मैं कैसे देखूँ? सीता पहले प्रजा को विश्वास उत्पन्न करायें, उसके बाद ही उसके साथ हमारा निवास हो सकता है, अन्य प्रकार से नहीं। हम उसे कैसे ले आयें? लोग तो यही कहेंगे। राजा थे सो अपनी मरजी से विश्वास करके ले आये। जैसे छोड़ना मरजी से हुआ, उसे लाना भी मरजी से हुआ। वह तो खिलौना बनकर रह गई। वह लोगों में विश्वास उत्पन्न करें तो आगे के अनंत काल के लिए उसका कलंक धुल जायेगा। वह निर्मल जीवन जी पाएगी। इसके लिए देश के सभी राजा एवं प्रमुख बुलाए जाएं। उन सब के

सामने शपथ लेकर वह अपनी निर्दोषता सिद्ध करें।

राम के आदेश से जिज्ञासा से भरे सभी राजा अयोध्या आए।

सभी के मन में कुतूहल भरा था। राम की आज्ञा से भामण्डल, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, विराधित और रत्नजटी आदि बड़े बड़े राजा पलभर में ही आकाशमार्ग से पुण्डरीकपुर गए। वे हाथ जोड़कर जयकारे के साथ सीता के महल में गए। नमस्कार कर सीता के सामने धरती पर बैठ गए।

सामान्य वार्ता के बाद सीता धीरे धीरे बोली-

शब्द वास्तव में बहुत बुरे होते हैं। अपवादरूपी दावानल से जले हुए मेरे अंगों को इस समय क्षीरसागर का जल भी शांति नहीं दिला सकता, इस तरह आत्मनिंदा करती हुई सीता रोने लगी।

तब विभीषण आदि ने उसे शांत किया और कहा- हे देवी धरती पर ऐसा कौन-सा व्यक्ति है? जो आपकी निर्दोषता को न जानता हो। आपके बारे में लोगों में इतना सम्मान है कि लोग अनाज में आपकी स्थापना करते हैं, उनका विश्वास है कि अनाज में सीता की स्थापना करने से अनाज अधिक उत्पन्न होता है, उसमें बरकत रहती है। हे देवी, श्री रामचंद्रजी ने आपको लाने के लिए पुष्पक विमान भेजा है। उस पर विराजमान होकर हमें उपकृत एवं प्रसन्न कीजिए। आपके बिना अयोध्या बिना ज्योति के दीए की तरह हो रही है, उसे उजला कर दीजिए।

सीता उनका मान रखकर राम को प्रसन्न करने के लिए सैंकडों स्त्रियों के साथ अयोध्या आई। सूर्यास्त हो जाने से उसने अयोध्या में प्रवेश नहीं किया। महेन्द्र नाम के उद्यान में रात भर रही।

दूसरे दिन प्रातः स्नानादि शुद्धि के बाद उसने पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर यथासमय राम के दरबार में प्रवेश किया। उसके पहुँचते ही सभा के राजाओं ने उसके जयकारे लगाए, स्तुति

प्रशंसाएं कीं। बड़ों ने उस पर आशीर्वादों की बारीश कर दी। सभी के सम्मान रूपी जल से नहाई सीता राम के पास गई।

सीता को पास देखकर एक क्षण राम प्रसन्न हुए। परन्तु अगले क्षण वे अलग प्रकार के भावों से भर गए। सोचने लगे। मुझे दुःखी करनेवाली, जो मेरी दूसरी आत्मा की तरह है, वह यहाँ क्यों आ गई? इसे मैंने जंगल में छुड़वाया था। मेरे द्वारा इस तरह निकाले जाने पर भी वैराग्य को क्यों नहीं प्राप्त हुई? जो मेरे पास लौट आई। लोग क्या कहेंगे?

अंगूठे से धरती को कुरेदती सीता, राम के चेहरे को पढ़कर सोच में पड़ गई। वह सोचने लगी- विरहरूपी जहाज शायद किनारे पर आकर टूट जायेगा। उसे बचाने के लिए मैं क्या करूँ? मेरे स्वामी का मन अब भी मेरे विषय में आशंकित है, दुःखी है। मेरी वजह से वे आज भी दुःखी हैं। पहले वनवास में मेरी वजह से उन्हें दुःख उठाने पड़े, बाद में मेरी लोकनिंदा की वजह से दुःखी होना पड़ा। आज उसी लोकनिंदा के कारण अन्तर्मन से मुझ से प्रीति होने पर भी स्वीकार कर सुखी नहीं हो पा रहे हैं। उनके मन के संताप को नष्ट करने के लिए, इन्हें विश्वास दिलाने के लिए मैं क्या करूँ? क्योंकि ऐसी चिंता और अविश्वास के दुःख में रहते हुए इनका मन धर्म में भी निश्चिंत होकर नहीं जुड़ेगा। मैं कैसी अभागिन हूँ? श्री राम जैसे धर्मात्मा, दयालु चित्तवाले पुरूष के दुःख में ही सदा कारण बनी हूँ। अब मैं क्या करूँ? जिससे इनके दुःखी मन से दुःख निकल जाये और ये निश्चिंत होकर धर्म में लीन हो जाएं। वह ऐसा सोच ही रही थी कि इतने में राम ने कहा-

सीते ! सामने क्यों खड़ी हो? दूर हट, मैं तुझे देखने में समर्थ नहीं हूँ। रावण के पास बहुत समय तक रहने के बावजूद मैंने तुम्हें स्वीकार ही कैसे किया? इतना सुनते ही सीता का सद्भावरूपी शीशापात्र टूटकर चकनाचूर हो गया।

उसने राम से कहा- तुम्हारे समान निष्ठूर दूसरा कोई नहीं है। जिसप्रकार एक साधारण मनुष्य विद्या, ऋद्धि का तिरस्कार करता है, उसीप्रकार आप मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। दोहले के बहाने मुझे जंगल में छुड़वाया। मुझ गर्भिणी को इस तरह छोड़ना क्या उचित था? यदि मैं वहाँ कुमरण को प्राप्त होती तो उसमें आपका क्या नुकसान था, नुकसान तो मेरा ही था, मैं ही दुर्गति को प्राप्त होती! यदि मुझ पर थोड़ा भी स्नेह होता तो मुझे किसी आर्यिका के पास छोड़ते। अच्छा हो जिनशासन का जिसके आश्रय से हर दुःख सहती रही। सच है -

अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम्।
जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम्॥

अर्थ- अनाथ, यतीम, दरिद्र, अतिदुःखी मनुष्यों के लिए जिनशासन ही को परम शरण माना है।

हे राजन! अधिक क्या कहूँ? इस हाल में भी प्रसन्न रहिए। मुझे तो आज्ञा दीजिए मैं क्या करूँ?- इतना कह, सीता फूट-फूट कर रोने लगी।

राम बोले- हे सीते मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पातिव्रत्यधर्म एवं विशुद्ध हृदय को जानता हूँ। पर इन लोगों के द्वारा तुम अपवाद को प्राप्त हुई हो, इसलिए कुछ ऐसा करो, जिससे इनको विश्वास हो जाये। इनकी शंका दूर करो। मैं अपना अपराध मानता हूँ, उसके लिए क्षमायाचना भी करता हूँ। आर्यिका के पास छोड़ने पर एक और आरोप खड़ा रहता। आरोपों का सिलसिला खत्म नहीं होता, उसे खत्म करने के लिए घने जंगल में छोड़ा था। तुम पुण्यात्मा हो, **पुण्यात्माओं का कुमरण नहीं होता।** आप तो ऐसी शपथ इन सबके सामने करो, जिससे सारी प्रजा को विश्वास हो जायें कि आप निर्दोष हैं।

सीता शांतभाव से बोली- हे राजन, मैं पाँचों दिव्य शपथों

से विश्वास दिला सकती हूँ। आप कहें तो कालकूट जहर को पी सकती हूँ, जिसे सूंघने मात्र से आशीविष सॉप भी तत्काल मर जाता है। जल-समाधि ले सकती हूँ। तुला पर चढ़ सकती हूँ। अग्नि में प्रवेश कर सकती हूँ। आप को जो अच्छा लगता हो सो कहो।

राम ने सोचा लगता है, इसने मरने का निश्चय किया है। अग्नि भी स्त्री है, यह भी एक स्त्री है। एक स्त्री दूसरी स्त्री की रक्षा करती है या नहीं-यह देखते हैं। और कहा- आप अग्नि में प्रवेश करो।

सीता ने कहा- ठीक है। सीता के उत्तर से भामण्डल, विभीषण आदि ने सोचा इसने मरण चुन लिया है। विद्वान कहते हैं, वह सच है **निंदा से मरण भला।** वह कहावत आज समझ में आई है। सभा के सभी सभासद, उपस्थित जनसमुदाय के मस्तक सीता के प्रति अटूट श्रद्धा व सीता के मरण की आशंका से झुक गए। लोगों की आँखों से आंसूं टपकने लगे।

लव, कुश ने मन में निश्चय किया था कि हम दोनों भी अग्नि में प्रवेश करेंगे। सिद्धार्थ क्षुल्लक ने हाथ ऊपर उठाकर कहा-

हे राजन! हे लोगों **सीता के शीलव्रत का पूर्णरूप से वर्णन करने में देव भी समर्थ नहीं है, अन्य मनुष्यादि की क्या बात?** हे राम; मेरू पाताल में जा सकता है, समुद्र सूख सकता है, चंद्र उष्णता में सूर्य बन सकता, सूर्य शीतलता में चन्द्र बन सकता, परंतु सीता के शीलव्रत में चंचलता उत्पन्न नहीं हो सकती। सीता का अपवाद सत्यता को प्राप्त नहीं हो सकता। मैं विद्याबल से समृद्ध हूँ और मैंने पांचों मेरू पर्वतों पर विद्यमान अकृत्रिम चैत्यालयों एवं जिन प्रतिमाओं की अनेकों बार वंदनाएं की हैं। हे राम, मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि सीता के शीलव्रत में थोड़ी भी कमी हो तो मेरी वे सभी दुर्लभ वंदनाएं निष्फल हो जाएं। मैंने एक

वस्त्रखण्ड़ धारण कर कईं हजार वर्ष तक तप किया है, वह निष्फल हो जाये। इसलिए सीता पर अविश्वास कर उसे अग्नि में प्रवेश न कराओ। सभी ने क्षुल्लक के शब्दों का समर्थन किया। सभी कहने लगे- हे राम!

सती सीता सती सीता न सम्भाव्यमिहान्यथा।
महापुरूष पत्नीनां जायते न विकारिता॥

अर्थ- सीता सती है, सीता सती है, उसके विषय में अन्य कल्पना मत करो। महापुरूषों की स्त्रियों में विकार नहीं होते हैं। इसप्रकार के शब्द चारों ओर से सुनाई देने लगे।

तब राम ने कहा- हे लोगों, यह बात सत्य थी, है और रहेगी। पर उस समय क्या हो गया था? जब आप लोग मेरे पास आकर धर्म की मर्यादा का वास्ता देकर उस पर आरोप लगा रहे थे। अब आरोप की शुद्धि शब्दों से नहीं, क्रिया से ही संभव है। **संसार शब्द बदलने में देरी नहीं करता।** हमारे पास शुद्धि का क्या आधार है? लोगों के शब्दों पर नहीं, बल्कि सीता की शुद्धि पर ही जिनका मन केन्द्रित था, ऐसे राम ने सेवकों को आज्ञा दी कि - शीघ्र ही **दो पुरूष गहरा, तीन सौ हाथ चौड़ा चौकोर अग्निकुण्ड तैयार करो,** उसमें कालागुरू तथा चंदन की सूखी लकड़ियां भरकर अग्नि जलाओ।

जिस समय राम की आज्ञानुसार अग्निकुण्ड तैयार कर उसमें अग्नि जलायी जा रही थी। उसी समय **सर्वभूषण** मुनिराज जो महेन्द्र उद्यान में ध्यानस्थ थे, विद्युत्वक्त्रा नाम की राक्षसी के द्वारा किए गए उपसर्ग को जीतकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए थे। उनका केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाने के लिए स्वर्ग से इन्द्र आदि देवता अयोध्या की ओर आ रहे थे, क्योंकि महेन्द्र उद्यान अयोध्या के पास ही था। जब इन्द्र आदि स्वर्ग से धरती पर आ रहे थे, तब उन्हें लोगों का विशाल समुदाय दिखा। उन देवों में से

मेषकेतु नाम के देव ने इन्द्र से कहा- हे देवेन्द्र, जरा इस कठिन कार्य को भी देखो। देव भी जिससे ड़र जाये ऐसा भयानक उपसर्ग इस कोमल शरीरवाली सीता पर क्यों हो रहा है? यह इसे कैसे सहन कर पायेगी? विकराल अग्नि इसे क्षणभर में ही भस्म बना देगी। सुशील, शुद्ध हृदयवाली श्राविका पर उपसर्ग क्यों?

इन्द्र ने कहा- हे देव, यह सब पूर्व दृढ़ कर्मों की लीला है। हम जल्दी में हैं। हमें सर्वभूषण केवली की वंदना के लिए शीघ्र ही जाना है। यहाँ ठहरकर जो उचित हो, वह करो।

इन्द्र आदि अन्य देव केवलज्ञान कल्याणक उत्सव के लिए महेन्द्र उद्यान की ओर गए। मेषकेतु देव वहीं ठहर गया।

राम ने आवेश में आकर अग्निकुण्ड़ और उसमें विकराल अग्नि देखी, तब वे भीतर ही भीतर कांपने लगे, शरीर पसीने से भीग गया, सिर चकराने लगा, सोचने लगे। कोमलांगी क्षणभर में भस्म होकर अदृश्य हो जायेगी। इसका मुखदर्शन सदा के लिए विलुप्त हो जायेगा। इसका राजकुल में उत्पन्न होना भी कितना नुकसानदायक रहा, यदि यह राजकुल की बजाय सामान्य कुल की महिला होती तो शायद यह दिन इसके नसीब में नहीं होता। इसके बिना तो स्वर्ग में भी सुख नहीं है। यह सरलहृदया निश्चिन्त मनवाली है, तभी तो मरने के लिए तुरंत तैयार हो गई। यह अग्नि में प्रवेश के लिए उतावली है, इसे कैसे रोकूँ? इसे अपने प्राणों से कोई मोह नहीं है, परंतु मुझे तो है। सब के सामने इसे रोकने में लज्जा महसूस हो रही है। उस समय जोर-जोर से बोलनेवाला क्षुल्लक सिद्धार्थ इस समय चुपचाप बैठा है। इसे रोकने का मैं क्या बहाना करूँ?

राम के भीतर विचारों की ज्वालाएं जल रही थीं, अग्निकुण्ड में अग्नि की ज्वालाएं भड़क उठीं। राम के हृदय के भावों का वर्णन

शब्दों में सभंव नहीं है। उन्हें कांटों तो खून नहीं था। वे चिंता से अर्द्धबेहोश जड़ जैसे हो गए। ज्वालाओं के बढ़ने के साथ लोगों की आँखों के आँसुओं की धाराएं बढ गईं। छोटे-बड़े सभी रो रहे थे। उपस्थित महिलाएं दहाड़े मार कर रोने लगी थीं। सभी सोच रहे थे समझदार होते हुए भी राम यह क्या कर रहे हैं? सीता का क्या होगा? बेचारी अग्नि की मार कैसे सहन करेगी? यह तो क्षणभर में ही झुलस कर भस्म हो जायेगी। उधर धुंए से आकाश भर गया, सब ओर अंधेरा छा गया, सबको वह दृश्य प्रलयकाल जैसा लगा।

सीता ने अत्यंत दृढ मन से उठकर कायोत्सर्ग किया। जिनेन्द्र भगवन्तों की स्तुति की। ऋषभादि तीर्थंकरों को नमस्कार किया। शासननायक मुनिसुव्रतनाथ भगवान की स्तुति की। सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया। आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठियों के चरण युगलों को नमन किया। सीमंधर आदि विद्यमान तीर्थंकरों की भाववंदना की। तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों का स्मरण किया। तीन लोक के कृत्रिम, अकृत्रिम, चैत्य, चैत्यालयों को नमस्कार किया। सभी सिद्धक्षेत्र, निर्वाणक्षेत्र, अतिशय क्षेत्रों की भाववंदना की, त्रिकालवर्ती नवदेवताओं को नमस्कार कर विनय भावों से कहा-

कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम्।
समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम।।
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः।
भस्मसाद् भावप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात्॥

अर्थ- मैंने राम को छोड़कर किसी अन्य मनुष्य को स्वप्न में भी मन, वचन और कार्य से धारण नहीं किया है- यह मेरा सत्य है। यदि मैं झूठ कह रही हूँ तो अग्नि दूर से ही मुझे पलभर में भस्म कर दें। परन्तु

अथ पद्मान्नरं नान्यं मनसाऽपि वहान्यहम्।
ततोऽयं ज्वलनो धाक्षीन्मा मां शुद्धिसमन्विताम्॥

अर्थ- यदि मैंने राम के सिवाय किसी अन्य मनुष्य को मन से भी धारण नहीं किया है तो विशुद्धि से सहित मुझे यह अग्नि नहीं जलावे।

इतना कहकर उस देवी ने अग्नि की ओर कदम बढ़ाए। उसने ज्यों ही अग्नि की ओर कदम बढ़ाए, त्यों ही सभी के मुँह से एक साथ चित्कारे निकलीं, सभी पछाड़ मार कर, छाती पीट-पीट कर रोने लगे। रूको, रूको, आगे मत बढ़ो, तुम्हें अग्नि जला देगी, रूको, रूको, आत्मघात मत करो, हमसे यह देखा नहीं जा रहा है, रूको, ठहर जाओ- कह कहकर हाहाकार करने लगे। राम विलाप करते हुए, रूको, रूको कहते-कहते बेहोश हो गए।

सीता ने ज्योंहि अग्नि का स्पर्श किया, त्योंहि वह अग्नि स्फटिक के समान स्वच्छ, सुखदायी, शीतल जल बन गई। मानो धरती को काटकर निर्मल जल का झरना निकल आया हो। अग्निकुण्ड़ स्वच्छ, निर्मल जल का कुण्ड़ बन गया। वह जल से लबालब भर गया। उसमें जल की लहरे किलोले करने लगीं। अग्नि की सूचना देनेवाला कोई चिह्न नहीं रहा। न ऊपर धुंआ, न नीचे अंगारे, न कोयले, न लकड़ियाँ। आकाश स्वच्छ हो गया। उस कुण्ड़ में समुद्र के समान गंभीर नाद सुनाई दे रहा था। सीता कमलाकार सिंहासन पर पद्मादि सरोवरों की देवी के समान शोभित हुई। जल पल भर में कमर तक बढ़ गया। फिर सीने तक आया। फिर गले तक आ गया। तब विद्याधर तो न जाने क्या होगा? सोचकर आकाश में ऊपर की ओर चले गए। अनेक लोग ड़रकर भाग गए, कईयों ने मचान का सहारा लिया। वे मचान भी डूबने लगे। कईं मनुष्य जल पर तैरने लगे।

हे देवी, हमें बचाओ। हमारे प्राण आपके हाथ में हैं- इस

प्रकार सभी लोग करूणा से पुकार रहे थे, पर पानी का स्तर तो बढ़ता ही जा रहा था। पानी ने जब राम के चरणयुगल का स्पर्श किया, तब वह धीरे-धीरे शांत हुआ, घटता गया। उसकी विकरालता समाप्त हो गई। तब लोगों के जी में जी आ गया।

वापिका दिखनेवाला जलकुण्ड़ सुन्दर जलसरोवर में तब्दील हो गया। उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले थे। उनकी महक चारों ओर फैल गई थी।

देवों ने आकाश से सीता के ऊपर फूल बरसाए। दुंदुभि, नगाडे आदि बाजे बजाये, मंद सुगंधित हवाये चलाईं। जयकारे लगाएं। विद्याधर खुशी से नाचने लगे। सब ओर खुशी छा गई। लोग आनंद से झूमने लगे। सभी सीता के नाम की जयकारे लगा रहे थे।

अग्नि से जल बन जाने को देवों का अतिशय (चमत्कार) मान सभी इच्छित वस्तु मिलने की तरह चहकने लगे

लव, कुश तैरकर माँ के पास गये। पुत्रों के प्रेम से भिगी सीता ने उनका मस्तक चूमा। दोनों भाई माँ के दोनों ओर खड़े हो गए।

सीता का शरीर अग्नि-परीक्षा में सफल हो कुन्दन की तरह चमकने लगा। कमलासन पर विराजमान चन्द्र दीप्ति-सी चमकनेवाली सीता को देख, अनुराग से भरे राम सीता के पास गए। कहने लगे-

हे साध्वि! प्रसन्न होओ। दुःख की विभावरी बीत गई है। सुख का सुप्रभात हुआ है। मेरे अपराध क्षमा करो। मुझ पर प्रसन्नता बरसाओ। तुम दयालु हो। शरद ऋतु के पूर्ण चंद्र की तरह शुद्ध हो। मैं तो मानता ही था। अग्नि ने उसे प्रमाणित कर दिया है। तुम कल्याणवती हो, मनुष्यों, देवों से पूजित हो। आज आठ हजार स्त्रियों में प्रधान हो। पटरानी हो। चलो, अपनी प्रभुता को प्राप्त

करो, मुझे आज्ञा दो। मेरा मन अज्ञान और मोह से ढका था, इसलिए मेरे कारण लोकापवाद के भय से मैंने तुम्हें दुःख दिया। अब मेरे साथ इस पृथ्वी पर विचरण करो। पुष्पक विमान पर चढ़कर सुमेरू के जिनालयों, जिनप्रतिमाओं के दर्शन करो। हे देवी! दोषरूपी सागर में डूबा पड़ा हूँ , विवेकरहित हूँ। क्रोध का त्याग करो। इसके बाद राम मौन हो आशातुर निगाहों से सीता की ओर देखने लगे।

सीता ने कहा- हे राजन! मैं आप पर या किसी अन्य पर किसी भी प्रकार से कुपित नहीं हूँ। विषाद मत कीजिए। **विषाद तो पाप का बंध कराता है।** इस घटना में न आपका दोष है, न किसी अन्य का। यह तो बिना चूके, बिना भूले, सही समय पर सही फल प्रदान करनेवाले कर्मों का उदय था, जो अब बीत गया।

हे बलदेव, आपके साथ मैंने स्वर्ग-समान भोग भोगे हैं, अब उनकी इच्छा नहीं रही। अब तो वह काम करना चाहती हूँ जिससे फिर स्त्री नहीं बनना पड़े। क्योंकि मेरे विचार से स्त्री होने के कारण ही इतने सारे दुःख मुझ पर आये हैं। संसार में लाखों योनियों में भटकना न पड़े। **अनादि काल से यह जीव पञ्च परावर्तनरूप संसार में घूम रहा है। अनंतानंत बार स्वर्गादिक के भोग भोगे हैं, परंतु जीव को संतुष्टि नहीं मिली। क्योंकि भोगों से कभी संतुष्टि नहीं मिलती है।** आप सब लोग विषाद छोड़कर धर्ममार्ग ग्रहण करो। हे पुत्रों, **सदा धर्म का ध्यान रखो, धर्म भी आपका ध्यान रखेगा, कभी क्षणभर भी धर्म को मत भूलो। मोह, माया, ममता से भरा जीव संसार में भटकता है, इसलिए इनका त्याग करो।** अब मैं दुःखों का नाश करने की इच्छा से दुःखों का नाश करनेवाली जैनौषधि जैनेश्वरी आर्यिका दीक्षा धारण करती हूँ । मुझ से कोई न मोह रखे, न दुःख करे। मैं आप सबके प्रति निस्पृहभाव धारण करती हूँ। आप सब मेरे प्रति निस्पृहभाव रखें।

आप सब मुझे क्षमा करें, मैं भी आप सबको क्षमा करती हूँ। आप सब मुझे सहर्ष अनुमति दीजिए। इतना कहकर सीता ने अशोक वृक्ष की नयी कोंपल के समान कोमल हाथ से केश उखाड़ कर राम को दिए। इन्द्रनील मणि के वर्ण के समान काले चमकदार केशों को देख राम बेहोश हो धरती पर गिर गए। राम को अचेत दशा में छोड़ जब तक वे होश में आए, उससे पूर्व ही **पृथ्वीमति आर्यिका** के पास दीक्षित हो गई ।

देवों के प्रभाव से जिसके सब विघ्न दूर हो गए थे, ऐसी सीता श्रृंगार-भोग को तिलाञ्जलि दे, श्वेतवस्त्रधारिणी आर्यिका बन गई। व्रतों से जिसका शरीर पवित्र हुआ था, मन महावैराग्य से भरा हुआ था, ऐसी वह साध्वी उद्यान में चली गई।

राम को होश आया, तब वे सीता को इधर-उधर देखने लगे। उसे न देख, उनको दिशाए शून्य दिखाई देने लगीं। उन्होंने पास खड़े राजाओं से करूणा-भरे शब्दों से कहा- **आत्मीयजन की मृत्यु भली, पर विरह भला नहीं है।** इसप्रकार से कह अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। कुछ समय बाद परिजनों के समझाने पर आश्वस्त होकर महेन्द्र उद्यान में गए। वहाँ सर्वभूषण केवली को नमस्कार कर उनकी भक्ति की। वहाँ केवली के श्रीमुख से संसार का स्वरूप जाना कि **संसार के विषय-भोग तलवार की धार पर लगे शहद के समान हैं, चक्रवर्ती का सुख विषमिश्रित अन्न के समान है।**

सिद्धों का सुख ही नित्य है, उत्कृष्ट है, बाधा से रहित है, अनुपम है, आत्माश्रय से उत्पन्न स्वाधीन है। जिसकी नींद पूरी हो गई, उसे बिस्तर से, नीरोग मनुष्य को दवाई से, शत्रु से रहित निर्भीक मनुष्य को शस्त्र से क्या प्रयोजन है? **आत्मा संबंधी महासुख से संतुष्ट सिद्धों को भोजनादि से क्या प्रयोजन?** अर्थात कुछ नहीं, वे इनके बिना ही सुखी होते हैं।

साधारण मनुष्यों की अपेक्षा राजा सुखी है, राजाओं की अपेक्षा से चक्रवर्ती सुखी है, चक्रवर्तियों की अपेक्षा से व्यंतर देव सुखी हैं, व्यंतर देवों की अपेक्षा से ज्योतिषी देव सुखी हैं, ज्योतिषी देवों की अपेक्षा से भवनवासी देव सुखी हैं, भवनवासी देवों की अपेक्षा से कल्पवासी देव सुखी होते हैं, कल्पवासी देवों की अपेक्षा से ग्रैवेयक के देव सुखी होते हैं। ग्रैवेयक देवों की अपेक्षा से अनुत्तरवासी देव सुखी हैं, अनुत्तर देवों से सम्यग्दृष्टि जीव, सम्यग्दृष्टि से अणुव्रती जीव, अणुव्रती जीव से महाव्रती, महाव्रती से अनन्तानन्त गुणे ज्यादा सुखी सिद्ध जीव हैं। सिद्धपने के अलावा जीवों को उत्कृष्ट दूसरा सुख नहीं है। उस सुख को पूर्णरूप से केवली ही जानते हैं। अन्य लोगों के वचन तो मात्र उपमा रूप होते हैं। उनके सुख का वर्णन शब्दों से सभंव नहीं है।

संसारी प्राणी दुःख को ही सुख मानते हैं। मृत्यु से ड़रते हैं, पर ड़रने से उससे छुटकारा नहीं मिलता, दुखों से छुटकारा तो सम्यग्दर्शन पूर्वक व्रतों से मिलता है, जो व्रत मिथ्यादृष्टि जीव को कष्टकारी लगते हैं।

इदं कृतमिदं कुर्वे करिष्येऽहं सुनिश्चितम्।
मर्ताहि वत्सवदः पापान्मृत्युं यान्तीति चिन्तकाः॥

अर्थ- संसारी जीव 'मैं यह कर चुका हूँ, यह करता हूँ, यह आगे करूँगा'- इसप्रकार विचार करता है, परंतु मैं एक दिन मरूंगा- इस बात का विचार नहीं करता। परंतु -

न प्रतीक्षते मृत्युरसुभाजां कृताकृतम्।
समाक्रामत्यकाण्डेऽसौ मृगकं केसरी यथा॥

अर्थ- मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि कौन प्राणी काम कर चुके हैं और कौन काम नहीं कर पाये? वह तो जिसप्रकार सिंह हिरण पर आक्रमण करता है, उसीप्रकार असमय में भी आक्रमण कर बैठती है।

इस तरह का उपदेश सुन संसारभय से कातर राम ने हाथ मस्तक से लगाकर पूछा- हे भगवन! क्या मैं भव्य हूँ? हूँ तो किस उपाय से मुक्त होऊँगा? मैं समस्त पृथ्वी के राग को छोड़ने के लिए समर्थ हूँ, पर लक्ष्मण के प्रति राग को छोड़ने में समर्थ नहीं हूँ। हे मुनीन्द्र, समाधान कर मेरी रक्षा करो।

केवली की वाणी में आया- राम दुःखी मत होवो, तुम भव्य हो, दीक्षा लेकर इसी भव से मोक्ष जाओगे। कर्मोदय, पूर्व-संस्कार, नियोग आदि के कारण लक्ष्मण का राग नहीं छोड़ पा रहे हो, पर देवों के उपदेश से वह भी नष्ट हो जाएगा।

राम को चरमशरीरी जानकर देवादि सभी ने उनकी प्रशंसा की। इसके बाद राम ने सकलभूषण केवली से अपने पूर्वभव जाने।

×××××

भवभ्रमण के दुःखों को सुनकर कृतान्तवक्र सेनापति ने राम से मुनिदीक्षा के लिए अनुमति मांगी। राम ने कहा- इस वृद्ध शरीर के द्वारा कठोर तपश्चरण कैसे कर पाओगे?

सेनापति बोले- जो आपका स्नेहरसायन छोड़ने के लिए समर्थ है, उसे अन्य क्या असहनीय है? जब तक मृत्युरूपी वज्र के द्वारा शरीर रूपी स्तम्भ नहीं गिरा दिया जाता है, तब तक मैं दुःख से अंधे इस संसाररूपी संकट से बाहर निकल जाना चाहता हूँ। **जैसे आग से जलते घर से चतुर पुरूष तुरंत निकल जाता है, उसी प्रकार दुःखों से जलते संसार से भव्य पुरूष तुरंत दीक्षा लेते हैं।** आज नहीं तो कल आपका वियोग होगा ही, उस समय बिना वैराग्य के उसे कैसे सह पाऊँगा? आपका वियोग बहुत दुःखदायी है, पर ऐसा दुःख पुनः प्राप्त न हो, इसलिए दीक्षा चाहता हूँ।

तब राम ने कहा- हे सेनापति, आप धन्य हो, जो ऐसा विचार कर रहे हो। पर मेरा एक निवेदन है आप से- यदि मैं मोह में फँसकर दीक्षा नहीं ले पाऊँ, तो मुझे संबोधित करना। हे भद्र,यदि मेरा एक

भी उपकार मानते हो तो यह बात भूलना नहीं। प्रतिज्ञा करो।

सेनापति ने कहा- जैसा आप कह रहे हे, वैसा ही होगा। इतना कह अनुमति ले जिनदीक्षा ली।

राम, केवली भगवान की वंदना कर क्रमशः गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं की स्तुति, भक्ति कर विनीत भाव से सीता के पास गए।

सीता आर्यिकाओं के मध्य में विराजमान थी। धीर, प्रशांत, वैराग्यरस टपकानेवाली सीता की साध्वि आकृति देख राम को परम शांति का अनुभव हुआ। पास जाकर भक्ति, स्नेह और विनय के साथ उसे नमस्कार किया।

राम के साथ लक्ष्मण ने भी सीता को नमस्कार किया। राम ने कहा- हे साध्वि, आप सफेद वस्त्र में नहीं, अपितु इस समय मोह, ममता तोड़ सुख के सागर में हो। जिनवचनों के साररूप अमृत का पान कर रही हो । हम जिनवचनरूप रसायन के बारे में केवल सुनते रहे, उसे हम से पहले पीने का मान आपने पाया है। आप सती हो, शीघ्र ही सिद्धपद प्राप्त करोगी।

लक्ष्मण बोले- हे देवी, संसार में फंसे मानव से पद-पद पर गलतियाँ होती हैं, हमसे हुई गलतियों के लिए क्षमा कीजिए।

लव, कुश ने आर्यिका माँ को नमस्कार किया। इसके बाद वे सब अयोध्या आ गए।

×××××

अयोध्या में सबकी जिह्वा पर एकमात्र सीता की ही चर्चा थी। लोग उठते-बैठते, सोते-जागते उसकी ही चर्चा कर अपनी जिह्वा व वाणी को पवित्र करते थे। धन्य है, वह, जिसने दुःखों को मिटानेवाली औषधि के समान आर्यिका दीक्षा धारण कर ली। करती भी क्या? जब सारा संसार ही विरोधी हो गया था, तब उसे धर्म ही शरण हो गया। **संसार में सभी विरोधी बन सकते हैं, पर**

धर्म कभी विरोधी नहीं होता। बल्कि सभी विरोधों को मिटाता है।

प्रजाजन इस तरह से सीता की चर्चा करते-करते कभी नहीं थकते थे। सीता के चरित्र को पापहारी जान, एक दूसरे को सुनाते थे, सुनाकर पुण्यार्जन करते थे।

शील की तरह सीता का तपश्चरण भी संसार में प्रसिद्धि पा चुका था। सुंदरता में अप्सराओं को जीतनेवाली सीता का शरीर सूखकर कांटा हो गया। प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकम्पा आदि गुणों को धारण करनेवाली महातपस्विनी सीता कभी चार, कभी आठ, कभी एक पक्ष का उपवास करती थी। ऋतुकाल के बाद शास्त्रोक्त विधि से पारणा आदि करती थी। शीलव्रत, मूलगुण, उत्तरगुणों के पालन में सदैव सावधान रहती थी। अत्यंत शांत थी। उसने अपने आपको अपने मन के अधीन कर रखा था। अन्य मनुष्यों के लिए दुःसह ऐसा अत्यन्त कठिन तप करती थी। उसका समस्त शरीर मांस रहित हो गया था। वह लकड़ी से बनी प्रतिमा की तरह दिखती थी। युगप्रमाण पृथ्वी पर अपनी सौम्यदृष्टि रखकर चलती थी। तप के आधारभूत शरीर की रक्षा के लिए विधिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करती थी।

उसने ऐसा उग्र कठोर तप **बासठ वर्ष** तक किया। अंत में जब शरीर व्रतरूपी भार झेलने में असमर्थ हो गया, तब उसने विधिपूर्वक सल्लेखना ग्रहण की। उसके सल्लेखना की अनुमोदना करने व दर्शन हेतु दूर-दूर से लोग आते थे। अब तो उसका शरीर अस्थिपंजर हो गया था। अंतर में आत्मध्यान एवं पंचपरमेष्ठी के स्मरण पूर्वक सल्लेखना ग्रहण के **तैतीसवें दिन** उसने शांत परिणामों के साथ देह छोड़ दी। देह के साथ-साथ उसने स्त्री-पर्याय भी छोड़ दी। वह आरण-अच्युत युगल में अर्थात् **सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद को प्राप्त हुई।**

महात्म्यं पश्यतेदृशं धर्मस्य जिनशासने ।
जन्तुः स्त्रीत्वं यदुज्झित्वा पुमान् जातः सुरप्रभुः ।।

अर्थ- अहो, जिनशासन में धर्म का ऐसा महात्म्य देखो कि यह जीव स्त्रीपर्याय को छोड़, देवों का स्वामी पुरूष हो गया।

आरण-अच्युत स्वर्ग में वह सीतेन्द्र तारागणों के परिवार से सुशोभित चंद्र की तरह लाखों देवियों के नेत्रों का केन्द्रबिन्दू बन गया। स्वर्गों का कोई भी देव उसके गुण, वैभव ऋद्धि की बराबरी का नहीं था। वह देव धार्मिक चर्चा में, अकृत्रिम जिनालयों की वंदना में, पञ्चकल्याणक उत्सवों में अपना समय व्यतीत करता है।

लव, कुश ने **अमृतसर** नाम के मुनि के पास दीक्षा ली। तपश्चरण कर **पावागढ़** से मोक्ष गए। जटायु का जीव व कृतान्तवक्र सेनापति का जीव, जो देव बने थे, उनके उपदेश से **सुव्रत नाम के मुनि के पास राम ने भी दीक्षा ली। राम के साथ सोलह हजार मनुष्यों ने दीक्षा ली तथा सत्ताईस हजार स्त्रियों ने श्रीमती नाम की आर्यिका के पास दीक्षा ली।** राम कठोर से कठोर तप करते थे।

एक दिन सीता का जीव, जो अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र था, ने अवधिज्ञान के द्वारा राम मुनि को देखा। उसे पूर्वजन्मों की सभी घटनाएं याद आयीं। उसे राम मुनि के प्रति राग उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कईं जन्मों में हम साथ रहे, यह मेरा मित्र मेरे साथ स्वर्ग में ही उत्पन्न हों और मेरे साथ ही मोक्ष जायें। मैं ऐसा कार्य करूँ! जिससे राम मुनि का ध्यान टूट जायें। मैं इनका ध्यान तोड़ नहीं पाया तो ये मुझसे पहले मोक्ष जायेंगे। इसलिए इनका ध्यान तोड़ने के लिए कुछ करूँ- यह सोच वह देव धरती पर उस जंगल में आया, जहाँ राममुनि ध्यानस्थ थे।

वहाँ आकर उस सीतेन्द्र स्वयंप्रभ देव ने सीता का भेष बनाया। सीता के भेष में उसने राम मुनि से कहा- हे नाथ, वियोग

से पीड़ित मैं स्नेह व आश्रय की आशा से आपके पास आई हूँ, मुझे शरण दीजिए। नष्ट होने से बचाइये । उस समय आप को छोड़ बिना सोचे दीक्षित हो गई थी, अब समझ आने पर आपके पास आई हूँ, आप शरणागत के पालक कहलाते हो, मुझे शरण देकर तारिये । इस प्रकार अनेक प्रकार से निवेदन किया। अनेक हावभाव किए। परंतु राम मुनि उसके शब्द, हावभाव या क्रिया से विचलित नहीं हुए। ध्यान में दृढ़ रहे। उन्हें उसी समय **माघ शुक्ला द्वादशी के दिन रात्रि के अंतिम पहर में केवलज्ञान प्रकट हुआ।** तब इन्द्रादि ने आकर उनका केवलज्ञान उत्सव मनाया। स्वयंप्रभ नाम के सीतेन्द्र ने अपने कृत्य के लिए उनसे क्षमा याचना कर उनका केवलज्ञान उत्सव मनाया और अन्य देवों के साथ स्वर्ग गया।

कुछ समय बाद वह स्वयंप्रभ नामक सीतेन्द्र ने राम केवली के पास आकर लक्ष्मण, जनक आदि के बारे में पूछा, तब पद्मनाभ (राम) केवली ने इसप्रकार बताया-

लक्ष्मण सौ वर्ष कुमार काल में, तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्था में, चालीस वर्ष दिग्विजय में, ग्यारह हजार पांच सौ साठ वर्ष साम्राज्य में बिताकर भोगों से संतुष्ट न होकर अंत में मरण कर नरक गए हैं। लवण, अंकुश **पावागढ़** से मोक्ष गए हैं। राजा दशरथ **आनत स्वर्ग** में देव हुए हैं। सुमित्रा, कैकेयी, कौशल्या, सुप्रभा, जनक, कनक ये सभी सम्यग्दृष्टि **आनत स्वर्ग** में ही देव बने हैं।

भामण्डल ने वन में नगर बसाकर अशोक, तिलक, वज्रांक आदि मुनिराजों को आहार दिया था। एक दिन वह मालिनी नामक स्त्री के पास सो रहा था, तब वज्र गिरने से उसकी मृत्यु हुई। मुनियों को आहारदान करने के प्रभाव से वह मेरू पर्वत के दक्षिण में विद्यमान **देवकुरू में तीन पल्य की आयुवाला श्रेष्ठ आर्य** बना है।

उस सीतेन्द्र ने पद्मनाभ (राम) केवली से फिर पूछा कि रावण, लक्ष्मण का नरक से निकलने पर कहाँ जन्म लेंगे?

तब पद्मनाभ केवली ने बताया- रावण, लक्ष्मण नरक से निकलकर मेरूपर्वत से पूर्व की ओर विजयावती नामक नगरी में सुनन्द नाम के सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के रोहिणी नामक स्त्री से क्रमशः **अर्हद्दास व ऋषिदास** नाम के पुत्र होंगे। वे अणुव्रत धारण कर जीवन यापन करेंगे, मरकर स्वर्ग जायेंगे, स्वर्ग से आकर उसी महाकुल में जन्म लेंगे। उत्तम दानादि देंगे। दान के प्रभाव से हरिक्षेत्र में जन्म लेंगे। वहाँ से स्वर्ग जायेंगे। स्वर्ग से आकर उसी विजयावती नगरी में **राजा कुमारकीर्ति व माँता लक्ष्मी** के क्रमशः **जयकान्त व जयप्रभ** नाम के पुत्र होंगे। दीक्षा लेकर तप के प्रभाव से **लान्तव स्वर्ग** जायेंगे।

हे सीतेन्द्र अच्युत स्वर्ग से निकलकर तुम इस भरत क्षेत्र के रत्नस्थलपुर नामक नगर में **चक्ररथ** नाम के चक्रवर्ती होवोगे। तब वे **रावण, लक्ष्मण** के जीव लान्तव स्वर्ग से आकर तुम्हारे क्रमशः **इन्द्ररथ व मेघरथ** नाम के पुत्र होंगे।

रावण का जीव, तुम्हारा इन्द्ररथ नाम का पुत्र होगा, वह धर्मपरायण होकर अनेक उत्तम भव पाकर मनुष्य होकर तीर्थंकर नामक प्रकृति का बंध करेगा। बाद में वह अर्हन्त पद प्राप्त करेगा।

तुम्हारा जीव चक्ररथ नाम का चक्रवर्ती बनेगा तब दीक्षा लेकर कठोर तप करके देह त्याग कर वैजयन्त स्वर्ग में अहमिन्द्र पद प्राप्त करेगा।

रावण का जीव तीर्थंकर बनेगा, उस समय आप वैजयन्त स्वर्ग से आकर उस तीर्थंकर के पहले गणधर बनकर मोक्ष जाओगे।

लक्ष्मण का जीव जो तुम्हारा मेघरथ नाम का पुत्र बनेगा,

उसके बाद वह धर्मपूर्ण आचरण करता हुआ, अनेक श्रेष्ठ भव धारण करके मनुष्य बनकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके पुष्करद्वीप के विदेह क्षेत्र के शतपत्र नाम के नगर में तीर्थंकर बन मोक्ष प्राप्त करेगा। मैं भी सात वर्ष पूर्ण होते ही मोक्षपद को प्राप्त करूंगा।

सीतेन्द्र स्वयंप्रभ देव ने पद्मनाभ (राम) केवली की अनेक प्रकार से स्तुति, भक्ति, वंदना की। जाते समय पूर्वस्नेह के कारण देवकुरू क्षेत्र में भामण्डल के जीव से मिलकर उससे बातचीत कर अच्युत स्वर्ग चला गया।

×××××

भजन

तारो–तारो–तारो प्रभुजी हम को तारो–2
बीच भंवर में मेरी नैया, हमको पार उतारो।

1. अन्तरमन में ज्योति जलाऊँ, वीतरागता ध्याऊँ
   प्रभु चरणन में चित्त को लगाऊँ,
   चरणन शीस झुकाऊँ। तारो–2.....

2. भटक रहा हूँ लख चौरासी
   मुझको मुक्ति धाम दो
   अपना दास बना लो प्रभुवर
   शरण तिहारी नाथ दो..... । तारो.....

3. मत भूलो तुम पारस हो
   फिर क्यूँ ना उद्धार करो
   नित प्रति मैं दर्शन को आऊँ
   अब कुछ मेरा ख्याल करो। तारो.....

2. सती विशल्या

श्रीराम और रावण के बीच कई दिनों से घनघोर युद्ध हो रहा था। एक दिन रावण के सामने विभीषण आया। दोनों आमने-सामने हो गए। तब रावण ने कहा- तू छोटा भाई है, अतः तुझे मारना योग्य नहीं है। तू सामने से हट जा। सामने खड़ा मत रह। मैं तुझे देखने के लिए भी समर्थ नहीं हूँ। तुझे मारने से मेरा यश नष्ट हो जाएगा। तूने कुलद्रोह किया है।

इस पर विभीषण ने कहा- तुम्हारा छोटा भाई होने से मुझे शर्म आ रही है। जिसके बड़े भाई ने किसी अन्य की विवाहिता स्त्री छल से चुराई हो, वह भी वन में रहनेवाले की तो छोटे भाई का शर्मिंदा होना स्वाभाविक है। ऐसा निन्दनीय कार्य करनेवाले आपको देखने के लिए मैं ही असमर्थ हूँ। यह कार्य करने से आपका यश पहले से भी नष्ट हो चुका है। वास्तव में आप ही कुलद्रोही हैं, क्योंकि आपने कुल को सदा के लिए कलंकित किया है। इन कारणों से हम दोनों भाई-भाई होते हुए भी इससमय शत्रु हैं।

अब भी अपने कुल का कलंक धुल सकता है, यदि आप ससम्मान श्रीराम को इसे लौटा दो। युद्ध भी बंद हो जायेगा, हिंसा भी नहीं होगी, कुल का दाग धुल जायेगा, भाइयों के बीच की दूरी मिट जायेगी। दुःखी रामादि सुखी हो जायेंगे। दुःखियों के दुःखों को मिटाना, जो राजधर्म है, उसका पालन होगा- इसप्रकार सीता को लौटाने में लाभ ही लाभ हैं।

विभीषण की उपदेशी बात से रावण को बहुत गुस्सा आया, उसने उसे मारने के लिए शक्ति फेंकी, लक्ष्मण पास ही खड़े थे, उन्होंने वह शक्ति अपने सीने पर झेली, जिससे वे बेहोश होकर धरती पर गिरे। शक्ति से घायल लक्ष्मण शीघ्र मरेगा, मैंने दो में से एक शत्रु को मार दिया है- यह सोच रावण खुशी से लौट गया।

घायल एवं बेहोश लक्ष्मण को लाया गया। सभी के चेहरे पे उदासी, मन में दुःख, हृदय में आशंका थी कि लक्ष्मण का क्या होगा? क्योंकि सूर्योदय से पूर्व लक्ष्मण को लगी दिव्य शक्ति को हटाया नहीं गया तो लक्ष्मण जीवित नहीं रह पायेंगे। इसलिए सूर्योदय से पूर्व शक्ति को लक्ष्मण के शरीर से हटाना जरूरी है। और कोई उपाय सूझ नहीं रहा। उस शक्ति को दूर करने का उपाय कोई भी नहीं जानता था। लक्ष्मण को छू भी नहीं सकते थे, क्योंकि छूनेवाला भी मर सकता है।

क्या करें? क्या नहीं करें? - इसी विचार में सभी डूबे थे। तभी एक अपरिचित व्यक्ति ने जिसमें लक्ष्मण- राम आदि विशेष व्यक्ति थे, उस तंबू में प्रवेश करना चाहा था, उसे डेरे के दरवाजे पर पहरा दे रहे भामण्डल ने रोका और पूछा- तुम कौन हो? किसके आदमी हो? कहाँ से आये हो? यहाँ भीतर क्यों जाना चाहते हो?

इन प्रश्नों के उत्तर में उस आदमी ने कहा-

मेरे पिता का नाम चन्द्रमण्डल है, माँ का नाम सुप्रभा है, मेरा नाम चंद्रप्रतिम है। देवगीतपुर का रहने वाला हूँ। राम की महिमा सुनकर उनके दर्शन के लिए आया हूँ। यहाँ आए हुए मुझे एक महिना बीत गया है, परंतु राम के दर्शन का अवसर नहीं मिला। आज सही व आवश्यक समय जानकर घृष्टता करते हुए भी राम के पास जाना चाहता हूँ, क्योंकि लक्ष्मण की शक्ति दूर करने का उपाय मैं जानता हूँ। आप मुझे भीतर जाने दीजिए, नहीं तो अनर्थ हो जायेगा? लक्ष्मण को जीवित देखना चाहते हो तो भीतर जाने की आज्ञा दीजिए।

भामण्डल द्वार पर किसी अन्य व्यक्ति को बिठाकर स्वयं उसे राम के पास ले गया।

चन्द्रप्रतिम ने राम को नमस्कार कर कहा- हे राम! एक

बार मैं आकाश में विचरण कर रहा था। तभी वहीं पास से मेरा शत्रु राजा निकला। उस राजा से पहले कभी एक सुंदरी के कारण से मेरी शत्रुता हुई थी। जब उसने मुझे देखा तो देखते ही गुस्से में उसने मुझ पर शस्त्रों से वार कर दिये, मैंने भी अपने बचाव में शस्त्र चलाए।

हम दोनों में घनघोर, भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध बहुत देर तक चला। उसने गुस्से में मुझ पर चण्डरवा नामक शक्ति फेंकी। उस शक्ति से मैं घायल होकर बेहोशी की हालत में अयोध्या के पास स्थित महेन्द्र उद्यान में गिरा। मेरे पुण्योदय से ही जहाँ मैं गिरा, उसके पास ही भरत घूम रहे थे। उन्होंने मुझे धरती पर गिरते हुए देखा। वे मेरे पास आए, अपने महल से दिव्य सुगंधित जल लाकर मुझ पर छिड़का। उससे मेरे शरीर से शक्ति निकल गई। शक्ति के निकलने के बाद ऐसा लगा, मानो कुछ हुआ ही नहीं हो।

स्वस्थ होने के बाद मैंने भरत से पूछा- हे देव, आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। मुझे नया जीवन दिया है। आप कौन हैं? यह दवाई क्या है? आपको इस दवाई के बारे में कैसे पता है?

तब भरत ने इसप्रकार बताया-

मैं दशरथ राजा का पुत्र, इस राज्य का स्वामी भरत हूँ। एक बार हमारा देश महारोगों से पीड़ित हो गया था। राज्य के सभी लोग उरोघात, महादाहज्वर, लालापरिस्राव, सर्वशूल,अरूचि, छर्दि, श्वयथु, स्फोटक आदि रोगों से घिर गए थे। एक भी व्यक्ति रोग की चपेट से नहीं बचा था। केवल हमारे अधीनस्थ द्रोणमेघ नाम के राजा, उनके मंत्रीगण, बन्धु, पशु आदि सहित पूरे देशवासी नीरोग बचे थे। वे हमारे मामा थे, जब मुझे इस बात का पता चला, तब मैंने उन्हें बुलाकर पूछा-

हे मामा! आप लोग कैसे नीरोग बचे हो? उसी उपाय से

हमें भी नीरोग कर दीजिए। तब उन्होंने दिव्य, सुगन्धित जल लाकर मुझ पर, परिवार पर, देशवासियों पर छिड़का। जिससे हम सब रोग-रहित हो गए। वही जल लाकर मैंने घर पर रखा है, उसमें से कुछ आप पर छिड़क दिया, जिससे आपकी चण्डरवा शक्ति निकल गई। आप नीरोग हो गए हो।

मैंने अपने मामा से उस जल के बार में बार-बार पूछा, तब उन्होंने उसके बारे में इसप्रकार बताया था-

हे भानजे, भरत! आप आग्रह कर रहे हो तो सुनिए-

मेरी सर्वगुणों से सम्पन्न, दयावती, धार्मिक स्वभाववाली, ज्ञान- विज्ञान कलाओं में निपुण, विद्याओं से सम्पन्न **विशल्या** नाम की श्रेष्ठ पुत्री है। उसके गर्भ में आने से पूर्व हमारी पटरानी कईं रोगो से पीड़ित रहती थी। उसके गर्भ में आते ही हमारी पटरानी के सभी रोग बिना उपाय के आश्चर्य की तरह नष्ट हो गए। हम सब आश्चर्य में पड़ गए, यह अचानक कैसे हुआ? उसी दिन से पटरानी दया, दान,पूजा में विशेष रूचि लेकर समय बिताने लगी, हम सबने भी उसकी इच्छाओं का पूरा ध्यान रखा।

शुभमुहूर्त में पटरानी ने एक सर्वाङ्गिण सुन्दर कन्या को जन्म दिया। वह मनोहारिणी हम सब की प्रिय है। धीरे-धीरे उसने अपने गुणों से हम सब को अपनी ओर आकर्षित किया। उसकी चेष्टाएं हमारे लिए आनन्ददायी थीं, अब भी हैं। **जन्म से ही उसके शरीर से सुगन्ध निकलती है, इसलिए हम उसे सुगन्धा भी कहते हैं।**

वह सदा धर्मकार्य में ही अपने आपको व्यस्त रखती है। धर्मात्माओं की सेवा-पूजा करती है। वह सदा दया, दान, ध्यान, भक्ति में ही लीन रहती है। हम सबके लिए पूज्य है, आदरणीय है, सम्माननीय है।

उसके स्नान के जल से, उसके शरीर को छूकर आनेवाली हवा से और उसके हाथ से चंदनादि को लेप करने से बड़े-बड़े रोग

दूर होते हैं। वह जब गर्भ में आई तभी से हमें अंदाजा था कि वह महापुण्यशालिनी है, उसके जन्म के बाद उसकी हवा से, स्नान के जल से या उसके द्वारा छुए हुए लेप से रोग ठीक होते हैं। इस तरह के अतिशयवाले पुण्य के उदय का हमें आभास भी हो गया।

मामा द्रोण के द्वारा ऐसा बताये जाने पर हम लोगों ने विशल्या के पास जाकर उसका बहुत सम्मान किया। जब हम उसका सम्मान करके अयोध्या की ओर लौट रहे थे, तब रास्ते में पुण्ययोग से हमें **सत्वहित नाम के आचार्य** के दर्शन हुए। मैंने विशल्या के बारे में नम्रता के साथ उनसे पूछा कि विशल्या कौन थी? उसके शरीर से दिव्य सुगंध किस कारण से आती है?

उन चार ज्ञान के धारी **सत्वहित नाम के आचार्य ने विशल्या के दिव्य चरित्र के बारे में जो बताया, वह इसप्रकार है-**

विदेह क्षेत्र में पुण्डरीक नाम का देश है। उस देश के चक्रधर नाम के नगर में **त्रिभुवनानन्द** नाम का चक्रवर्ती रहता था। उसके बाईस हजार पुत्र थे तथा अनंगशरा नाम की एक कन्या थी। जो अपूर्व सुंदरी थी, गुणों से अलंकृत थी।

त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती का एक पुनर्वसु नाम का सामन्त था, वह प्रतिष्ठापुर नगर का स्वामी था। एक बार वह किसी काम से जा रहा था, तब उसे बगीचे में खेलती हुई अनंगशरा दिखाई दी। उसे देखते ही वह कामवासना से घायल हो गया। उसने तुरंत उस खेलती हुई अनंगशरा का अपहरण किया। ज्यों हि उसने उसका अपहरण किया, त्योंहि वह उसके अभिप्राय को समझ गई। उसने जोर-जोर से रोना, पिताजी, भाइयों को सहायता के लिए पुकारना शुरू कर दिया। वह रोते हुए कहने लगी-

हे पिताजी, मुझे बचाइए। यह दुष्ट मुझे जबरदस्ती पकड़कर ले जा रहा है। हे भाइयों, मुझे इस पिशाच के चंगुल से छुड़ाइए। यह नराधम, नीच, पापी पंजे में निरीह प्राणी को पकड़े हुए बाज

की तरह ले जा रहा है, रक्षा करो, रक्षा करो।

उसकी आवाज सुनकर वहाँ के सैनिक उसके पीछे दौड़े। बाद में तुरंत ही और सैनिकों और चक्रवर्ती ने पुत्रों के साथ उसका पीछा किया।

पीछा करते हुए सैनिकों और चक्रवर्ती, चक्रवर्ती पुत्रों को देखकर वह ड़र गया, अनंगशरा को **श्वापद** नाम के घने महावन में छोड़ कर अपने प्राण बचाने के लिए विमान पर चढ़कर तेज गति से भाग गया। विमान तेज गतिवाला होने से पुनर्वसु पकड़ में नहीं आया। न हि उस पर किसी ने विशेष जोर दिया। सबको अनंगशरा की चिंता थी। सब ने उस महावन में उसे बहुत खोजा, परंतु वह किसी को भी नहीं दिखी। उसे कोई जंगली जानवर खा गया होगा, यह सोचकर सब दुःखी मन से लौट आये। **देखो, पाप का उदय- पाप के कारण से जंगल में होते हुए भी वह दिखाई नहीं दी। पाप के उदय में सामने रखी वस्तु दिखाई नहीं देती, पुण्य के उदय से अदृश्य वस्तु प्रकट हो जाती है।**

श्वापद नाम का महावन बहुत बड़ा, बहुत घना था, दिन में भी वहाँ अंधेरा रहता था, रात की तो बात ही क्या करें? उसमें बड़े-बड़े पर्वत, बड़ी-बड़ी गुफाएं असंख्य क्रूर जानवर थे। महावन की जमीन उबड़- खाबड़ थी। सैंकड़ों गहरे तालाबोंवाला वह महावन विचार करते ही भय उत्पन्न करनेवाला था। वहाँ रहने की कोई सोच भी नहीं सकता था, इसलिए वहाँ कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता था। उसमें कोई उत्सर्गमार्गी मुनिराज के ही कभी कभार दर्शन हो सकते थे।

उस महाभयानक महावन में अपने- आप को देख कर अनंगशरा सोचने लगी कि कहीं मैं नरक में तो नहीं जन्मी? या कोई बहुत बड़ा स्वप्न है? वह तय नहीं कर पा रही थी, वह कहाँ है? वह जंगल की भयानकता देखकर सिहर उठी।

क्या मैं वही चक्रवर्ती की बेटी हूँ या कोई और हूँ? यह भयानक स्थान कहाँ है? क्या है? मेरे पाप का उदय कब समाप्त होगा? मैं इस संकट से कैसे उबरूँगी? इसप्रकार और भी अनेक दुःखद शब्दों का उच्चारण करती हुई वह बहुत समय तक रोई। उसका विलाप इतना करूण था कि क्रूर पशुओं का मन भी पिघला था।

वह उस महावन में भूख-प्यास से पीड़ित रहती थी, उसका प्रतिदिन रो-रोकर गुजरता था। वह शोक सागर में डूबी रहती थी। जंगल के फल और पत्तों का भोजन करती थी। वह प्रातः उठते ही पंच परमेष्ठी को याद करती, उनकी भक्ति करती थी। उसका शरीर कांतिहीन, कमजोर हो गया था। शरीर पर वही कपड़े थे, जो घर पहने थे। वे कपड़े गंदे हो गए थे। शीतकाल को शरीर सिकोड़ कर बिताती, ग्रीष्मकाल को पेड़ों की छाया में और वर्षाकाल में पेड़ या गुफा का आश्रय लेकर बिताती थी। उसने पापकर्म का फल कईं दिनों तक भोगा।

उसका शरीर पानी से भीगे चित्र के समान फीका हो गया था। पिता और भाई को याद कर करके रोने से उसकी आँखे सूज गई थीं। बाहर निकलने के लिए रोज दूर तक प्रयत्न करती थी, पर अन्त में भटक कर उसी जगह पर ठहर जाती थी। उसका शरीर लावण्य से रहित, दुबला हो गया था। वह इतनी दुबली-पतली हो गई थी कि उसके अपने भी उसे बड़ी मुश्किल से पहिचान पायें। वह इतनी धार्मिक हो गई थी कि हर कदम धरती देख कर रखती थी, पककर अपने आप धरती पर गिरे हुए फल खाती थी। वह बाला जब तब कभी केवल पानी से ही पारणा करती थी, वह पानी भी एक बार ही लेती थी। जिससे वह बहुत ही कृश हो गयी थी।

जो अनंगशरा अपने बालों से गिर पड़े फूल चुभने से भी परेशान हो जाती थी, आज वह पथरिली धरती पर सोती थी। संगीत के मधुर स्वरों से जगनेवाली वह आज गीदड़ों की कर्कश ध्वनि से जागती थी। उसके शरीर के कपड़े चिथड़ों में तब्दील हो गए थे। जैसे तैसे शरीर को ढ़के हुए थी।

अनंगशरा के दुःखों का वर्णन शब्दों से सभंव नहीं है। उन दुखों को भोगनेवाली वही जानती थी या सर्वज्ञ परमात्मा ही जानते थे।

इन महादुःखों को भोगते- भोगते उसने **तीन हजार वर्ष** तक बाह्य तप किये।

जब वह जीवन की ओर से सब प्रकार से निराशता को प्राप्त हो गई। जब जीवन की ड़ोर के टूटने की उसे आशंका हो गई थी, तब उसने चार प्रकार के आहार को त्याग कर सल्लेखना ग्रहण की। जब वह छोटी थी, तब विद्वानों के साथ चर्चा करते हुए पिताजी के मुख से उसने सल्लेखना के विषय में सुना था, उसी के आधार पर उसने शास्त्रोक्त विधान से सल्लेखना ग्रहण की थी। उसने यह भी नियम ग्रहण किया था कि ''मैं सौ हाथ से आगे की भूमि पर कदम नहीं रखूँगी, उससे आगे नहीं जाऊँगी।''

उसे सल्लेखना व्रत के लिए छह दिन बीत गए, तब सातवें दिन चक्रधर नगर का रहनेवाला एक **लब्धिदास** नाम का व्यापारी मेरू की वंदना कर उसी जंगल के रास्ते से लौट रहा था। उस **लब्धिदास** व्यापारी ने उसे आंख बंद किए हुए ध्यान-मग्न देखा। उसने उसके दर्शन किए। उसने उसे उसका परिचय पूछा। उस धर्मानुरागिनी हृदया ने अपना सारा परिचय बता दिया।

व्यापारी ने उसे कहा-

बेटी, मैं आपके पिता को अच्छी तरह जानता हूँ। मैं भी चक्रपुर का निवासी एक व्यापारी हूँ, धर्मभावनावाला हूँ। सुमेरू

पर्वत पर विद्यमान अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों के दर्शन के लिए गया था, वहीं से लौटकर चक्रपुर ही जा रहा हूँ। आप मेरी बेटी के समान हो, आप मुझ पर विश्वास कर मेरे साथ चलो, मैं सकुशल आपके पिता के पास शीघ्र ही पहुँचा दूँगा।

तब उसने कहा-

हे धर्म-पिता, शायद अब मेरे नसीब में पिता के दर्शन नहीं हैं। लब्धिदास सेठ ने कहा- बेटी, ऐसा क्यों कह रही हो? अभी पहुँचाता हूँ।

अनंगशरा बोली - हे धर्म पिताजी, मैंने सल्लेखनाव्रत लिया है और सौ गज से आगे नहीं जाने का भी नियम लिया है। **ये नियम व्रत ही जीव का उद्धार करते हैं। एक नियम भी जीव को दुर्गति से तारता है। ये नियम- व्रत ही अनादि के दुःखों का अंत करनेवाले हैं।** पिताजी के समागम से दुःख नष्ट नहीं होंगे। **संसारी जीव के जीवन में पुण्य-पाप विचित्रताएं उत्पन्न करते हैं।** मुझे ही देखिए दुःखों के तीन हजार वर्ष बीत जाने पर पुण्योदय से आप जैसे धर्मात्मा महापुरूष के दर्शन हुए हैं।

सेठ- बेटी, निराश मत हो, मैं अभी शीघ्रता से जाता हूँ और आपके पिताजी को यह सुखद समाचार सुनाता हूँ।

अनंगशरा- आप को जैसा उचित लगे, वैसा कीजिए। हमें संसार से विरक्ति और पंचपरमेष्ठी में भक्ति उत्पन्न हुई है।

लब्धिदास बिना देरी किए चक्रपुर में त्रिभुवनानंद चक्रवर्ती के पास आया। सारे समाचार चक्रवर्ती को सुनाये। चक्रवर्ती भी उसी हालत में तुरंत लब्धिदास को साथ ले उस जगह आया, जहाँ अनंगशरा थी। उसके पीछे-पीछे उसके **बाईस हजार पुत्र**, मंत्री और प्रजाजन भी आये थे।

जब तक चक्रवर्ती आदि अनंगशरा के पास पहुँचे, तब तक एक अजगर ने उसे निगलना शुरू कर दिया था। अजगर को

काटने के लिए चक्रवर्ती ने तलवार निकाली। वे ज्यों ही अजगर पर वार करनेवाले थे, त्यों ही अनंगशरा ने कहा-

हे दयालु पिताजी, पुत्री के मोह में पड़ कर इस निरपराध जीव की हिंसा मत कीजिए। यह पशु अनजान है। पेट भरने के लिए मुझे भोजन बना रहा है। **शरीर तो नश्वर है। समय पर नष्ट होता है। उसे रोकने के लिए तीर्थंकर परमात्मा भी समर्थ नहीं हैं।** इस शरीर का अंत आ चुका है। **शरीर के मोह के लिए धर्म का अंत क्यों करें? नष्ट होते इस शरीर से धर्म का सेवन करें; इसी में बुद्धिमानी है।** मैंने इस अजगर को अभयदान दिया है, आप से हाथ जोड़कर निवेदन है कि आप भी इसे अभयदान दीजिए। इसे मारकर भी मैं आपसे मिल नहीं पाऊंगी, क्योंकि मैंने सल्लेखना ले रखी है।

चक्रवर्ती- बेटी, अजगर के नहीं रहने पर आपकी सल्लेखना तो शांति से हो सकेगी। **अनंगशरा-** पिताजी, **शरीर से मोह रहे तो सल्लेखना शांति से नहीं हो सकती।** सो तो इससे मेरा मोह रहा नहीं। इसलिए यह मुझे खा रहा है, फिर भी परिणामों में अशांति नहीं है। शरीर छोड़ते हुए मैं आपको भी हिंसा के कार्य करने नहीं दूंगी। आपको दुर्गति के कार्य से रोकना चाहूँगी। पिताजी, आप इसे क्षमा कर दीजिए।

बेटी के उद्‌गारों से चक्रवर्ती ने निरूत्तर हो, उठी हुई तलवार धरती पर पटक कर रूंधे कंठ से उसने बेटी से कहा-

बेटी, **बेटी हो तो आप जैसी हो। खुद भी तरे, पिता आदि को भी तारे।** बेटी मैं मोही हूँ, आपकी दशा को देख कर मेरा रोम रोम रो रहा है।

अनंगशरा- पिताजी, मत रोइए, **रोना, शोक, दुःख, मातम असाता वेदनीय के बंध के कारण हैं-** ऐसा आप शास्त्रों से पढ़कर सुनाते थे। अब इससमय आप असाता वेदनीय के बंध के कारणों

में फँस रहे हो, ऐसा मत कीजिए। शांत होइए, शांति से मेरी सल्लेखना का अनुमोदन कीजिए।

चक्रवर्ती- हे बेटी, सांप से निगलती हुई बेटी को देख मोही पिता कैसे शांति पाये? निर्मोही के लिए ही यह संभव है। पर तुम्हारे जैसी धर्मात्मा बेटी की अंतिम भावना को नहीं बिगाडूंगा। मैं इसे क्षमा करता हूँ, आपके धर्मकार्य की अनुमोदना करता हूँ।

अजगर को क्षमादान कराकर अनंगशरा ने पंचमेष्ठी के ध्यान में ज्यों ही आंखे मूंद लीं। त्यों हि अजगर से निगली जाती हुई अनंगशरा को इस दुःखद प्रसंग में देख सबकी आंखों से अश्रुधाराएं लगातार बहने लगीं। वहाँ एक भी आँख ऐसी नहीं थी, जिसमें आंसू न हों।

सभी रोते हुए दुःखी मन से एक दूसरे से कह रहे थे- कि **हमने अपने जीवन में सल्लेखना का ऐसा दृश्य पहली बार देखा है।** इस तरह की सल्लेखनाधारी की ऐसी दशा कभी हुई हो, ऐसा कभी सुना भी नहीं।

कितना हृदयविदारक दृश्य है, चित्त के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। ज्यों-ज्यों इंच-इंच कर अनंगशरा अजगर के मुँह में जा रही है, हमारा दिल ही बैठा जा रहा है। कर्म ने ऐसा हृदय-विदारक दृश्य दिखाया ही क्यों? काश, हम अन्धे होतें!

अरे, हम लोगों की ऐसी हालत हो रही है, सोचो, बेचारे चक्रवर्ती और उनके बेटों के क्या हाल हो रहे होंगे? उनके हाल तो पूछो ही मत। वे कईं बार बेहोश हो गए हैं, होश में आने पर वही दृश्य देख पुनः बहोश हो जाते हैं।

ज्यों- ज्यों अनंगशरा अजगर रूपी काल के मुँह में जा रही थी, त्यों- त्यों महिलाएं पछाड़ खा-खाकर जोर-जोर से रोने लगतीं। सभी णमोकार मंत्र का पाठ करने लगे थे।

लोगों की अश्रुवर्षा, करूण क्रन्दन के बीच अजगर ने उस

धर्मात्मा अनंगशरा को निगल लिया।

अजगर के द्वारा अनंगशरा को निगलते हुए देख सभी ने संसार की विचित्रता, भयानकता देखी, यह भी समझा कि कर्म कभी भी उदय में आकर दुःख दे सकता है, इसलिए पाप से दूर रहने की मन ही मन प्रतिज्ञा कर चुके थे। ज्यादातर लोगों को संसार से वैराग्य, वितृष्णा हो चुकी थी।

महावैराग्य से भरे त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती, उसके बाईस हजार पुत्र एवं लब्धिदास आदि अनेक प्रजाजनों ने दीक्षाएं लीं।

अनंगशरा देह छोड़कर ईशान स्वर्ग में गई। पुनर्वसु विद्याधर बरसों बाद लौटकर उसी जंगल में आया। उसने अनंगशरा को खोजा, पर वह नहीं मिली, तब उसे भी वैराग्य हुआ। उसने **द्रुमसेन मुनि** के पास दीक्षा ली। कठोर तपश्चरण कर स्वर्ग गया। स्वर्ग से आकर लक्ष्मण बना।

अनंगशरा स्वर्ग से आकर द्रोणमेघ राजा की विशल्या नाम की पुत्री बनी। पूर्व पुण्य के उदय से उसके शरीर से सुगंध आती है तथा उसके शरीर की हवा से अनेक रोग ठीक होते हैं, उसके स्नानजल को छिड़कने से भी अनेक रोग ठीक होते हैं।

भरत ने सत्त्वहित मुनि से पूछा कि किस कारण से हम सब बीमार हुए थे। तब सत्वहित मुनि ने बताया कि-

विन्ध्या नाम का एक व्यापारी ऊंट, घोड़े, भैंसे आदि लेकर अयोध्या आया था। वह अयोध्या में व्यापार के लिए ग्यारह माह तक रहा। उसका एक भैंसा नगर के बीच में बीमार होकर गिर पड़ा। लोग उसके सिर पर पैर रखकर जाते थे, कोई उस पर पत्थर फेंकता, कोई लात मारकर निकल जाता, कोई उसकी पूंछ मरोड़ कर निकल जाता- लोग उसे कई तरह से परेशान करते थे, वह अकाम निर्जरा करते हुए मरा, जिससे वह **वाय्वावर्त नाम का वायुकुमार जाति का देव बना।** उसने अवधिज्ञान से अपने मरण का

कारण जाना, तब उसे बहुत गुस्सा आया। गुस्से में उसने अयोध्या आकर ऐसी विषभरी हवा चलाई जिससे सभी लोग बीमारियों से घिर गए। आपने पुण्यात्मा विशल्या के स्नानजल को सब पर छिड़का तब उस पवित्रात्मा के सुगंधित जल के सामने उसकी एक न चली, वह देव चला गया। **विशल्या का पुण्य उस देव से विशेष था,** इसलिए वह वहाँ से चला गया, आप सब रोग रहित हो गये।

चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से कहता है कि यह कथा **सत्त्वहित मुनि ने राजा भरत से जिसप्रकार कही, भरत ने जिसप्रकार मुझसे कही, मैंने उसीप्रकार आप से कही है।** अब देरी किए बिना विशल्या का स्नानजल लाइए और लक्ष्मण को ठीक कीजिए।

चन्द्रप्रतिम के शब्दों से प्रसन्न राम ने औरों से सलाह कर हनुमान, भामण्डल, अंगद को अयोध्या भेजा। जब हनुमान आदि अयोध्या पहुँचे, तब भरत सो रहे थे। उन्हें जगाने के लिए भामण्डल ने संगीत प्रारंभ कर दिया। संगीत से भरत जब जाग गए। तब हनुमान आदि ने उन्हें सीताहरण आदि घटनाएं सुनाईं। भरत को रावण के प्रति क्रोध उबल पड़ा। क्रोध में युद्ध का नगाड़ा बजवाया। अयोध्यावासी घबड़ा गए। घबड़ा कर भरत के महल की तरफ भागे। भरत स्वयं युद्ध में राम की सहायता के लिए जाने के लिए तैयार हो गए, परंतु भामण्डल ने उन्हें यह कहकर मना किया कि यहाँ से लंका बहुत दूर है, बीच में लवण सागर है, जिसे आप पार नहीं कर पायेंगे। आप हमें लक्ष्मण की शक्ति को दूर करने के लिए विशल्या का स्नानजल लाकर दीजिए।

भरत ने कहा- विशल्या का स्नानजल क्या ले जाना? आप विशल्या को ही ले जाइए। **मुनिराज ने पूर्व में बताया था कि यह चक्रवर्ती लक्ष्मण की पटरानी होगी।** उसे लाने के लिए दूत के साथ अन्य सम्मानित व्यक्तियों को भेजता हूँ। यह सोचकर भरत ने दूत एवं कुछ सम्माननीय व्यक्तियों को विशल्या को लाने के

लिए राजा द्रोणमेघ के पास भेजा।

जब दूत ने भरत के समाचार एवं आदेश को राजा द्रोणमेघ को सुनाया। तब द्रोणमेघ विशल्या को विवाह से पूर्व लक्ष्मण के पास भेजने के लिए तैयार नहीं हुए। उन्होंने विशल्या को भेजने से मना कर दिया।

तब उस चतुर दूत ने कहा- हे महाराज, लड़की के पिता होने के नाते आपकी बात उचित है। सही है। योग्य है। परंतु परिस्थिति भी तो देखिए। यदि विशल्या नहीं जायेगी तो लक्ष्मण सुबह निर्जीव हो जायेंगे ।

राजा द्रोणमेघ ने कहा- विशल्या के गंधोदक से भी शक्ति दूर हो जायेगी। गंधोदक ले जाइए।

दूत ने कहा- रावण के द्वारा देवरक्षित शक्ति है, शायद गंधोदक से दूर न हो पाये।

राजा- बड़ी-बड़ी महामारियाँ दूर हो सकती हैं, तब वह शक्ति दूर क्यों नहीं हो जायेगी?

दूत- अवधिज्ञानी मुनिराज से पहले सुना था कि विशल्या का विवाह लक्ष्मण के साथ ही होगा और वह नारायण लक्ष्मण की सोलह हजार रानियों में पटरानी बनेगी।

इसी बीच में गुस्से में आकर द्रोणमेघ के पुत्र बोले- अरे वाचाल दूत! राजन् जितना कह रहे हैं, उतना ही कर। रही बात विशल्या के विवाह की तो हम बड़े ठाठ-बाट से धूमधाम से विवाह कर अनेक राजाओं व प्रजा की उपस्थिति में उसे बिदा करेंगे। ऐसे अंधेरे में बिदा नहीं करेंगे। उसी में हमारी प्रतिष्ठा है। यदि राजा भरत उसे ले जाने की जिद करेंगे, तो हम भी क्षत्रिय हैं, युद्ध के लिए तैयार हैं, पर विशल्या को इस तरह से अंधेरे में नहीं भेजेंगे।

दूत आदि यह संदेश लेकर निराश होकर अयोध्या लौट आये। यह समाचार चारों ओर फैल गया। सभी आक्रोश से भरे

थे। युद्ध के लिए तैयार हो गए। युद्ध रात में संभव नहीं है, सुबह तक लक्ष्मण का इलाज नहीं हो पाया तो लक्ष्मण निर्जीव हो जायेंगे। यह सोच कैकयी ने स्वयं भरत के पास जाकर कहा- मैं अपने भाई द्रोणमेघ को समझाऊंगी, वह मेरी बात नहीं टालेगा। मुझे द्रोणमेघ के पास ले चलो।

भामण्डल, हनुमान, अंगद आदि कैकयी को लेकर तुरंत ही द्रोणमेघ के पास पहुँचे।

कैकयी ने द्रोणमेघ से कहा-

भैय्या, विशल्या को लक्ष्मण के पास भेज दो।

द्रोणमेघ- बहन, मुनिवाणी के अनुसार यह विशल्या लक्ष्मण जी की ही रानी है, परंतु हमारा कहना इतना- सा ही है कि हम उसे सम्मान के साथ विदा करेंगे। ऐसे अंधेरे में नहीं। लोग क्या कहेंगे?

कैकयी- भैय्या, लोगों की चिंता तो ठीक बात है, पर परिस्थितियाँ भी देखी जाती हैं। परिस्थिति देखकर कोई दोष नहीं देता। आप ही सोचो- जिससे इसका विवाह होना है, वही इस समय जीवन-मरण के झूले में झूल रहा है, उसी के जीवन के विषय में शंका है। वही नहीं रहेगा तो इसका किससे विवाह कराओगे? मन से विशल्या भी लक्ष्मण को पति मान चुकी है। उसका मन भी इस समाचार से बेचैन होगा, आप क्यों जिद कर रहे हो? उसे भेज दीजिए। यदि आपको कोई संशय हो तो मैं उसके साथ जाऊँ?

द्रोणमेघ- नहीं बहन, अविश्वास की कोई बात नहीं है। तुम्हारा कुल चक्रवर्ती का कुल है। उन पर अविश्वास का प्रश्न ही नहीं है। पर---------।

कैकयी- पर----- परंतु----- किंतु------ सब छोड़ दीजिए। मेरा विश्वास कर मेरे कहने से विशल्या को भेज दीजिए।

द्रोणमेघ- ठीक है बहना, जिसे कल भेजना है, उसे आज ही ले जाइए।

कैकयी- भैय्या, आपको बहुत-बहुत धन्यवाद, जो आपने मेरा मान रखा।

इसके बाद सौ दासियों के साथ विशल्या को विमान पर बिठाकर भामण्डल, हनुमान, अंगद आदि लंका की ओर शीघ्र ही गए और वहाँ से वे लंका में रामसेना के शिविर में शीघ्र ही पहुँच गए। राम की निगाहें भी उसी ओर लगी थीं, उनके आने के समाचार से राम प्रसन्न हुए।

विशल्या के विमान से उतरते ही अनेक राजाओं ने उसकी अगवानी की। उपहार आदि देकर उसका स्वागत एवं सम्मान किया। वह ज्यों ही विमान से उतरी, त्यों ही लक्ष्मण के शरीर में हलचल शुरू हो गई। ज्यों- ज्यों वह लक्ष्मण की ओर आती गई, त्यों-त्यों उनको होश आन शुरू हुआ। विशल्या के शिविर में आते ही, लक्ष्मण को होश आ गया था। विशल्या ने आते ही सबसे पहले राम को नमस्कार किया, फिर यथाक्रम से सभी को नमस्कार किया। बाद में राम की अनुमति से लक्ष्मण के शरीर पर अपने हाथों से लेप किया। लेप करना प्रारंभ करते ही शक्ति लक्ष्मण के शरीर से निकल कर जाने लगी। हनुमान ने उस शक्ति को उछलकर पकड़ लिया। जब हनुमान ने उस शक्ति को पकड़ा, तब वह गिड़गिड़ाकर कहने लगी-

हे देव, हमें छोड़ दीजिए। हम पराधीन हैं। हम हीन पुण्यवाली देवियाँ परधीन होती हैं। हम मंत्रों के आधीन होती हैं। जो मंत्रों को सिद्ध करता है, हम उसके आधीन हो जाती हैं। या हमारे स्वामी देवता हमें जिसे सौंपते हैं, हम उसके आधीन हो जाती हैं। हम स्वयं चलाकर किसी को परेशान नहीं करती हैं।

हमने लक्ष्मण को अपनी ओर से परेशान नहीं किया। उस समय मैं रावण के आधीन थी। उसने मुझे चलाया और मैं लक्ष्मण के शरीर में घुस गई। इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। छोड़ दीजिए।

हनुमान- आप रावण के पास कैसे आई?

शक्ति- मैं प्रज्ञप्ति की बहन अमोघविजया हूँ। एक बार रावण रत्नावली राजकुमारी से विवाह करने के लिए मंदोदरी आदि के साथ जा रहा था। अचानक उसका विमान अटका। जब उसने नीचे देखा, तब उसे वहाँ बालि मुनि दिखाई दिए। उसने सोचा-

बालि, राजा होते हुए तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सका। अब मुनि बनकर शक्ति अर्जित कर इसने मेरा विमान रूकवाया है। इसे अभी मजा चखाता हूँ- ऐसा सोच दुर्बुद्धि से उसने विमान नीचे उतारा। विद्या के बल से पर्वत को उठा रहा था। बालि मुनिराज ने सोचा- इस पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा स्थापित रत्नमयी अनेक जिन-बिम्ब हैं, अनेक विशाल जिनालय हैं, पशु- पक्षियों के स्थायी निवास हैं। रावण के द्वारा उठाने से पर्वत हिल जायेगा, जिससे जिनालय, जिनबिम्ब, पशु-पक्षियों के आश्रय-स्थानों को नुकसान पहुंचेगा, इसलिए इसे रोकना चाहिए, यह सोच उन्होंने दाहिने पैर के अंगूठे से पर्वत को धीरे से दबाया। बालि मुनिवर को कायबल ऋद्धि प्राप्त थी। इसलिए उनके द्वारा धीरे से दबाते ही रावण दबने लगा। भले ही वह वज्र- वृषभ- नाराच संहनन का धारी था, पर उसकी ताकत कायबल ऋद्धि के धारक बालि मुनि की शक्ति के सामने कुछ भी नहीं थी। **वह परेशान होकर रोने लगा। तब से देवताओं ने उसका नाम रावण रखा। उससे पूर्व वह दशानन कहलाता था।** उसकी रोने की आवाज सुनकर मंदोदरी भागकर आयी। उसे रावण की अनुचित चेष्टा समझते देर नहीं लगी, वह तुरंत ही मुनिराज के चरणों पर गिरकर माफी मांगने

लगी। आशुतोष, दयालु मुनिराज बालि ने अपना दबा हुआ अंगूठा वापिस हटा लिया। रावण को अपनी गलती और शक्ति का एहसास हो गया था। उसने भी मुनिराज के चरण पकड़ लिए, नमस्कार कर अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी। क्षमा मांगकर मुनिराज की तन्मयता, एकाग्रता के साथ भक्ति प्रारंभ की। भक्ति करते समय उसकी वीणा का तार टूट गया था, उसने हाथ की नस काटकर वीणा का तार बांधकर भक्ति निरंतर जारी रखी। उसके भक्तिभाव से धरणेन्द्र ने आकर रावण के भक्तिभावना की प्रशंसा कर मुझे रावण को सौंप दिया था। रावण ने मुझे लेने से मना कर दिया था। परंतु धरणेन्द्र ने विशेष आग्रह कर रावण को सौंप दिया। मैं देवों को भी पराजित करने की सामर्थ्य रखती हूँ।

हनुमान- हे अमोघ विजया! तुम इतनी ही शक्तिशाली हो तो विशल्या के आते क्यों भागी जा रही हो?

अमोघ विजया- हे देव! विशल्या के आते ही भागने के पीछे कारण यह है कि **भागना, नहीं भागना; छोटा या बड़ा होना ये सब पुण्य पाप की लीलाएं हैं।** विशल्या ने पूर्वभव में जब वह अनंगशरा थी, तब इसने ऐसा कठोर तप किया था, जो प्रायः मुनियों के लिए भी असंभव, अशक्य था। उसके द्वारा संचित पुण्य के सामने हमारा पुण्य कुछ भी नहीं है। हमारी शक्ति उसके पुण्य के सामने इतनी कम है कि उसकी हवा से ही हम जैसे हीन पुण्यवाले भाग जाते हैं।

हे देव, मुझे इतने से कार्य से ही संसार सारभूत लगता है, संसार में भी मनुष्य जीवन सारभूत लगता है कि उस जीवन में विशल्या की तरह कठोर तप किये जाते हैं। तप करने से ही मनुष्य जीवन सफल और सार्थक है, क्योंकि चारों गतियों में मनुष्य गति में ही तपश्चरण संभव है, अन्य गतियों में नहीं। यदि कोई, मनुष्य

जन्म पाकर तपश्चरण का विचार नहीं करता है तो उसका मनुष्य जन्म ही व्यर्थ है। नश्वर, कोमल मानव शरीर से कठोर तप करें तो अविनश्वर सिद्ध पद मिल सकता है, तो क्यों नहीं तप करे? अवश्य करना चाहिए। विशल्या ने पूर्व में जो तप किया था, उसका अन्य स्त्रियाँ तो विचार भी नहीं कर सकती। तेज हवायें, धूप, वर्षाएं बिना अन्न के सिर्फ वन के फल खाकर सहन कीं। कहाँ तो चक्रवर्ती के घर पलने से शरीर की कोमलता और कहाँ जंगल की कठोरता, जहाँ खाने को अन्न नहीं, सोने के बिस्तर नहीं, सिर पर छत नहीं,किसी का सहारा तो दूर किसी आदमी की शकल भी नहीं दिखती थी। ऐसी विकट परिस्थितियों में **धर्म ही एकमात्र सहारा था, तप ही एकमात्र उपाय था।** ऐसी विषम परिस्थितियों में तीन हजार वर्ष तक कठोर तप करके। सात दिन की सल्लेखना में अंतिम दिन अजगर के द्वारा खाये जाने पर भी उसने समताभाव नहीं छोड़ा था। अजगर को अभयदान दिलाकर स्वर्ग गई। वहाँ भी अपना समय धर्मध्यान में बिताया। वहाँ से आकर द्रोणमेघ राजा की विशल्या नाम की पुत्री बनी। अजगर के जहर को साम्यभाव से सहन करने के कारण उसके शरीर में आज ऐसी दिव्यता है कि शरीर से सुगन्ध निकलती है और शरीर की हवा या उसके छुए हुए जल आदि से भी रोग ठीक हो जाते हैं। हे देव, उसके पास आज भी इतना पुण्य है कि वह नारायण लक्ष्मण की पटरानी बनेगी। हे देव, आप जाइए उसके विवाह की तैयारी कीजिए। मुझे भी अपने स्थान पर जाने दीजिए। मेरी दुश्चेष्टा क्षमा कर दीजिए।

विशल्या के वृतान्त से प्रसन्न हुए हनुमान ने अमोघ विजया को छोड़ दिया। विशल्या के वृतान्त से सभी प्रसन्न थे। राम की अनुमति से विशल्या के द्वारा स्पर्शित गोशीर्ष चंदन दासियों के द्वारा इन्द्रजित, कुम्भकर्ण के पास भेजा, जिससे वे भी स्वस्थ हो गए।

लक्ष्मण ने होश में आते ही कहा- कहाँ है रावण?

तब राम ने प्रेम से सारा घटनाक्रम लक्ष्मण को बताया। लक्ष्मण को यह भी बताया कि आपका नया जीवन विशल्या के कारण ही संभव हुआ। इसके हम सब पर बहुत उपकार हैं।

विशल्या नीचे गरदन रख धीरे से बोली- हे श्रेष्ठ, हम उपकार करनेवाले कौन होते हैं? हम तो आपकी सेविका हैं। आप से हर दृष्टि से छोटे हैं। उपकार तो पुण्य ने किया। इसी पुण्य ने आप जैसे महापुरूषों का संयोग कराया है।

इसी बीच राम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण मुनियों की वाणी के अनुसार आपका इसके साथ विवाह कराना है। यही इसके उपकार का आंशिक प्रत्युपकार होगा।

लक्ष्मण ने कहा- ठीक है भैय्या, हम इन्हें अपनी पटरानी घोषित करते हैं।

तब सभी ने कहा- हे देव, शुभस्य शीघ्रम्। शुभ काम में देरी किस बात की? आप नारायण हैं, आपके जीवन के विषय में संशय नहीं है। भले ही युद्ध होता रहे। आप दोनों का विवाह यहीं कर देते हैं। लक्ष्मण ने कहा- क्या युद्धभूमि में विवाह उचित है? पहले हम लोग युद्ध जीत लें, उसके पश्चात् बड़े ठाट - बाट से विवाह करेंगे। तब राम ने कहा- लक्ष्मण, **उपकार का प्रत्युपकार करने में देरी नहीं करनी चाहिए।** कहीं हम उपकार चुकाए बिना ही मारे गए तो? इसलिए हमारी राय में संक्षिप्त विधि से विवाह कराते हैं। तब सबकी एक राय से विवाह करना तय हो गया। विवाह के लिए मण्डप बनाया गया, उसे सजाया गया। वह युद्धभूमि विवाहभूमि बन गई।

वहाँ राम पक्ष के सभी राजाओं की उपस्थिति में विशल्या के साथ लक्ष्मण का विवाह बहुत ही आनन्ददायक वातावरण में

सम्पन्न कराया। विशल्या और लक्ष्मण ने गुरूजनों से आशीर्वाद प्राप्त किया। दोनों ने अपने- अपने भाग्य को सराहा। लोगों के बीच वे दोनों इन्द्र-इन्द्राणी की तरह शोभायमान हो रहे थे। विवाहोत्सव के बाद लक्ष्मण और रावण में युद्ध हुआ। रावण की मृत्यु हुई।

राम, लक्ष्मण, सीता, विशल्या आदि अयोध्या लौट आए। अयोध्या में अयोध्यावासियों के साथ भरत ने उन सब का स्वागत धूमधाम से किया।

अयोध्या में आनन्द और सुख का समय बीतने का पता नहीं चला।

इसी बीच सीता पर आरोप लगा। उसे वन में छोड़ा गया। लवकुश का जन्म हुआ। बड़े होकर उनका राम, लक्ष्मण के साथ युद्ध हुआ। सीता को अयोध्या बुलाया गया। वहाँ उसकी अग्नि-परीक्षा हुई। अग्नि-परीक्षा के बाद सीता ने दीक्षा ली।

राम, लक्ष्मण के जीवन का समय खुशी से बीत रहा था।

एक बार स्वर्ग में इन्द्रसभा में मनुष्य लोक के जीवों के परस्पर वात्सल्य की चर्चा हो रही थी। तब इन्द्र ने कहा- मनुष्य लोक में इस समय बलदेव राम और नारायण लक्ष्मण के बीच परस्पर जैसा वात्सल्य है वैसा वात्सल्य किन्हीं अन्य जीवों में दिखाई नहीं देता। **सब बंधनों में स्नेह का बंधन अत्यंत दृढ़ होता है। जो हाथ, पैर आदि अवयवों से बंधा है, ऐसा प्राणी मोक्ष जा सकता है, परंतु स्नेहरूपी बंधन से बंधे प्राणी को मोक्ष नहीं मिलता। बेड़ियों से बंधा मनुष्य हजारों योजन भी जा सकता है, परंतु स्नेह से बंधा मनुष्य एक अंगुल भी जाने में समर्थ नहीं होता है।**

लक्ष्मण, राम में सदा अनुरक्त रहता है और राम, लक्ष्मण को देख-देख कर कभी संतुष्ट नहीं होते। लक्ष्मण पलभर भी न दिखे तो राम बेचैन हो जाते हैं।

इन्द्र की इन बातों को सुनकर राम और लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा के लिए **रत्नचूल** और **मृगचूल** नाम के दो देव आये। जिसके दर्शन के बिना राम पल भर में ही व्याकुल हो जाते हैं, वह लक्ष्मण राम की मृत्यु का समाचार सुनकर क्या करते हैं? यह सोच वे लक्ष्मण के पास जाकर कहने लगे-

" राम की मृत्यु हुई है "- इस वाक्य को अधूरा ही सुन सिंहासन पर गिरे। गिरते ही उनके प्राण पखेरू उड़ गए। लक्ष्मण की मृत्यु के बाद विशल्या ने आर्यिका व्रत धारण किए। कठोर तपस्या की। कठोर तपस्या करके समाधिमरण कर स्वर्ग में देव बनी। वह शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करेगी।

×××××

भजन

मेरे मन में आज प्रभु तेरी मूरत बस जाये
मुँह फेर जिधर देखूँ, तेरे दर्शन हो जाये।

1. मैं सोने से पहले, तेरा ध्यान लगाया करूँ
   मैं उठते ही बाबा, फिर तुझको प्रणाम करूँ
   सेवा करते–2 जीवन ये गुजर जाये। मुँह फेर.....

2. तेरा ध्यान मेरे बाबा, मेरे मन में सदा रहें
   णमोकार मंत्र देवा, कानों में सदा पड़ें
   तेरे भक्त का जीवन तो ऐसे ही संवर जाये। मुँह फेर.....

3. मेरे पार्श्वनाथ प्रभु, तुम देवन के देवा
   मैं जनम–2 भटका, करो अब कल्याण मेरा
   मैं शीष नवाऊँ तुमको, हे जगत्पती देवा। मुँह फेर.....

3. अंजना सती

भरतक्षेत्र के अंतिम छोर पर लवण समुद्र के किनारे आग्नेय दिशा में एक दन्ती नाम का सुंदर, विशाल पर्वत है। उस पर्वत पर अनेक गगनचुंबी चमकीले शिखर हैं। धों-धों कलकल आवाज करती अनेक नदियाँ और झरने बहते हैं। अनेक तालाबों से वह प्रदेश बहुत ही रमणीय है। वहाँ **महेन्द्र** नाम का राजा बस्तियाँ बनाकर रहता था। राजा दानी, न्यायी, पराक्रमी था, इसलिए उस पर्वत को लोग **महेन्द्रगिरि** के नाम से जानने लगे थे।

राजा महेन्द्र की हृदयवेगा नाम की रानी थी। इस राजा के अरिंदम आदि सौ गुणी पुत्र और अंजनासुंदरी नाम की गुणवती, सुशील कन्या थी। अंजना सुंदरी सबसे छोटी थी। जब उसका शरीर युवावस्था से सुशोभित होने लगा, तब राजा महेन्द्र को उसके लिए योग्य वर ढूंढने की चिंता हुई।

कन्या की चिंता पिता के लिए सबसे बड़ी चिंता होती है, इसलिए राजा महेन्द्र को उसके विवाह की विशेष चिंता होने पर उसके लिए योग्य वर ढूंढने के लिए उन्होंने अनेक हित-चिंतकों को विचार-विमर्श के लिए बुलाया। राजा ने उनसे कहा– मेरी पुत्री के लिए योग्य वर बताइए। वहाँ अनेक विचार सामने आये। किसी मंत्री ने कहा- इस सुंदर कन्या के लिए रावण जैसा वर ठीक रहेगा, जो तीन खण्ड का स्वामी है, अधिक उमर होने पर भी सोलह साल का ही दिखता है। हमारा उससे संबंध भी हो जायेगा। दूसरे मंत्री ने उसे टोकते हुए कहा- भले ही वह तीन खण्ड का स्वामी हो, पर है अभिमानी, इसलिए हमारी बेटी के लिए अन्य वर चुनना चाहिए।

एक मंत्री ने कहा- मेघनाद, इन्द्रजित् हमारी पुत्री के लिए ठीक रहेंगे?

उसे टोकते हुए दूसरे मंत्री ने कहा- यदि मेघनाद को कन्या दी जायेगी तो इन्द्रजित् नाराज हो जायेगा। इन्द्रजित् को कन्या दी जायेगी तो मेघनाद नाराज हो जायेगा।

किसी मंत्री ने सलाह दी कि कनकपुर के राजा हिरण्याभ का यशस्वी सुंदर विद्युत्प्रभ नाम का पुत्र है, वह हमारी बिटिया के लिए ठीक रहेगा।

तब अन्य मंत्री ने कहा-

विद्युत्प्रभ, कलाओं, विद्याओं का पारगामी है, सुन्दर, सुशील है, परंतु वह निकट भव्य है, संसार का स्वरूप जानकर शीघ्र ही दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त करेगा - ऐसा मुनियों से सुना है, इसलिए यह वर हमारी कन्या के लिए ठीक नहीं है।

मेरी बात ध्यान से सुनो,

विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण की ओर की एक पंक्ति (श्रेणी) में **आदित्यपुर** नाम का एक नगर है। वहाँ के राजा का नाम **प्रल्हाद** है। उनकी रानी का नाम **केतुमती** है। इनके एक पुत्र से है, जिसका नाम **पवनंजय** है। पवनंजय जब से जवान हुआ, तब से उसके लिए प्रल्हाद राजा योग्य कन्या की तलाश कर रहे हैं।

वह पराक्रमी, रूपवान, गुणवान, विद्यावान है। देवतुल्य कांति का धारक है। हमारी कन्या के लिए उसे वर के रूप में देखा जाय।

सभी ने 'हाँ में हाँ' मिला दी। राजा भी उसके गुण को सुनकर प्रसन्न हुए।

इसी बीच फाल्गुन मास का अष्टान्हिका पर्व आया। पर्व में पूजापाठ, स्वाध्याय के लिए राजा प्रल्हाद सपरिवार कैलाश पर्वत पर गये।

उधर संयोग से राजा महेन्द्र भी पर्व मनाने के लिए कैलाश पर्वत पर गए। **भगवान ऋषभदेव के मोक्ष जाने के कारण कैलाश पर्वत पवित्र निर्वाण-भूमि है।**

राजा महेन्द्र, भगवान की स्तुति, भक्ति, पूजा- अर्चा करके शिलातल पर शांति से बैठ गए थे। उसी समय राजा प्रल्हाद भी जिनेन्द्र की स्तुति- भक्ति, पूजा- अर्चा करके आये, सो दोनों आस-पास बैठ गए। दोनों ने एक दूसरे से 'जय जिनेन्द्र' की। पश्चात हालचाल पूछे, कुछ सामान्य बाते हुईं। उसके बाद राजा महेन्द्र ने राजा प्रल्हाद से कहा-

मित्र, कन्या के लिए योग्य वर पाने की चिंता से मेरा मन सदा दुःखी रहता है। एक बार हमने मंत्रियों, परिजनों के साथ बैठकर इस विषय में विचार-विमर्श किया। तब सबकी सहमति से हमने आपके पुत्र पवनंजय को हमारी पुत्री के योग्य-वर के रूप में पसंद किया है। हम अष्टान्हिका के बाद आपके पास आनेवाले थे, हमारे पुण्योदय से आप यहाँ ही मिल गए, हाँलांकि इन दिनों में यह चर्चा अच्छी नहीं लग रही है, परंतु पुत्री का पिता होने के कारण इस तरह की चर्चा के लिए हम मजबूर हैं। आपका हमारी पुत्री के विषय में क्या विचार है?

राजा प्रह्लाद ने कहा- हे मित्र! हम भी अपने पुत्र के लिए योग्य कन्या की तलाश में थे ही, पुण्योदय से सहज ही आपका समागम हुआ है। हमने आपकी पुत्री के गुणों के विषय में सुना हुआ है, हम स्वयं आपके पास आनेवाले थे। हमारी असहमति का प्रश्न ही नहीं है, बल्कि आपके उपकार ही होंगे, यदि आप अपना कन्या-रत्न हमें सौंपेंगे।

अंजना के पिता ने अष्टाह्निका पर्व के बाद पर्वत के सुंदर तट पर उनका मंगल-विवाह करने की इच्छा की। क्षणभर में ही यह समाचार चारों ओर फैल गया। विवाह की तैयारियाँ वहीं पर शुरू हो गईं। क्षणभर में ही वातावरण भी बदल गया। ड़ेरे तम्बू पण्ड़ाल तैयार हो गए। ज्योतिषियों ने कुछ दिनों के बाद विवाह का दिन बताया।

पवनंजय ने मित्रों के मुख से अंजना की प्रशंसा सुनी तो वह उसे देखने के लिए बेचैन हो गया। उसे एक दिन का इंतजार भी सहन नहीं था। उसे बेचैनी ने परेशान कर रखा था। उसका धैर्य छूट गया। श्वांसे गरम रहने लगीं। हृदय शून्य रहने लगा। उसने सब काम छोड़ दिये। पवनंजय निरंतर अंजना के बारे में ही सोच रहा था।

उसने अपने मन की बात अपने **प्रहसित** नाम के मित्र से कही। और कहा कि मित्र, मुझे जीवित और सुखी देखना चाहते हो तो मुझे अंजना के दर्शन कराओ, नहीं तो मैं मर जाऊंगा। जब से मैंने अंजना के बारे में सुना है, तभी से मेरी ऐसी दशा हो गई है। मैं इन विरह के दिनों को सहन करने के लिए समर्थ नहीं हूँ।

प्रहसित ने कहा- मित्र, दुःखी मत हो, मैं जल्द ही कोई उपाय सोचता हूँ। हे मित्र, आपकी खुशी में ही मेरी खुशी है। उसी समय संध्या हो गई। नीला आकाश काला हो गया। दोनों मित्र, अंधेरे में बिना किसी को बताये, वहाँ से चल पड़े। अपनी विद्या के सहारे से वे क्षणभर में ही महेन्द्रगिरि पर आ गए। उन्होंने अंजना का महल देखा। उसकी सातवीं मंजिल पर झरोखे में छिपकर बैठ गए। वहीं से अंजना को देख रहे थे। अंजना को अपलक निगाहों से देखते हुए पवनंजय आनंद से भरे गए।

उस समय अंजना सहेलियों से घिरी हुई थी। कुछ दिनों के बाद पवनंजय के साथ उसके विवाह का समाचार महेन्द्रगिरि तक पहुंच चुका था। वे सब उसके विवाह की चर्चा में मशगुल थीं। उस चर्चा के बीच **वसन्ततिलका** नाम की सहेली ने कहा- हे अंजना, तुम कितनी भाग्यशालिनी हो, जो तुम्हें तुम्हारे अनुरूप पवनंजय जैसा जीवनसाथी मिला है। तुम उनके साथ बहुत ही प्रसन्न रहोगी।

इस पर अंजना कुछ नहीं बोली, सिर्फ पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी।

इसी बीच दूसरी मिश्रकेशी नामक सखी ने कहा-

अंजना, विद्युत्प्रभ को छोड़कर अन्य श्रेष्ठ वर नहीं था। तुम्हारा उसके साथ योग बहुत अच्छा होता। पवनंजय की तुलना में वह कईं गुणा ज्यादा अच्छा वर था। तुम्हारा उसके साथ विवाह होता तो अच्छा होता। वह युवा है, नम्र है, सौम्य है, धीर है, प्रतापी है। विद्याओं का पारगामी है। मैंने राजमहल में उसकी चर्चा कईं बार सुनी है। पुण्ययोग से उसके साथ तुम्हारा विवाह होता तो तुम्हारा उसके साथ संबंध बेजोड़ होता। विचार तो करो कि विद्युत्प्रभ के साथ तुम्हारा एक पल का संबंध भी विशाल सुख का कारण होता, जो दूसरे के साथ बहुत समय बिताने पर भी नहीं मिलता।

मिश्रकेशी के इन शब्दों को सुनकर पवनंजय को मिश्रकेशी पर बहुत गुस्सा आ रहा था। साथ ही अंजना पर भी। क्योंकि वह विरोध क्यों नहीं कर रही है?

अरे रे! देखो संसार की विचित्रता। मोक्षगामी जीव के बारे में कितनी ईर्ष्या, कितना द्वेष?

जो स्वयं मोक्षगामी हैं और जिनके चरणकमल मोक्ष दिलायेंगे, उन्हीं से ईर्ष्या और द्वेष। पवनंजय जानते हैं कि विद्युत्प्रभ इसी भव से मोक्ष जायेंगे, फिर भी मोह में अंधी हुई बुद्धि के कारण उन्होंने इस बात का विचार नहीं किया कि यह विद्युत्प्रभ कुछ समय बाद सिद्ध परमेष्ठी बनेंगे, उनसे द्वेष क्यों करूँ? वे वंदनीय हैं, उनके विचार वंदनीय हैं, उनके चरण, आचरण वंदनीय हैं। देखो, दुर्बुद्धि कैसी होती है? उन्हीं से द्वेष करने लगी।

क्रोध के कारण पवनंजय का शरीर कांपने लगा। पल भर में ही उसके तेंवर बदल गए। ओंठ चबाने लगा। उसने म्यान से तलवार बाहर निकाली, तब प्रहसित ने कहा- हे मित्र, चाहे जितना क्रोध आये, पर स्त्रियों पर हथियार नहीं उठाने चाहिए।

पवनंजय ने प्रहसित से कहा- विद्युत्प्रभ अंजना को प्रिय है, तभी तो वह उसका प्रतिकार नहीं कर रही है। इसीलिए मैं उसका

मस्तक काटना चाहता हूँ।

प्रहसित ने उसे समझाया कि ऐसी बात नहीं होगी, शायद स्त्रीजन की यह लज्जा की प्रवृत्ति है। जिससे उसने प्रतिकार नहीं किया।

परंतु क्रोधाग्नि में पवनंजय को कुछ भी समझ में नहीं आया। वह तो उसे दण्ड देने पर आमादा था। उसने मन ही मन ही निश्चय किया था कि उसे ऐसा सबक सिखाऊंगा, जिसे वह जीवन भर याद रखे। उसने मन ही मन निश्चय किया कि मैं विवाह इससे ही करूँगा, परंतु इसे अपनाऊंगा नहीं। यही इसे सबसे बड़ा सबक होगा।

ऐसा निर्णय करके द्वेष से भरे पवनंजय ने प्रहसित से कहा जल्दी चलो, कहीं इसके शरीर को छुई हवा मुझे छू न जायें, क्योंकि नीति कहती है कि

मदिरारागिणं वैद्यं द्विपं शिक्षाविवर्जितम्।
अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्मं हिंसनसंगतम्॥
मूर्खगोष्ठी कुमर्यादं देशं चण्डं शिशुं नृपम्।
वनितां च परासक्तां सूरिर्दूरेण वर्जयेत्॥

अर्थ- शराबी वैद्य को, अशिक्षित हाथी को, कारण रहित बैरी को, हिंसावाले धर्म को, मूर्खों की बातों को, नियम रहित देश को, क्रोधी तथा बाल राजा को और पर-पुरूष में आसक्त स्त्री को बुद्धिमान दूर से छोड़ दें।

दोनों मित्र तुरंत ही वहाँ से लौट रहे थे, तब उनके घोड़े आदि की आवाजें अंजना को सुनाई दीं। अंजना उन बातों का आभास कर विचार करने लगी कि हे दैव, मुझे कैसे दिन दिखाओगे? लगता है, वे यहाँ मुझ से मिलने आये थे, परंतु मेरी इन सखियों की ठिठोलियों को सच समझ नाराज होकर मुझे बोले बिना ही लौट रहे हैं। कहीं मैं उनके द्वेष का पात्र न बन जाऊँ? शायद

मिश्रकेशी ने मेरे प्रिय को दुःखी कर दिया। यदि ऐसा हुआ है तो मैं जीते जी मृत समान हो जाऊंगी। यह सोचते- सोचते वह बेहोश हो गई। होश में आने पर सखियों ने उसे बेहोशी का कारण पूछा, पर वह शरम के मारे कुछ ना कह सकी।

उसके बाद समय बीत गया। दोनों का विवाह बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो गया। विवाह के समय यद्यपि पवनंजय ने अंजना का हाथ पकड़ा हुआ था, पर उसी तरह से पकड़ा था, जैसे शरीर से विरक्त मुनि शरीर को धारण करते हैं। अंजना की सुलभ, निष्पाप हँसी उसे ऐसे चुभ रही थी, जैसे **मुनि को कषाय चुभती है।** बंधुबान्धव, अंजना आदि सभी उस समय प्रसन्न थे, मात्र पवनंजय ही एकमात्र उदास व्यक्ति था।

अंजना की बिदाई हुई।

विवाह के बाद पवनंजय ने अंजना को ऐसे छोड़ा, जैसे मुनि घर परिवार को छोड़ते हैं। न कभी उसकी ओर देखता था, न उससे बातें करता था। ऐसा करके वह उसे घोर कष्ट पहुंचाना चाहता था। अंजना को पवंनजय के व्यवहार से कष्ट होता था, उसे रात को नींद नहीं आती, खुली आँखों, उदास मन से रात गुजारती थी। उसने विवाह के समय जो धुंधला-सा रूप देखा था पवनंजय का, उसे सदा हृदय में रख उसी रूप को वह बाहर भी देखने का प्रयास करती थी। पवनंजय के मुँह से अपना नाम सुनने के लिए तरसती थी। पवनंजय की एक प्रेमभरी निगाह के लिए तरसती थी।

धीरे-धीरे वह इतनी कमजोर हो गई थी कि उसके शरीर से आभूषण गिरने लगे थे। लंबी और गरम श्वासों से उसके गाल काले पड़ गए थे। उसके शरीर पर जो महीन वस्त्र थे, वे भी भाररूप लगते थे। अपने भाग्य की निंदा करती हुई बार-बार माता- पिता को याद करती हुई, शून्य हृदय को धारण कर बेहोश हो जाती थी। चांदनी हो या बाग या महल या हो कोई उत्सव इनमें

उसे दुःख का अनुभव होता था।

बड़ों के आग्रह से बड़ी कठिनाई से भोजन करती थी। सभी श्रृंगार- साधनों से रहित हो गई थी। आँखों से निरंतर मोती जैसे आँसू टपकाती हुई वह दिन-रात बिताती थी।

×××××

एक बार राजा वरूण और राजा रावण के बीच अंहकार के कारण से बैर-विरोध हो गया। **हर विरोध का कारण अंहकार ही होता है।** रावण ने बड़प्पन दिखाते हुए एक दूत वरूण के पास भेजा। उस दूत ने रावण की ओर से वरूण राजा से कहा कि-

''आप में और हम में कोई वंशपरम्परागत बैर नहीं है। आप हमारे आधीन हैं। हम आपके स्वामी हैं। हम विद्याधरों के एकमात्र स्वामी हैं। अतः आप हमें नमस्कार कीजिए। नहीं तो युद्ध अवश्य ही होगा।''

वरूण राजा अभिमानी, अहंकारी था। उसे अपने बल पर अभिमान था। उसने दूत से कहा- तुम्हारे राजा को देवरक्षित शस्त्रों पर अभिमान है। उनसे कहो कि वे उन शस्त्रों को लेकर युद्ध में आयें, हम उनका नाम ही मिटा देंगे।

दूत से वरूण की अहंकारभरी बातें सुनकर रावण ने वरूण के नगर को घेर लिया। उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं देवरक्षित शस्त्रों के बिना ही वरूण को युद्ध में हराऊंगा।

दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। रावण का पक्ष जब कमजोर दिखने लगा। तब रावण ने राजा प्रह्लाद के पास दूत भेजकर मदद मांगी। प्रह्लाद स्वयं ही सेना लेकर जाने के बारे में सोच रहे थे। उसी समय पवनंजय ने कहा- पिताजी, हमारे होते हुए आप जायें, ये हमें शोभा नहीं देता।

प्रह्लाद ने कहा- बेटा, आप, अभी बच्चे हो।

पवनंजय- माता-पिता की नजर में बच्चे कितने भी बड़े

क्यों न हों, बच्चे ही दिखते हैं। पर हम इतने बच्चे भी नहीं रहे कि घर में कैद हो जायें। हमें भी पराक्रम दिखाने का अवसर दीजिए। हम युद्ध करना चाहते हैं। आज्ञा दीजिए।

प्रह्लाद- बेटा, हमें आपको युद्ध पर भेजकर नहीं, अपितु आपकी बात पूरी करने की खुशी है। जाइए, विजयी होकर लौटिए।

सिद्धप्रभु को नमस्कार कर बड़ों से आशीर्वाद ले पवनंजय ने दाहिना कदम आगे बढ़ाया, तब शुभशगुन में उसकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। उसकी निगाहें महल के द्वार के खम्भे से टिककर खड़ी अंजना पर गईं, अंजना की आँखों में आँसू थे। वह दूबली-पतली अंजना खम्भे के पास ऐसी लग रही थी, मानो खम्भे के ऊपर पाषाण की कोई पुतली ही हो।

पवनंजय ने उसे देखते ही उस पर से निगाहें हटाकर गुस्से से कहा-

अरी दुष्टा, मेरे सामने क्यों आई हो? दूर हट। कुलांगना होकर भी न चाहनेवाले पति के सामने क्यों आई? और भी कठोर शब्द कहे।

अंजना ने उन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। मन ही मन सोचने लगी कि चलो, आज ड़ाटने के बहाने से ही सही, बात तो कर रहे हैं। भाषा भले ही ड़ाटने की हो।

अंजना ने पवनंजय के चरणों में नेत्र गड़ाकर, हाथ जोड़कर कहा-

हे नाथ! इस महल में रहते हुए भी हम आपके द्वारा परित्यक्ता हैं। फिर भी आपके समीप ही हैं- इस बात से संतुष्ट होकर पूर्वकर्मों का फल जानकर शांतभाव से जी रहे हैं कि कभी तो पुण्य का उदय आयेगा।

आप युद्ध पर जा रहे हैं- यह सोचकर आपके प्रति प्रेम की वजह से आपके सामने अनायास आये हैं। हम आपका मंगल चाहते हैं। आपके बिना हमारा इस संसार में कोई दूसरा शरण

नहीं है। उसके बाद मरण ही शरण है।

पवनंजय ने कहा- तब तो मरण की ही शरण लो। अंजना इन शब्दों को सुनकर बेहोश हो धरती पर गिर गई। पवनंजय हाथी पर सवार हो सामन्तों के साथ युद्ध के लिए गया।

शाम होने तक वे मानसरोवर तक पहुँच गए। मानसरोवर के किनारे पर सेना ठहरा दी गई।

मानसरोवर का स्वच्छ जल, उसमें खिले कमल, खेलते हंसादि को देखकर सभी प्रसन्न हो रहे थे।

पवनंजय की निगाहें भी मानसरोवर पर ही जमी थीं। शाम के समय मानसरोवर पक्षियों के कलरव से गुंजायमान था। वह कलरव मन और कान दोनों को चुरा रहा था। सरोवर के किनारे पवनंजय को एक चकवी दिखी। वह अकेली होने से बहुत व्याकुल थी। वियोग की अग्नि से झुलस रही थी। पश्चाताप, विरह की विविध चेष्टाओं से व्याप्त थी।

वह बार-बार कमलिनी के पत्तों में चकवे को ढूंढ रही थी, तेजी से पंखों को फड़फड़ाती थी, बार-बार ऊपर उड़कर तथा नीचे उतरकर खेदखिन्न हो रही थी। पानी में अपने ही प्रतिबिम्ब को देख पति की आशंका से उसे बुलाती थी। उसके न आने से बहुत शोकाकुल हो रही थी। वह पति को ढूंढती सरोवर के चारों ओर चक्कर लगाती, कभी ऊपर, कभी नीचे पति को तलाशते समय की उसकी करूण आवाज पवनंजय के भीतर तक चुभ गई।

वह सोच रहा था- देखो पति से बिछुड़ी चकवी की हालत कितनी दुःखदायक हो गई है। वह चकवी शोकरूपी अग्नि से जल रही है। पति के वियोग में उसे मनोहर चन्द्रमा भी दावानल के समान हो गया है।

रमणेन वियुक्तायाः पल्लवोऽप्येति खड्गताम्।
चन्द्रांशुरपि वज्रत्वं, स्वर्गोऽपि नरकायते॥

अर्थ- पति से रहित स्त्रियों के लिए कोंपल भी तलवार का काम करती है, चन्द्रमा की किरण वज्र बन जाती है और स्वर्ग भी नरक जैसा बन जाता है।

सच है, पति के बिना विवाहिता का जीवन क्या है?

इसी मानसरोवर के किनारे पर अंजना- पवनंजय का विवाह हुआ था। उसे उन दृश्यों की यादें ताजा हो गईं। अंजना की याद उसे सताने लगी। वह सोच रहा था-

मुझ दुष्ट पापी ने कैसा घोर अपराध किया, अंजना के प्रति। सखी के कहने से मैंने क्यों उसे छोड़ दिया? बिना विचारे काम करनेवाले मुझ जैसे मुर्खों के लिए अनेक धिक्कार हैं। जो बिना कारण ही लोगों को दुःखी करते हैं। मैं कितना दुष्ट, कितना क्रूर हूँ?

उसे अंजना की याद तड़फाने लगी। तब वह सोच रहा था कि मैं उसे कैसे मिलूँ?

पिता से पूछकर घर से निकला हूँ, इसलिए अब लौटकर अंजना के पास कैसे जाऊँ? उससे मैंने ऐसी बात कही हैं कि मेरे युद्ध से लौटने तक तो मर ही जायेगी। मैं क्या करूँ?

मित्र प्रहसित से ही इसका समाधान पूछता हूँ। इतने में प्रहसित ही वहाँ आया। उसने पवनंजय से पूछा- मित्र! मानसरोवर जैसे रमणीय स्थान पर उदास क्यों हो?

उत्तर में पवनंजय ने कहा- अपने आँसूरूपी जल से जिसने प्रेमवल्लरी को सींचा, उस अभागन अंजना के प्रति मुझ से नादानी में घोर अपराध हो गया, आज तो उस अपमान की हद हो गई। परन्तु अब मुझे उसकी याद सता रही है। मैंने अज्ञान में उसका बाईस वर्ष तक अनादर किया है। लेकिन अब उसे देखे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह पाऊंगा।

कुछ ऐसा करो कि इसी समय हम दोनों का मिलन हो,

नहीं तो हम दोनों का मरण तय है।

प्रहसित ने थोड़ी देर सोचकर कहा- मित्र, गुरूजनों से आज्ञा लेकर पहली बार युद्ध के लिए निकले हो। इस तरह तुम्हारा लौटना ठीक नहीं है। इसके सिवाय गुरूजनों के समक्ष तुमने कभी अंजना को अपनाया नहीं, इसलिए अंजना को यहाँ नहीं ला सकते। इसलिए अच्छा यही होगा कि तुम्हें गुप्तरूप से जाकर, मिलकर सुबह होने से पूर्व लौट आना होगा। आप ही उसके जीवन का आधार थे, हो और रहोगे। इसलिए तुम्हें यह कार्य पहले ही करना चाहिए था। चलो, देर आये, दुरस्त आए। अब जल्दी करो।

इसके बाद मुद्गर नामक सेनापति को सेना की रक्षा का भार देकर मेरू की वंदना के बहाने दोनों मित्र वहाँ से अंजना के पास आए। प्रहसित ने वसन्तमाला सखी के द्वारा पवनंजय के आने की सूचना अंजना के पास भिजवाई।

अंजना सोच भी नहीं पा रही थी कि ऐसे कैसे हो गया? पवनंजय ऐसे कैसे आ गए? वसंतमाला कुछ जवाब दे पाती, उससे पहले प्रहसित ने आकर कहा- भाभीजी, यह सच है, पवनजंय भैय्या, आपसे मिलने आए हैं। आपकी दुःख की घड़ियाँ बीत गई हैं, पुण्य के पल आए हैं।

अंजना ने कहा- यह वैसे ही असंभव है, जैसे बादल बिन वर्षा। फिर भी प्रहसित, प्राणनाथ आये हैं, तो मैं उनका स्वागत करूंगी। पूर्वोपार्जित पुण्यवृक्ष आज फलीभूत हुआ है, तो क्यों न मैं स्वामी का सत्कार करूँ?

बाहर रहकर इन शब्दों को सुननेवाले पवनंजय से रहा नहीं गया, वे तुरंत अंजना के पास आए। कहने लगे-'' देवी! आपका सबसे बड़ा अपराधी आपके चरणों पर पड़ा है, उसे क्षमा कर दीजिए।'' यह कहकर पवनंजय अंजना के चरणों पर झुक गए।

अंजना पवनंजय के व्यवहार से अचम्भित हो तुरंत पीछे हट गई। कहने लगी-

प्राणनाथ, आपका स्थान पहले भी हृदय में था, आज भी है, कल भी रहेगा। आपके चरणों में ही हम संतुष्ट हैं। जो भी अब तक घटा, उसमें आपका दोष नहीं। हमने ही जाने-अनजाने में पूर्व जीवनों में कईं गल्तियाँ की थीं, उन्हीं का प्रतिफल था। उठिए हमें ही आपके चरणों में शरण दीजिए। हम इस बात से प्रसन्न हैं कि हमारे पापकर्म के दिन बीत गए हैं। आप आज्ञा दीजिए, यह दासी आपके लिए क्या करें?

पवनंजय- ''धन्य हो सती, धन्य हो अंजने'' हमने आपको समझने में कितनी बड़ी भूल की है।

अंजना- नहीं नाथ, इसमें आपकी भूल नहीं है। इसमें हमारे पूर्वकर्म का उदय ही कारण है, आप नहीं।

पवनंजय की आँखें आंसुओं से भर आईं। पवनंजय के आँसू पोंछती हुई अंजना खुद फफककर रो पड़ी। रोने का आवेग कम होने पर अंजना ने फिर पूछा- नाथ, आज आपको हमारी याद कैसे आई?

पवनंजय- अंजना, आज हमने एक चकवी को तड़पते देखा, जिससे आपकी याद आई, आपसे मिलने आए। अब हम आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकेंगे। हम सबके सामने यहाँ से गए थे। सबके सामने लौटते तो लोग उल्टा अर्थ निकालते, इसलिए सेनापति से मेरूपर्वत की वंदना का बहाना कर यहाँ चोरी-छिपे मिलने आए हैं।

दोनों ने रातभर बाते कीं। सुबह होने को आयी, तब प्रहसित ने आकर कहा- मित्र सुबह होनेवाली है। जल्दी चलो। नहीं तो सबका सामना करना पड़ेगा, जिससे बुरी फज़ीहत होगी। इसलिए अब देर मत करो, जल्दी चलो।

पवनंजय, अंजना का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। तब अंजना ने ही कहा- हे स्वामी, प्रहसित सही कह रहे हैं। जाइए, कुछ दिनों की ही तो बात है। जहाँ बाईस वर्ष बीत गए, जिन में मिलन की आस ही हमने छोड़ दी थी। अब तो आपके प्रेम के सहारे पूरा जीवन बिता सकती हूँ।

पवनंजय- अंजना, मन घबड़ा रहा है। आपको छोड़ने का मन नहीं हो रहा है।

अंजना- फिर भी नाथ, जाना तो पड़ेगा ही। परंतु जल्दी आइए। क्योंकि आपके इस तरह के आने का पता सिर्फ आपको, मुझे, प्रहसित और वसंतमाला को ही है। यदि कुछ अनहोनि होगी तो कौन विश्वास करेगा? क्योंकि सब यही जानते हैं कि आप हमसे नफरत करते हैं। यह कोई नहीं जानेगा, आप पहले जैसे नहीं रहे, हमसे ही प्रेम करते हैं। इसलिए कुछ ऐसा कर जाइए, जिससे अनहोनि होने पर लोग हमारा विश्वास करेंगे।

पवनंजय- अंजना, वैसे तो हम बहुत ही जल्द आपके पास आएंगे। सबको विश्वास दिलाएंगे कि हम आपसे ही प्रेम करते हैं। फिर भी कदाचित अप्रसंग आ जाएं, तो हम अपना कड़ा आपको देते हैं, इसे दिखाने पर सब आपका विश्वास करेंगे।

यह कहकर पवनंजय ने अपना कड़ा उतार कर अंजना को निशानी के तौर पर दिया। पुनः जल्दी मिलने के आश्वासन के साथ जाने लगे।

अंजना ने जाते हुए पवनंजय से कहा-

नाथ, भूलिए मत, आप ही हमें शरण हैं, जल्दी विजयी होकर लौटिए। हम मंगलकलश लेकर आपकी सबके सामने आरती उतारेंगे।

पवनंजय - ''ऐसा ही होगा, विश्वास कीजिए'' ऐसा कहकर पवनंजय चले गए।

अंजना बहुत देर तक पवनंजय को नम आंखों से देखती रही। आज वह प्रसन्न थी। आज जीवन की साधना फलीभूत हुई थी। उस दिन से वह प्रसन्न रहने लगी। उसकी प्रसन्नता देखकर सास केतुमती उससे ईर्ष्या करने लगी थी। उसे लग रहा था कि मेरा बेटा युद्ध में जीवन से संघर्ष कर रहा है- यह दुःखी होने की बजाय प्रसन्न क्यों हो रही है?

कुछ दिन यूं ही बीत गए। युद्ध लंबा चला। पवनंजय नहीं आ पाए।

इधर अंजना के गर्भ रह गया था। वह बढ़ने लगा। उसके लक्षण दिखाई देने लगे। शरीर गौरवर्ण हो गया। गति धीमी हो गई। शरीर में आलस्य रहने लगा।

गर्भ के लक्षण सास केतुमती से छिपे नहीं रह सके। उसने ईर्ष्या और क्रोध से भरकर अंजना से कहा-

मेरा पुत्र तुझसे नफरत करता है- यह सारी दुनिया जानती है। फिर ये लक्षण क्यों हैं? कुलटा, नीच, कलमुँही, बता- यह पाप तुझमें कहाँ से आया?

अंजना ने केतुमती से पवनंजय के आने की सारी कहानी रोते-रोते बतायी, निशानी के तौर पर कड़ा भी दिखाया।

पर केतुमती ने उसकी एक भी नहीं सुनी। कड़े पर विश्वास नहीं किया। वसन्तमाला ने भी अनेक कसमें खाकर सारी हकीकत बतायी। पर केतुमती का रोम-रोम ईर्ष्या और क्रोध से भरा था। उसने सेवक को बुलाकर कहा- इसे अभी के अभी, इसके पिता राजा महेन्द्र के पास बिना देर किए छोड़कर आ।

सेवक पराधीन होते हैं, यह जान सेवक अंजना को उसकी सखी के साथ लेकर चला गया। राजा महेन्द्र के नगर तक पहुँचकर उसने अंजना से रथ से उतरने के लिए कहा। अंजना के रथ से उतरने के बाद कहा-

हे देवी, हम आपका विश्वास करते हैं। पर हम तो पापकर्म के उदय से नौकर हैं। आपको यहीं तक छोड़ने की आज्ञा थी, हमें तो आज्ञा का पालन करना पड़ता है। हमें क्षमा कर दीजिए।

अंजना बोली- भाई, इसमें आपका दोष ही क्या है? आपकी जगह कोई भी होता तो वह भी यही करता। आप जाइए। हमारे मन में आपके प्रति कोई द्वेष नहीं है। आपकी परिस्थिति को हम समझते हैं। आप शांत मन से जाइए, हमें अपने कर्मों के सहारे छोड़ दीजिए।

रथ से जाते समय सेवक ने कहा-

बेटी, धैर्य मत खोना, सब ठीक हो जायेगा।

सेवक के जाते ही शाम हो गई। पिता का घर दूर था, रात हो रही थी, सुबह घर जाऊँगी, यह सोच भूख प्यास की चिंता छोड़। अपवाद, निंदा के चक्र में फँसी अंजना ने सारी रात पेड़ के नीचे ही सखी के साथ बितायी।

सुबह होने पर सखी के साथ पिता राजा महेन्द्र के पास पहुँची, वहाँ दरवाजे पर खड़ा द्वारपाल उसे पहिचान नहीं पाया। उसने उसे दरवाजे के भीतर प्रवेश नहीं करने दिया। **पापकर्म के उदय ने उसे अपने ही घर में प्रवेश नहीं करने दिया।** जैसे-तैसे पिता के पास पहुँची, अभिवादन के बाद उसने सारी घटनाएं बतायीं।

परंतु अंजना के पाप के उदय से राजा महेन्द्र ने भी उस पर विश्वास नहीं किया। महोत्साह नाम के सामन्त ने राजा महेन्द्र को समझाने का प्रयास किया कि–

अंजना, सचमुच ही कुलटा होती तो आपके पास शरण क्यों मांगती? वह ऐसी नहीं है- ऐसा आप भी जानते हैं। वह गर्भवती है, उसे शरण दीजिए। पवनंजय के युद्ध से लौटते ही सच झूठ का फैसला हो जाएगा, तब निर्णय कीजिए। आपको छोड़ यह बेचारी कहाँ जायेगी? इसलिए इसे शरण दीजिए, सन्तान के जन्म

होने तक रख लीजिए। संतान के जन्म के बाद उसे रखने या नहीं रखने का निर्णय लीजिए। हो सकता है, इसने और वसन्तमाला ने जो बताया, वही सत्य हो, चूंकि आप केतुमती की बातों पर मुहर लगा रहे हैं और अंजना को चरित्रहीन सिद्ध कर रहे हैं। इसलिए हमारा निवेदन है कि सोच समझकर निर्णय कीजिए। आप केतुमती के स्वभाव को भी जानते ही हो।

महोत्साह सामन्त की बातों का राजा महेन्द्र के विचारों पर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने प्रसन्नकीर्ति पुत्र को बुलाकर कहा- इस पापिनी को नगर से शीघ्र ही निकाल दो।

अंजना ने कहा- पिताजी, सासुमाँ ने बिना विश्वास किए मुझे छोड़ दिया। वह तो परायी हैं, पर मैं तो आपके गोद में पली-बढ़ी हूँ, पिताजी मैं आपसे सच कह रही हूँ - स्वामी आये थे, अकेले में चुपचाप, क्योंकि वे सबके सामने गए थे, इसलिए चुपके से आए थे, देखिए यह कड़ा है। मेरा, अपनी बेटी का विश्वास कीजिए, मैं पंचपरमेष्ठी की शपथ लेकर कहती हूँ, मैं सच कह रही हूँ, मैं झूठ बोलूँ तो मुझे नरक मिले।

राजा महेन्द्र ने कहा- बेटी, हृदय तो सच मान रहा है, पर बुद्धि स्वीकार नहीं कर रही है। आपकी वजह से हमारी बदनामी न हो, इसलिए बेटी, चली जाओ।

अंजना- पिताजी, इस गर्भ पर तो रहम कीजिए।

राजा महेन्द्र- बेटी सारी समस्या की जड़ यह गर्भ ही है, उसका ही तो विश्वास नहीं हो रहा है, इसलिए तो हम ऐसा कह रहे हैं।

अंजना- ठीक है, पिताजी, जब आपको ही विश्वास नहीं है, तो औरों के बारे में क्या कहूँ? कर्म जो दिन दिखायेगा, उन्हें शांति से बिताऊंगी।

निराश रोती हुई अंजना जंगल की ओर चली गई। उसके साथ वसंतमाला, गर्भ और पूर्वकर्म थे। दोनों सखियों ने ऐसे घने

जंगल में प्रवेश किया, जहाँ मनुष्य तो दूर उसकी आकृति भी नहीं दिखती थी। वह सोच रही थी- देखो कर्म का प्रहार, प्रत्यक्ष सत्य भी उसके सामने झूठा साबित हुआ। नाथ भी भूल गए, सासुमाँ ने, जन्मदात्री माँ ने, पिताजी ने किसी ने भी विश्वास नहीं किया। हाय रे कर्म, तुम्हारी लीलाएं हैं निराली। इसमें किसी का क्या दोष? अपने पूर्वकर्म ही सब खेल दिखाते हैं।

अंजना के विलाप को देखकर वसन्तमाला भी फूटफूटकर रोने लगी। उसने रोते हुए ही कहा- हे स्वामिनी, रोइए मत। पूर्व उपार्जित कर्म उदय में आया है, उसे रोकर नहीं, आंख बंद कर शांति से सहन करें तो ठीक रहेगा।

सर्वेषामेव जन्तूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः।
कर्म तिष्ठति यद्देवि तत्र कोऽवसरः शुचः॥

अर्थ- हे देवी, सर्व प्राणियों के आगे, पीछे, बगल में कर्म ही विद्यमान हैं, तब यहाँ शोक का अवसर कहाँ है?

अप्सरः शतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहाः।
प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते सुरा अपि॥

अर्थ- जिनके शरीर को अप्सराओं के सैंकड़ों नेत्र ताकते रहते थे, ऐसे देव भी पुण्य का अंत होने पर गहरे दुःख को प्राप्त हो जाते हैं।

चिन्तयत्यन्यथा लोकः प्राप्नोति फलमन्यथा।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुरुर्विधिः॥

अर्थ- लोग अन्यथा सोचते हैं और अन्यथा ही फल प्राप्त करते हैं। वास्तव में लोगों में कार्य पर दृष्टि रखनेवाला विधि(कर्म) ही परम गुरू है।

हितंकरमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात्।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम्॥

अर्थ- कभी तो कर्म प्राप्त हुई हितकारी वस्तु को क्षणभर में

नष्ट कर देता है और कभी ऐसी वस्तु लाकर सामने रख देता है, जिसकी मन में कल्पना नहीं की थी।

हे मालकिन, कर्मों की दशाएं बड़ी विचित्र हैं, उनका पूर्ण निश्चय कौन कर पाया है? इसलिए पंचपरमेष्ठी और अपनी आत्मा की शरण लीजिए और शांत रहिए। दुःखी होकर गर्भ को दुःख मत पहुंचाइए।

हे देवी, दाँतों से दाँतों को दबाकर, मन को पत्थर के समान बनाकर निज शुद्धात्मा की शरण लेकर जिनका टलना अशक्य है, ऐसे स्व- उपार्जित कर्म का फल सहन कीजिए।

आप स्वयं तत्त्वज्ञान से विशुद्ध हृदयवाली हों, आप को उपदेश देना निंदा के समान है। परंतु आप से स्नेह ही मुझे मुखर कर गया, क्षमा कीजिए।

यह कहकर वसन्तमाला ने कांपते हाथों से अंजना के आँसू पोंछे।

फिर कहा- सखी, यह स्थान ठीक नहीं है, हम पर्वत के पास चलते हैं। वहाँ किसी ऐसी गुफा का आश्रय लेंगे, जो गर्भ की भलाई के लिए ठीक रहेगा।

यह सोच दोनों सहेलियाँ पर्वत की ओर गईं।

पर्वत के पास एक सुंदर गुफा दिखाई दी। गुफा में उजाला दिखाई दे रहा था। जब वे गुफा के द्वार पर गईं, तब उन्हें निर्मल शिला पर **पर्यङ्कासन से विराजमान ऋद्धिधारी मुनिराज** दिखाई दिए। मुनिराज को देखते ही दोनों सहेलियाँ अपनी पीड़ाएं भूल गईं, आनंद- उत्साह से भर गईं। मुनिराज की दृष्टि नासाग्र थी, श्वास निश्चल, नियमित था। उनका शरीर शिथिल होने पर भी सीधा था, वे ठूंठ के समान हलन- चलन से रहित थे।

दोनों ने उत्साह से मुनिराज को नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणाएं दीं। सामने जाकर बैठ गईं।

उसी समय मुनिराज का ध्यान टूटा। अंजना ने मुनिराज से कुशलता पूछी। मुनिराज ने अमृतमयी वाणी में कहा- बेटी, कर्मप्रभाव से हम कुशल हैं। यह सब कर्मों की चेष्टाएं हैं। देखिए, कर्मों की लीला, राजा महेन्द्र की पुत्री, राजा प्रह्लाद की पुत्रवधू, राजकुमार पवनंजय की धर्मपत्नी निरपराधिनी होते हुए भी घर से निकाली जाकर घोर अनादर को प्राप्त हुई है।

बिना कहे मुनिराज के मुँह से अपना परिचय सुनकर अंजना अचम्भित हो गई। वसन्तमाला भी सखी का परिचय सुन भौचक्की रही। उसने मुनिराज से पूछा-

हे नाथ, आप त्रिकालदर्शी हैं, हे स्वामी, यह कौन अभागा जीव इसकी कुक्षि में है? मेरी सहेली स्वामिनी किस कारण से पति से अलग रह रही है? किस कारण से वही पति अब उससे अनुराग करने लगा? किस कारण से इस महावन में दुःख को प्राप्त हुई है?

तब अवधिज्ञानी ऋद्धिधारक मुनिराज ने कहा- बेटी, यह सब पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है। सबसे पहले इस गर्भ के जीव के बारे में बताता हूँ-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मन्दर नाम के नगर में एक प्रियनंदी नाम का गृहस्थ था, उसकी जया नाम की पत्नी थी तथा दमयन्त नाम का बेटा था।

एक बार वसन्त उत्सव मनाने नगर निवासी उद्यान में गए थे। दमयन्त भी गया था। उद्यान में एक स्थान पर दमयन्त को मुनिराज दिखाई दिए। वह मुनिराज के पास जाकर नमस्कार कर बैठ गया। आचार्यश्री से उपदेश सुना। उसने सम्यग्दर्शन धारण किया। नियम लिये। समाधिपूर्वक देह छोड़कर स्वर्ग में देव बना।

वहाँ से आकर जम्बूद्वीप के मृगांक नामक नगर में राजा हरिचंद्र और प्रियंगुलक्ष्मी नामक रानी से सिंहचन्द्र नाम का पुत्र बना।

उस पर्याय में भी वह मुनियों से उपदेश पाकर नियम संयम से जीवन बिताकर स्वर्ग में देव बना।

वहाँ से आकर भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर अरूण नाम के नगर में राजा सुकण्ठ की कनकोदरी नामक रानी से सिंहवाहन नाम का पुत्र बना। एक दिन **लक्ष्मीतिलक नाम के मुनि** का उपदेश सुनकर वैराग्य पाकर उसने दीक्षा ली। उसने ऐसा कठोर तप किया कि सामान्य मनुष्य जिसका विचार भी नहीं कर सकते थे, वह सदा रत्नत्रय के प्रभाव से परमार्थता को धारण करता था। नाना प्रकार की ऋद्धियाँ धारण करने पर भी उस ओर ध्यान नहीं देता था। आत्मध्यान में लीन रहकर देह छोड़कर लान्तवस्वर्ग में उत्कृष्ट ऋद्धिधारी देव बना।

स्वर्ग का वही जीव इस समय अंजना के गर्भ में है। यह जीव इतना भव्य है कि यह इसी भव से निर्वाण को प्राप्त होगा। यह चरमशरीरी जीव है। यह कामदेव है और अनेक वैभवों का स्वामी बनेगा। इसके पराक्रम को देवता भी खण्ड़ित नहीं कर पाएंगे । इसके कारण तुम संसार में प्रसिद्ध हो जाओगी।

×××××

अब अंजना के दुःखों का कारण सुनो-

यह अंजना पूर्व-पर्यायों में एक बार कनकोदरी नाम की, राजा सुकण्ठ की पटरानी थी। इसी राजा की एक लक्ष्मी नाम की पत्नी थी; लक्ष्मी की आत्मा सम्यग्दर्शन से पवित्र थी। सदा देव, शास्त्र, मुनियों की पूजा करने में तत्पर रहती थी। लक्ष्मी ने महल के एक भाग में जिनचैत्यालय बनवाया था। उस चैत्यालय में वह प्रतिदिन पूजन, भक्ति करती थी।

कनकोदरी पटरानी थी, वह उसकी जिनभक्ति से चिढ़ती थी। ईर्ष्या से भरी रहती थी। एक दिन उसने जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को जिनालय के बाहर फिकवा दिया।

संयोग से उसी समय **संयमश्री** नाम की आर्यिका ने भिक्षा के लिए कनकोदरी के महल में प्रवेश किया। तप के कारण संयमश्री की चारों ओर प्रसिद्धि थी। संयमश्री आर्यिका को जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के अनादर से बहुत दुःख हुआ। उन्होंने उसी समय आहार-जल का तब तक के लिए त्याग कर दिया, जब तक भगवान की प्रतिमा का अनादर दूर नहीं होता।

कनकोदरी के जीव को मिथ्यात्व से ग्रस्त देखकर संयमश्री आर्यिका ने उसे उपदेश दिया। उन्होंने कहा- हे रानी, पुण्य के उदय से आप राजा की पटरानी हो, राजा तुम्हारा सम्मान करता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि आप दूसरों से ईर्ष्या करो। अभिमान धारण करो। **मिथ्यात्व के कारण यह जीव संसार में भटकता है। मिथ्यात्व के कारण दुःख उठाता है।** आपका जीवन कितना- सा है ? ऐसे कार्य करके अगली पर्याय में कहाँ जाओगी? आगामी दुःखों से डरो। मिथ्यात्व को शीघ्र छोड़ो।

आपने भगवान के अनादर का कार्य किया है, उसके फल में तुम्हें नरक- निगोद में बहुत दुःख उठाना पड़ेगा, क्योंकि

कृतार्थोऽपि ये सन्तो भवदुःखमहार्णवात्।
तारयन्ति जनान् भव्यानुपदेशविधानतः॥
उत्तमोत्तमतां तेषां बिभ्रतां धर्मचक्रिणाम्।
अर्हतां ये तिरस्कारं प्रतिबिम्बस्य कुर्वते॥
जन्तूनां मोहिनां तेषां यदनेकभवानुगमम्।
दुःखं संजायते कस्तद्वक्तुं शक्नोति कात्स्न्र्यतः॥

अर्थ- जो स्वयं कृतकृत्य होकर भी उपदेश देकर संसार के जीवों को संसाररूपी सागर से पार ले जाते हैं, जो परमोत्कृष्ट हैं, धर्मचक्र के प्रवर्तक हैं, ऐसे अर्हन्त भगवान की प्रतिमा का जो अनादर करते हैं, ऐसे मोही जीव अनेक भवों/जन्मों तक घना दुःख पाते हैं, उस दुःख को बता सकने में कोई समर्थ नहीं है।

इसलिए हे कनकोदरी, अपने पाप का प्रक्षालन करो।

संयमश्री के सम्बोधन से कनकोदरी अपने पाप के फल को सुनकर ड़र गई। उसने प्रतिमा को समारोह पूर्वक पूर्वस्थान पर विराजमान कराया। भगवान की महापूजा करायी। व्रत, नियम धारण किए। उसने अपना मन धर्म की ओर मोड़ा।

आर्यिका संयमश्री कनकोदरी को धर्म में दृढ देखकर संतुष्ट होकर वहाँ से विहार कर गई।

कनकोदरी ने पुण्यकार्य करते हुए देह छोड़ी। मरकर स्वर्ग में देवी बनी।

वहाँ से आकर राजा महेन्द और रानी हृदयवेगा की अंजना नाम की पुत्री बनी।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के अनादर का पाप अब भी अवशिष्ट है, अतः बार-बार घोर दुःखों को प्राप्त हो रही है। परंतु वह पाप अब समाप्त होने को है, अतः शीघ्र ही सुख को प्राप्त होगी, धैर्य रखो।

यानि यानि च सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्तेः विशेषतः॥

अर्थ- इस पृथ्वीतल पर जो-जो सुख प्राप्त होते हैं, वे सब मुख्यरूप से जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से ही प्राप्त होते हैं।

इसलिए सदा जिनभक्ति में सावधान रहो।

मुनिराज के अमृत- उपदेश से संतुष्ट मनवाली दोनों सखियों ने मुनिराज को बार-बार नमस्कार किया।

मुनिराज आकाशमार्ग से चले गए।

×××××

मुनिराज उस गुफा में पर्यङ्कासन से विराजमान थे, अतः वह गुफा ''**पर्यङ्कगुफा**'' नाम से प्रसिद्ध हुई।

मुनिराज के निवास से पवित्र हुई उस गुफा में प्रसवकाल की

प्रतीक्षा करती हुईं दोनों सखियाँ सुख से रहने लगीं। वसन्तमाला विद्या के बल से अंजना के लिए आहार की व्यवस्था करती थी।

एक दिन शाम के समय एक भयंकर विकराल शेर आ गया। उसने दहाड़े मारीं, उसकी आवाज से जंगल में हलचल बढ़ी। अंजना, उसकी सहेली दोनों घबड़ाकर रोने लगीं। अंजना ने उसी समय नियम लिया कि-

'' यदि इस उपसर्ग में जीवित बचूंगी, तो शरीर और आहार ग्रहण करूंगी, अन्यथा नहीं।''

दोनों सखियों के हृदय भय से जर्जर हो गए थे। उनके शरीर धूजने लगे थे। आँखों से आँसू निकल रहे थे। उनको ऐसी भयभीत मुद्राओं में देखकर गुफा में रहनेवाले **मणिचूल** नाम के गंधर्वदेव को उन पर दया उत्पन्न हुई। उस गंधर्व की पत्नी, जिसका नाम **रत्नचूला** था, उसे उन दोनों पर अधिक दया आयी, तब उसने पति से कहा-

हे देव, देखो तो इन पर कैसा संकट आया है? ये कुलवती, शीलवती नारियाँ हैं, इनकी शीघ्र सहायता कीजिए। हे नाथ मुझ पर कृपा कर, इनकी विपत्ति दूर कीजिए। सिंह और अंजना के बीच सिर्फ तीन हाथ का अंतर रह गया है। जल्दी कीजिए।

मणिचूल गंधर्वदेव ने तुरंत ही विक्रिया से अष्टापद पशु का रूप बनाया और शेर के सामने खड़ा हो गया। इधर अष्टापद पशु और शेर में भयंकर युद्ध हो रहा था। उधर अंजना पञ्चपरमेष्ठी के ध्यान में लीन हो गई।

देखते ही देखते अष्टापद ने शेर को घायल कर भगा दिया। और स्वयं भी अन्तर्धान हो गया।

हे लोगों, देखो, जहाँ जीवन और मरण के बीच तीन हाथ का ही अंतर रह गया था, वहाँ पुण्य के उदय से देवता ने सहायता कर जीवन की विजय करायी। सच में सब पुण्य-पाप के खेल हैं।

शेर के जाने के बाद वसन्तमाला ने ध्यान में लीन सखी को सम्भाला। और कहा- देख सखी, **भव्य जीवों को पुण्य के उदय से वन में भी मित्र मिल जाते हैं।**

दोनों सखियों ने चैन की लंबी सांस ली।

संकट दूर करने पर गंधर्वदेव की पत्नी रत्नचूला ने कहा- हे देव, इस खुशी के अवसर पर मैं गीत गाना चाहती हूँ ।

गंधर्व ने कहा- ठीक है, मैं वीणा आदि बजाकर आपका साथ देता हूँ, आप गाइए।

रत्नचूला ने मंजीरी बजाते हुए गीत गाना प्रारंभ किया। गंधर्व ने विक्रिया के द्वारा तबला, बांसुरी आदि अनेक बाजे बजाने प्रारंभ किए। वह गाना इतना सुरीला था कि वीतरागी को भी एक बार राग उत्पन्न हो जाये। वह गीत जिनेन्द्र भगवान की भक्ति का गीत था। दोनों सखियों के कानों में गीत ने मानो अमृत घोल दिया।

दोनों सखियों ने प्रसव तक गुफा में रहने का निश्चय किया ही था। वहीं मुनिसुव्रत नाथ भगवान की प्रतिदिन पूजन करती थीं।

मणिचूल गंधर्व और रत्नचूला गंधर्वदेवी, हर समय उनकी सहायता करते थे। प्रतिदिन रात्रि को उनको जिनेन्द्र भगवान की भक्ति सुनाते थे। उनके सभी दिन आराम से बीत गए।

योग्य समय पर अंजना ने पुत्र को जन्म दिया। बालक के शरीर की चमक से गुफा का अंधेरा नष्ट हुआ, चारों ओर तेज प्रकाश फैल गया। मानो गुफा ही स्वर्ण की हो गई हो।

यद्यपि ये खुशी के पल थे, पर अंजना दोनों कुलों को याद कर पुत्र को गोद में ले, रोने लगी। उसने नवजात पुत्र से कहा-

हे पुत्र, देख तेरे दादा, नाना बड़े- बड़े राजा हैं। उनके महलों में तेरा जन्म होता तो तेरे जन्म का बहुत बड़ा उत्सव मनाते, पूजा- अर्चना करते, खूब दान देते। पर तुम्हारा जन्म तो ऐसी

जगह हुआ है कि मैं अभागन तुम्हारा जन्मोत्सव भी मना नहीं पा रही हूँ। तुम्हारे जैसे सुंदर रूप को देखकर किसे खुशी न मिलती? हे बेटा, ऐसे घने जंगल में मैं साधनहीन हूँ।

हे पुत्र, जीवन का जहाँ संशय है- ऐसे जंगल में मैं जीवित हूँ- यह तुम्हारे पुण्य के कारण ही, तू धर्म के साथ पूर्ण आयुष्य जी- यही मेरा आशीर्वाद है। ऐसी अनेक बातें कहकर वह रोने लगी।

उसी समय उन्हें आकाश में एक रूका हुआ विमान दिखाई दिया। विमान को देख, अंजना ड़र गई। सोचने लगी- यह कौन शत्रु है, जो पुत्ररूपी मेरे सुख को छीनने आया है। या कोई मेरा भाई आया है ! यह सोच वह विलाप करने लगी। घने जंगल में स्त्री के रोने का शब्द सुनकर उस विमान से उतरकर एक विद्याधर मनुष्य अंजना की ओर बढ़ा। वह और ड़र गई। विद्याधर के साथ उसकी पत्नियाँ भी थीं।

वसन्तमाला ने ड़रते हुए उसका स्वागत किया। पास की शिला पर बैठकर उसने वसन्तमाला से पूछा- बेटी, ये दुखियारी कौन है? इस जंगल में कैसे, क्यों आई है?

वसन्तमाला ने अंजना की सारी हकीकत उससे कही।

तब उस विद्याधर ने भी अपना परिचय देते हुए कहा- बेटी, मेरे पिता का नाम विचित्रभानु है और माँ का नाम सुंदरमालिनी है। मेरा नाम **प्रतिसूर्य** है। मैं हनूरूह द्वीप का राजा हूँ। यह दुःखियारी कोई और नहीं बल्कि मेरी सगी भानजी है। फिर उसने अंजना को उसके बचपन की सारी घटनाएं एक-एक कर याद दिलायीं। पूर्ण विश्वास होने पर अंजना मामाजी के गले मिलकर खूब रोई। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि इतने लम्बे समय के बाद मामा से इस तरह मिलन होगा। प्रतिसूर्य को भी अंजना की हालत देखकर रोना आया। प्रतिसूर्य के आँसू देखकर सभी रोने लगे। रोने के आवेग के रूकने के बाद उनमें बहुत-सी बाते हुईं।

अंजना ने मामा से पूछा- मामाजी , इस पुत्र के ग्रहयोग कैसे हैं?

प्रतिसूर्य के साथ पार्श्वग नाम के ज्योतिषी थे। उनसे पूछा। वसन्तमाला ने उसके जन्म का समय बताया कि जब रात समाप्त होने में आधा प्रहर बाकी था, तब इसका जन्म हुआ है।

पार्श्वग ज्योतिषी ने कहा- आज **चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि है,** श्रवणनक्षत्र है, आज के दिन का स्वामी सूर्य है- इत्यादि ज्योतिषीय बातें कह कर बताया कि

यह बालक सभी ऋद्धि- सिद्धियों का स्वामी होगा। महान् पराक्रमी होगा। परम-सुख निर्वाण को प्राप्त होगा।

प्रतिसूर्य ने एक हजार स्वर्ण मुद्राएं देकर ज्योतिषी का सम्मान किया। अंजना से कहा- बेटी हनूरूह द्वीप चलो, वहीं इस बालक का जन्मोत्सव मनाएंगे।

अंजना ने पुत्र को गोद में लेकर जिनेन्द्र भगवान का स्मरण कर गुफा के स्वामी गंधर्वदेव से बार-बार क्षमा-याचना की। उसने गंधर्वदेव से कहा- हे देव, आपको हमारे कारण बहुत कष्ट हुआ है। हमे क्षमा कर दीजिए। गंधर्वदेव से क्षमा-याचना के बाद सब के साथ विमान पर बैठ गई।

वे सब विमान से उड़े ही थे कि मुस्कुराता बालक माँ की गोद से उछल कर विमान से नीचे गिर गया। अंजना के तो मानो प्राण ही निकल गए। प्रतिसूर्य आदि सभी घबड़ा गए। अंजना ऐसी रोने लगी कि तिर्यञ्चों को भी रोना आये। प्रतिसूर्य ने तुरंत विमान नीचे उतारा।

नीचे आकर सभी हक्के बक्के रह गए, क्योंकि बालक जिस शिला पर गिरा, उस शिला के कईं टुकडे हो गए, पर बालक को खरोंच भी नहीं आयी थी। बालक मुँह में अंगूठा देकर मुस्कुराते हुए खेल रहा था। अंजना ने लपककर बालक गोद में उठा लिया,

उसका मस्तक चूमकर उसे गले लगाया।

राजा प्रतिसूर्य ने कहा- देखो, कितने आश्चर्य की बात है कि वज्र जैसी शिलाएं टुकड़ों में तब्दील हो गईं, पर बालक को कुछ भी नहीं हुआ। जन्मते बालक में ऐसी शक्ति है, जवान होने पर तो कहना ही क्या? निश्चित ही यह इस जीव का अंतिम शरीर है, यह जीव इसी भव से मोक्ष जायेगा। बालक के जीव को चरमशरीरी, उसके शरीर को चरम शरीर जानकर राजा प्रतिसूर्य ने हाथ मस्तक से लगा तीन प्रदक्षिणाएं देकर अपनी स्त्रियों के साथ उस बालक को नमस्कार किया। बालक ने पर्वत(शैल) में जन्म लिया, पर्वत की शिलाओं के टुकड़े किए थे, इसलिए उसका नाम ''**श्रीशैल**'' रखा।

हनूरूह नगर में पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। वहाँ पहुँचने पर बालक का जन्म महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया। चूंकि बालक का जन्म-उत्सव हनुरूह नगर में मनाया गया, अतः वह **हनुमान** नाम से भी प्रसिद्ध हुआ।

उस नगर में देवकुमार की तरह लीलाएं करनेवाला सबका दुलारा, वह श्रीशैल, हनुमान सबका प्यारा बना।

पूर्व जन्म के संचित पुण्यकर्म से क्या संभव नहीं है? देखो, पुण्यकर्म के बल से हनुमान् के जन्मते ही अंजना का उसके मामाजी से मेल हो गया, गंधर्वदेव की सहायता प्राप्त हुई। हनूरूह नगर में धूमधाम से जन्मोत्सव मनाया गया। विमान से गिरने पर शरीर की बजाय शिलाओं के टुकड़े हुए। मान सम्मान, नाम प्राप्त हुए। सच है **पूर्व कर्म के बल से वज्र भी फूल के समान सुंदर कोमल बन जाता है। अग्नि भी जल के समान शीतल बन जाती है। सर्प भी सुंदर हार बन जाता है, विष भी अमृत बन जाता है।**

×××××

उधर अंजना से मिलकर पवनंजय सीधे रावण के पास गया था। उसने रावण की आज्ञा से वरूण के साथ युद्ध किया। युद्ध लम्बा चला था। वह वरूण को पकड़ कर लाया, उसके पास बंदी बने खरदूषण को भी छुड़ाकर लाया। रावण और वरूण के बीच सुलह करायी। रावण और वरूण दोनों ने पवनंजय का बहुत सम्मान किया।

रावण से आज्ञा लेकर पवनंजय तुरंत ही लौटे। सारे रास्ते अंजना को याद करते आये। उनके आने की खुशी में पहले से नगर सजाया गया था। सुहागने आरती लेकर खड़ी थीं। सबसे आशीर्वाद पाते समय उनकी आँखे अंजना को ढूंढ रही थीं। जब अंजना नहीं दिखी, तब वे उसे देखने की इच्छा से सीधे अंजना के महल में गए। महल के हर कोणे में उसे ढूंढा उसके नहीं दिखने पर अनहोनि की आशंका से बेहोश होकर गिरे। अंजना के महल में जाते समय प्रहसित उनके साथ था, उसने उन्हें संभाला। होश में आने पर प्रहसित ने पूछा- मित्र, यह क्या है?

पवनंजय ने कहा- मित्र, तुम मेरे हृदय को जानते ही हो। अंजना के नहीं दिखने से यह महल मुझे जंगल की तरह दिख रहा है, मन में बेचैनी हो रही थी, इसलिए ऐसा हुआ है।

उसी समय राजा, रानी आदि पवनंजय के पास आए। उन सबको पवनंजय के इस तरह के व्यवहार से आश्चर्य हुआ। पवनंजय ने अंजना से मिलने की बात बतायी और बताया कि अब मैं अंजना के बिना एक क्षण भी जीवित रह नहीं पा रहा हूँ। मुझे जल्दी उसका पता बताओ, वह कहाँ है?

तब रानी केतुमती ने उसे बताया कि बेटा वह गर्भवती हो गई थी, मैंने उस पर विश्वास नहीं किया, हाँलांकि उसने मुझे तुम्हारे द्वारा दिए गए कड़े को दिखाया था, फिर भी मैंने उस पर

यकीन नहीं किया। तुम्हारे पहले के व्यवहार को ध्यान में रखकर उसे कुलटा समझा और घर से निकाल दिया। उसे उसके पिता के घर पहुंचाया था।

पवनंजय- माँ यह आपने क्या किया? मेरे आने तक तो उसको यहाँ रहने देती। अरी माँ, यदि वह ऐसी होती तो अपने आप ही चुपके से निकल जाती। आपको निकालने की आवश्यकता ही नहीं थी। माँ, वह कुलटा नहीं, सती है। आपने ऐसा अपराध क्यों किया? **केतुमती-** बेटा, अनजाने में ऐसा हो गया, मैं तुमसे और परोक्ष में अंजना से भी क्षमा चाहती हूँ।

पवनंजय ने मित्र प्रहसित से कहा- मित्र, चलो, देर मत करो, यहाँ रहा नहीं जा रहा है। दोनों मित्र बिना देरी किए महेन्द्रनगर पहुँचे।

पवनंजय को आया सुन राजा महेन्द्र उपहारादि लेकर आये। उनकी अगवानी के लिए अनेक सामन्त आदि नगरवासी आये। स्वागत-सत्कार के बाद पवनंजय की निगाहों ने अंजना को खोजा। नहीं दिखी, तब उन्होंने एक बालिका से पूछा- अंजना कहाँ है? क्या तुम्हें पता है?

उस बालिका ने जवाब दिया- तुम्हारी अंजना यहाँ नहीं है। यह सुनकर पवनंजय के हृदय पर मानो वज्र गिर गया, उसका शरीर ढीला पड़ गया।

उन्होंने राजा महेन्द्र से पूछा, तब राजा महेन्द्र ने कहा कि बेटा, हमने भी उस पर विश्वास नहीं किया। जैसा लोगों से सुना, उस पर विश्वास कर बदनामी के ड़र से उसे शरण नहीं दी।

पवनंजय ने कहा- आप तो पिताजी थे, बचपन में वह आपके गोद में खेली, आपकी ऊंगली पकड़कर उसने चलना सीखा। उसकी तुतली बोली ने आपको प्रसन्न किया, जिसका चेहरा देखना आपको शुभशगुन लगता था, उसे आपने किस बुद्धि से शरण

नहीं दी- समझ में नहीं आ रहा है। कम से कम उसके गर्भ पर तरस खाते, उसके जन्म तक इंतजार करते, मेरा इंतजार करते, बाद में उसे शिक्षा देते तो ठीक रहता, अब तो मेरा जीवन भी संशय में आ गया है। उस समय उसका जीवन भी संशय में रहा होगा। झूठे मान के लिए आपने सती का विश्वास नहीं किया। अस्तु। मित्र प्रहसित चलो, यहाँ की हवा भी मुझे चुभ रही है। चलो मेरी प्रिया को, अन्यत्र खोजते हैं। न जाने वह बेचारी कहाँ ? किस हाल में होगी? होगी या नहीं?

बाहर आकर पवनंजय ने कुछ गंभीर होकर कहा- मित्र, आप सूर्यपुर घर जाकर गुरूजनों को समाचार देना। मेरी वजह से आपको बहुत कष्ट उठाने पड़े हैं, अब इससे ज्यादा कष्ट नहीं देना चाहता हूँ। आप जाइए घर पर मेरे समाचार देकर वहीं रहिए।

प्रहसित- नहीं, मैं आपको इस स्थिति में छोड़कर नहीं जा सकता। आपकी स्थिति इस समय बहुत दुःखदायी है, मेरा इस समय आपके साथ रहना बहुत जरूरी है।

पवनंजय- आपको मेरी कसम है, आप जाइए। मुझे कर्मों के भरोसे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मैं अकेले ही पृथ्वी पर भ्रमण करूंगा, उसे हर जगह ढूंढूंगा। नहीं मिलने पर अपने आपको खो दूंगा। आप जाइए, आपको मेरी कसम है।

प्रहसित- मित्र।

पवनंजय- आगे कुछ मत कहिए, जाइए, बस जाइए।

दुःखी मन से प्रहसित सूर्यपुर आया।

×××××

पवनंजय **कालमेघ** नामक हाथी पर सवार होकर देश देशान्तर में उसे खोजने लगा। कभी जंगल में, कभी पर्वत पर, कभी संघों में, कभी धर्मशाला आदि सभी सम्भावनावाले स्थानों

पर उसे खोजने लगे। न उन्हें खाने का होश था, न पीने का, न रात को नींद, न दिन में चैन। उन्हें अपने होने का भी होश नहीं था। होश था तो सिर्फ अंजना के विषय में। और कुछ नहीं, वे हर जगह उसे टटोल रहे थे, पर दुर्भाग्य देखिए कि उन्हें हर जगह निराशा ही हाथ लगी थी। अंजना के बिना मेरा जीवन, जीवन नहीं बल्कि जीते हुए मरण ही है। मेरी अंजना, कहाँ होगी? यह उन्हें समझ में नहीं आ रहा था, अनुमान नहीं हो रहा था। फिर भी उसकी तलाश जारी थी। न दिन देखा, न रात देखी। निरन्तर अंजना की खोज में लगे रहे। अंजना को खोजते- खोजते उनका शरीर सूख गया था, मलीन हो गया,काला पड़ गया था।

कईं जगह तलाश करके अंत में **भूतरव** नाम के जंगल में पहुंच गए। वहाँ उन्होंने सोचा कि अंजना इस दुनिया में नहीं है, होती तो मिल जाती। वह मर गई होगी, मुझे भी शरीर छोड़ देना चाहिए। इसके बाद पवनंजय ने अपने कालमेघ नाम के हाथी से कहा-

हे गजराज! आपका और मेरा साथ यहीं तक था, आप जाइए। पवनंजय के बार- बार कहने पर भी कालमेघ हाथी वहाँ से नहीं गया। सच्चे मित्र की तरह पास ही रहा।

पवनंजय ने यह निश्चय किया कि यदि अंजना नहीं मिली तो मैं इसी वन में शरीर छोड़ दूंगा।

×××××

इधर प्रहसित जब सूर्यपुर गया, उसने पवनंजय के समाचार सुनाए। पवनंजय के समाचारों को सुनकर पवनंजय के माता-पिता, समस्त भाई-बन्धु परम शोक में डूब गए। केतुमती ने रोते-रोते रूंधे कंठ से प्रहसित से कहा- अपने मित्र को मौत के मुँह में छोड़कर क्यों आए हो? क्या तुम्हें उसकी जरा भी परवाह नहीं थी?

प्रहसित- नहीं, अम्बे ऐसी बात नहीं है। मैंने उनका साथ

नहीं छोड़ा। उन्होंने शपथ देकर मुझे यहाँ भेजा है और उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी की है कि यदि मैं अंजना को नहीं देखूंगा तो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा।

यह सुनकर केतुमती दहाड़ें मारकर विलाप करने लगी। केतुमती को घेरकर बैठी हुई महिलाएं भी रोने लगीं। केतुमती कहने लगी-

सच को जाने बिना यह मैंने क्या किया? मैंने पतिव्रता को पापिनी समझा। मैंने अनजाने में कैसा कर्म किया है? कैसा कर्म बांधा है? मुझ पापिनी ने बेटे और बहु दोनों के जीवन को संशय में ड़ाल दिया है।

हाय बेटा, हे बेटी अंजना! इस अभागन को छोड़कर कहाँ गए हों? आओ बेटा, आकर दर्शन दो, मुझे क्षमा करो। हे पवन! बेटा आपके बिना महल, नगर, राज्य, देश सब सूने हैं। आओ बेटा, अंजना बेटी को भी साथ ले आना। बेटा, शोक से संतप्त इस माँ को शांत करो, आप लोगों के दर्शन के बिना मैं देह छोड़ दूंगी। जल्दी आओ पुत्रों, जल्दी आओ।

इस प्रकार विलाप करती हुई केतुमती को राजा प्रहलाद तसल्ली दे रहे थे। शोक के कारण उनकी आँखों से भी टप- टप आँसू गिर रहे थे। केतुमती को शांत कर राजा प्रल्हाद प्रहसित को साथ लेकर पवनंजय की खोज के लिए निकल गए। उन्होंने सभी विद्याधर राजाओं को भी साथ लिया।

वे सभी विद्याधर बड़े प्रयत्न से पृथ्वी पर पवनंजय की खोज करने लगे।

इधर प्रह्लाद के दूत से राजा प्रतिसूर्य को यह समाचार मिला तो वे शोक में डूब गये। उन्होंने यह समाचार अंजना से कहा। अंजना पहले से ही दुःखी थी, अब इस समाचार से और भी

अधिक दुःखी होकर विलाप करने लगी। विलाप में वह कहने लगी-

हे नाथ, आप ही तो मेरे हृदय के बंधन थे फिर निरंतर क्लेश भोगनेवाली इस अबला को छोड़कर कहाँ चले गए? हे नाथ! मैं आपकी प्रतीक्षा में ही जीवित हूँ , आइए, अपने पुत्र को गोद में लीजिए, आकर अमृततुल्य समागम पाइए। मैं विपत्ति में हूँ, आप महापुरूष हैं। मेरी विपत्ति दूर कीजिए, क्योंकि-

न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हि।

अर्थ- महापुरूष ! विपत्ति में पड़े हुए प्राणियों का हित करना कभी नहीं छोड़ते।

आपके बिना मुझे इन प्राणों से क्या प्रयोजन है? मुझ अभागिनी के लिए आप कैसी दशा को प्राप्त हुए हो।

हे वसन्तमाला, देख तो मुझे विरहरूपी अंगारों की शय्या पर कैसे लेटना पड़ रहा है?

वसन्तमाला ने कहा- हे देवी! ऐसी अमांगलिक रट मत लगाओ। मुझे विश्वास है कि पवनंजय आपके पास अवश्य आयेंगे। विश्वास करो, धैर्य रखो, विलाप मत करो।

''हे अंजने ! मैं, तुम्हारे पति के समाचार लेकर आता हूँ''- कहकर राजा प्रतिसूर्य विमान में चढ़कर आकाशमार्ग से चले गए।

×××××

इस प्रकार विजयार्ध पर्वत के निवासी राजा प्रल्हाद तथा अनेक विद्याधर राजा तथा त्रिकुटाचल के निवासी राजा प्रतिसूर्य पवनंजय की खोज करने लगे।

खोजते- खोजते वे सब भूतरव वन में पहुँचे। वहाँ उन्हें कालमेघ हाथी दिखाई दिया। यह पवनंजय का हाथी है। ऐसा एक-दूसरे से कहने लगे। यदि हाथी यहीं है तो पवनंजय भी यहीं होंगे।

यह कालमेघ हाथी मित्र के समान सदा ही पवनंजय के साथ रहता है। आज भी उन्हीं के साथ होना चाहिए। कालमेघ हाथी को देखकर सभी के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई।

यह सोच सभी आकाश से उतरकर कालमेघ हाथी के पास गए। हाथी विद्याधरों के कोलाहल से घबरा गया, उसे गुस्सा आया, गुस्से से चिंघाड़ने लगा। वह विद्याधरों की ओर दौड़ा। उसे गुस्से में जानकर विद्याधर इधर- उधर दौड़ गए।

कालमेघ हमारी भीड़ से अपने स्वामी की रक्षा कर रहा है- यह बात विद्याधरों के समझ में आ गई। पवनंजय यहीं पर हैं, ऐसा विश्वास भी हो गया।

कालमेघ को पवनंजय से दूर कैसे करें? इसी का विचार वे सब कर रहे थे। किसी वृद्ध विद्याधर ने कहा-

कालमेघ को वश में करने के लिए किसी हथिनी की व्यवस्था करो, जिसके राग से वह यहाँ से दूर हो जायेगा, क्योंकि वशीकरण के समस्त उपायों में स्त्रीसमागम सर्वोत्तम उपाय है। कहा है-

उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरण वस्तुनि।
कामिनी संगममुज्झित्वा नापरं विद्यते परम्॥

अर्थ- वशीकरण के समस्त उपायों में स्त्री-समागम को छोड़कर और दूसरा उत्तम उपाय नहीं है।

विद्याधरों ने हथिनियों के झुण्ड के द्वारा कालमेघ को दूर किया। कालमेघ के दूर जाने पर उन्हें उसी स्थान पर पवनंजय दिखाई दिए। जिसका समस्त शरीर ढीला हो रहा था, चित्र या काठ की तरह जिसका आकार था, जो सुस्त हो धरती पर पड़ा था, ऐसे पवनंजय ने विद्याधरों के समूह को देखा।

विद्याधरों ने पवनजंय के पास जाकर उनका उपचार किया। उनको उठाकर एक स्थान पर बिठाया। उनसे बातचीत का प्रयास

किया। परंतु वे तो मुनि के समान मौन ही बैठे रहे, उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा।

माता- पिता ने प्रीति से उनका मस्तक सूँघा। बार- बार आलिंगन किया। उन्होंने खुशी के आँसुओं से पवनंजय को भिगो दिया और कहा-

बेटा, हमसे क्या अपराध हुआ है, जो इस तरह हमसे कहे बिना आए हो? हम भी आपके साथ अंजना की खोज करते। माना कि हमने उसका विश्वास नहीं किया था, पर विश्वास होने पर उसे खोजने में आपकी सहायता करते। अब भी उसे खोजने में आपकी सहायता करेंगे।

तुम्हारा शरीर मुलायम शय्या पर रहने योग्य है, उसे आपने इस निर्जन भयंकर वन में क्यों ड़ाल रखा है?

माता- पिता के ऐसा कहने पर भी उसने एक शब्द नहीं कहा। केवल इशारे से यह बता दिया कि मैं मरने का निश्चय कर चुका हूँ। अंजना को पाये बिना, देखे बिना न बोलूंगा, न हि जलादिक ग्रहण करूँगा।

उसने मन ही मन प्रतिज्ञा कर रखी थी कि अंजना को देखे या पाये बिना जलपान, भोजन ग्रहण नहीं करेगा, न किसी से बात करेगा।

उस प्रतिज्ञा के कारण वह माता- पिता से बात नहीं कर पा रहा था, माता- पिता से बात नहीं कर पाने के कारण मन ही मन दुःखी भी हो रहा था।

जो मौन के कारण चुपचाप बैठा था, जिसका मस्तक नीचे झुका हुआ था, ऐसे पवनंजय को देखकर माता- पिता, सभी विद्याधर शोक में डूब गए। सबने सोचा- पवनंजय मृत्यु का निश्चय कर चुके हैं। वे दीन दुःखी विद्याधर हाथों से पवनंजय को छू रहे थे।

और उनके माता-पिता के साथ विलाप कर रहे थे।

इसी बीच हँसते हुए प्रतिसूर्य ने पवनंजय के पास आकर सब से कहा-

हे विद्याधरों, हे लोगों, आप लोग शोक बंद करो। दुःखी मत होवो। मैं पवनंजय को अभी प्रसन्न करता हूँ।

इसके बाद प्रतिसूर्य ने पवनंजय का आलिंगन कर कहा- हे कुमार सुनो, अंजना के बारे में शुरू से अब तक की घटनाएं बताता हूँ-

सन्ध्याभ्र नाम के पर्वत पर **अनंगवीचि** नाम के मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। मैं उनकी वंदना कर आ रहा था कि मैं किसी स्त्री के रोने के वीणा के शब्द के समान शब्द का अनुसरण कर एक पर्वत की ऊंची चोटी पर गया। उस पर्वत की गुफा में मुझे एक स्त्री दिखाई दी। उससे उसका परिचय पूछने पर पता चला कि वह स्त्री कोई और नहीं बल्कि हमारी भानजी अंजना है।

मैंने दुःखी भानजी को सांत्वना देकर शांत किया। उसने जिस बालक को जन्म दिया था, वह इतना पुण्यशाली था कि उसके शरीर के प्रकाश से गुफा में उजाला हुआ था, गुफा स्वर्ण से बनी हुई के समान पीली हो गई थी।

अंजना ने पुत्र को जन्म दिया है। मैं पुण्यात्मा पुत्र का पिता हूँ- यह सोचकर पवनंजय को बहुत संतोष हुआ और प्रतिसूर्य से पूछने लगे–

''फिर क्या हुआ?''।

पवनंजय के मुँह से शब्द सुनकर सभी विद्याधर प्रसन्न हुए। माता- पिता की खुशी का तो ठिकाना नहीं था।

प्रतिसूर्य ने आगे बताया कि जब हम लोग भानजी अंजना और उसके पुत्र को लेकर विमान पर बैठे ही थे कि अचानक

बालक विमान से पर्वत की चोटी पर गिर गया।

बालक के गिरने की बात सुनकर पवनंजय विद्याधरों के **साथ** विषाद को प्राप्त हुए। सब ओर सन्नाटा छा गया था।

प्रतिसूर्य ने पवनंजय और विद्याधरों से कहा-

आप लोग विषाद मत कीजिए, आगे के हर्ष भरे वृतान्त को सुनिए।

प्रतिसूर्य ने आगे बताया-

हे कुमार, जब हाहाकार करते हुए हम सब बालक के पास गए, तब हम बड़े अचम्भित रहे। क्योंकि उस बालक के शरीर से शिला के टुकड़े टुकड़े हो गए थे, पर बालक को खरोंच तक नहीं आयी थी, बल्कि वह तो मुँह में अंगूठा लिए खेल रहा था। हमने उसे मोक्षगामी जानकर नमस्कार किया, उसकी प्रदक्षिणाएं दीं उसकी स्तुति की और उसका ''**श्रीशैल**'' यह नामकरण किया। उसे लेकर हम अपने ' हनूरूह' द्वीप में गए। वहाँ उसके जन्म का उत्सव मनाया। वह हमारे पास रहकर हमको प्रसन्न करता हुआ बड़ा हो रहा है। हनूरूह द्वीप में उसका लालन- पालन- संवर्धन हुआ है, इसलिए ''**हनुमान्**'' यह उसका दूसरा नाम अपने- आप प्रसिद्ध हुआ। आपका पुण्यात्मा पुत्र, शीलवती सती अंजना हमारे नगर में रह रही है।

इस तरह का आनन्ददायक समाचार सुनकर न केवल पवनंजय, बल्कि विद्याधर आदि सभी आनंदित हुए।

अंजना और पुत्र के सुखद समाचार से प्रसन्न हुए पवनंजय ने कहा- अब देरी मत करो, जल्दी ही मुझे अंजना व पुत्र के पास हनूरूह द्वीप में ले चलो

वे सभी विमानों से हनुरूह द्वीप में गये। वहाँ राजा प्रतिसूर्य ने सबका स्वागत किया। वहाँ महान् उत्सव मनाया। अंजना-

पवनंजय की खुशी का ठिकाना नहीं था। चिरकाल के बाद पत्नी को पाकर पवनंजय स्वस्थ हुए। आनंदित होकर देव की तरह रमण करने लगे। पुत्र को पाकर उनकी खुशी दुगुनी हो गई।

कुछ दिन वहाँ रहकर पवनंजय घर आए। पिता के दीक्षा लेने के बाद पवनंजय ने राजपद संभाला। अच्छीतरह से राज्य संचालन कर स्वयं दीक्षा लेकर वन गए। समाधिमरण कर स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया।

हनुमान को समस्त विद्याएं सिद्ध हो गई थीं। गृहस्थ जीवन के बाद **हनुमान महाव्रत धारण कर तुंगी पर्वत से मोक्ष गए।**

अंजना व्रत धारण कर आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण पूर्वक देह छोड़कर स्वर्ग गई।

×××××

भजन

ऐसा ज्ञान बहादो प्रभुजी चरणों से लग जाऊँ मैं
सब अन्धकार मिटा दो प्रभुजी दर्श तेरा कर पाऊँ मैं। ऐसा.....

1. करो कृपा आदीश्वर मेरे मैं मूरख नादान हूँ
   नहीं आराधना जप–तप–जानूँ मैं अवगुणी अंजान हूँ
   दो ऐसा वरदान ए मालिक सुमिरण तेरा कर पाऊँ। ऐसा ज्ञान.....

2. मैं आराधक प्रभुवर मेरे निशदिन तेरी ओट है
   तेरी कृपा से ही ऐ भगवन जीवन में मेरे ज्योत है
   चरण लगा लो हे महावीर तुम पर बलि – 2 जाऊँ मैं। ऐसा ज्ञान.....

3. जो भी आते शरणा तेरी, मनवांछित फल पाते हैं
   पार लगा दो भव से हम को, शरणा तेरी आये हैं
   धन्य घड़ी समझूँगा उस दिन, दरशन तेरा कर पाऊँ। ऐसा ज्ञान.....

4. सती राजुल

पश्चिम पुष्करार्ध के पश्चिम विदेह क्षेत्र में रूप्य नामक पर्वत की उत्तर श्रेणी में अरिंजयपुर नाम का नगर है। इस नगर में अरिंजय नाम का राजा रहता था। अजित सेना नाम की उसकी स्त्री थी। उनके प्रीतिमति[1] नाम की पुत्री थी।

प्रीतिमति को अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं। वह अपने गुणों के कारण उसे क्षेत्र में प्रसिद्ध थी। **गुण ही मनुष्य को प्रसिद्ध और अवगुण उसे अप्रसिद्ध कर देते हैं। वीतरागता ही गुण है तथा रागद्वेष ही अवगुण हैं। जो जीव जितने अंश में वीतरागी होता है, वह उतने अंश में गुणी होता है तथा जितने अंश में रागी-द्वेषी होता है, वह उतने अंश में अवगुणी माना जाता है। वीतरागी की शत्रु भी प्रशंसा करता है तथा रागी- द्वेषी की उसके सगे भी निंदा करते हैं।** प्रीतिमति गुणियों में एक गुणी व्यक्तित्व था। गुणरूपी आभूषणों को धारण करने वाली, प्रीतिमति से राजा, रानी आदि सभी प्रसन्न रहते थे।

एक दिन अरिंजय राजा के पास प्रीतिमति आई थी, तब राजा ने बेटी से पूछा-बेटी, **योग्य वर को बेटी सौंप देने पर पिता को खुशी होती है।** बेटियाँ एक प्रकार से पिता के घर रखी हुई धरोहर होती हैं। आपकी अवस्था देखकर हमें विचार आ रहा है कि आपको योग्य गुणी व्यक्ति को सौंप देना चाहिए।

प्रीतिमति- पिताजी जो आपको योग्य लगे, वह कीजिए। **पिता, माता आदि परिजन सन्तानों के हितैषी ही होते हैं। धनी हो या निर्धन सभी परिवारजन सन्तानों को खुश ही देखना चाहते हैं। सुख के लिए सम्पत्ति नहीं, संस्कार चाहिए।** आपके द्वारा दिए गए वीतरागी संस्कारों से आपकी बेटी हर परिस्थिति का सामना करके सुखी रहने में समर्थ है।

---

1. राजुल का जीवन

अरिंजय राजा – फिर भी बेटी, हम आपको थौपना नहीं, आपकी इच्छानुसार सौंपना चाहते हैं। इसलिए आप अपनी इच्छा बताइए।

प्रीतिमति को अनेक विद्याएँ सिद्ध थीं, उन विद्याओं में से प्रीतिमति को अपनी गतिविद्या पर अभिमान था। उसने पिता से कहा– पिताजी, अपने मुँह से हम कुछ नहीं कहना चाहते हैं, फिर भी मन में इतनी–सी आशा है कि यदि कोई वीर हमें गति में हराने में समर्थ हो तो वह हमारे विचार से हमारे वर के रूप में उचित रहेगा।

अरिंजय राजा– बेटी, आपकी इच्छा जानकर हमें खुशी हुई है। अपके योग्य वर के लिए गतियुद्ध नाम का स्वयंवर रचते हैं। उसमें सभी प्रसिद्ध राजकुमारों को आमंत्रित करते हैं।

अरिंजय राजा ने योग्य दिन, योग्य मुहूर्त में प्रीतिमति के वर के लिये गतियुद्ध नाम का स्वयंवर करना तय किया था।

गतियुद्ध का स्वरूप यह था कि एक पुष्पमाला को मेरू के शिखर से छोड़ा जायेगा, मेरू की तीन प्रदिक्षणाएं देकर माला को धरती पर गिरने से पूर्व पकड़ने में जो वीर समर्थ होगा, वह वीर प्रीतिमति के द्वारा पहनायी जानेवाली वरमाला के लिए योग्य समझा जायेगा।

गतियुद्ध नाम का स्वयंवर योग्य दिन शुरू हुआ।

×××××

इस स्वयंवर में पश्चिम पुष्करार्ध के पश्चिम विदेहक्षेत्र के रूप्य पर्वत की उत्तर श्रेणी के गण्यपुर नाम के नगर के सूर्याभ राजा के चिन्तागति[1], मनोगति, चपलगति नाम के तीन पुत्र आये थे। (चिन्तागति इस भव से सातवें भव में नेमिनाथ तीर्थंकर बनेगा।)

मनोगति और चपलगति दोनों प्रीतिमति के रूप की

1. नेमिनाथ भगवान का जीव

ओर ज्यादा आकर्षित थे। चिन्तागति अपने दोनों छोटे भाइयों की भावनाओं को उनके शरीर के हावभावों से समझ गया था। उसने दोनों से कहा–

हे मनोगति, चपलगति! मेरा प्रीतिमति में इतना मन नहीं है, मैं तो कुतुहलवश सिर्फ गतियुद्ध देखने आया हूँ। इसलिए इस युद्ध में आप दोनों ही हिस्सा लीजिए। उन दोनों ने बड़े भाई की हाँ में अपनी हाँ मिला दी।

तय समय पर गतियुद्ध शुरू हुआ। एक–एक राजकुमार एक–एक कर आते गए, परंतु कोई भी राजकुमार पुष्पमाला को धरती पर गिरने से पहले पकड़ने में समर्थ नहीं हुआ।

कइयों ने तो अन्य राजकुमारों की हार देखकर उसमें हिस्सा ही नहीं लिया। चुपचाप बैठे रहे। कईं लौट गए।

जब मनोगति की बारी आयी, तब वह बड़े उत्साह से गया, पर निराशा ही उसके हाथ लगी। चपलगति भी गया, वह भी निराश लौट आया।

चिन्तागति अपने भाइयों की असफलता से दु:खी था। उसने स्वयं गतियुद्ध में जाने का फैसला किया। मनोगति ने उससे कहा–

भैय्या, आपका मन राजकुमारी में नहीं है, फिर क्यों हिस्सा ले रहे हों?

चिन्तागति बोला–**छोटे भाई, पुत्रों के समान होते हैं।** कोई भी स्वाभिमानी बड़ा भाई, छोटे भाइयों के अपमान को सहन करने में असमर्थ होता है। वह उनके अपमान का बदला लेता है। आप लोगों के प्रति राग ही मुझे न चाहते हुए भी इस गतियुद्ध में हिस्सा लेने के लिए मजबूर कर रहा है। इस पर चपलगति ने कहा–

यदि भैय्या, आप भी असफल हो गये तो हम छोटे भाई भी नहीं चाहते कि बड़े भैय्या का अपमान हो, इसलिए आप

रहने दीजिए। चलें, हम घर चलते हैं।

चिन्तागति के स्वाभिमान को चोंट पहुँची, उन्होंने चपलगति से कहा–

नहीं छोटे, ऐसा नहीं होगा। मैं इस युद्ध को तुम दोनों के लिए अवश्य जीतूंगा। यह मेरी जिद्द है, इच्छा भी है कि यह आप दोनों के लिए जीत लूँ। इस पर मनोगति बोला–

भैय्या मान लिजिए, आप जीत भी गए तो इससे क्या फायदा? आप तो उससे विवाह के इच्छुक हो नहीं, फिर युद्ध जीतने का क्या फायदा? वह राजकुमारी तो कुँवारी ही रह जायेगी?

मनोगति की बात सुनकर बिना सोचे–समझे चिन्तागति ने कहा–

स्वयंवर में जीतने के बाद राजकुमारी को हमारी इच्छा का ध्यान रखना पड़ेगा। जैसा हम कहेंगे, वह वैसा ही करेगी। हमारी इच्छानुसार चलने के लिए वह बाध्य होगी।

दोनों छोटे भाईयों ने एक साथ कहा भैय्या, जैसी आपकी इच्छा यह कहकर दोनों चुपचाप बैठ गए।

चिन्तागति उत्साह के साथ गया। उसने देव – शास्त्र – गुरु को नमस्कार कर माला के साथ गतियुद्ध प्रारंभ किया। माला के धरती पर गिरने से पहले ही मेरु की तीन प्रदक्षिणाएं दीं तथा माला को धरती को छुने से पहले ही पकड़ लिया। इस तरह से उसने गतियुद्ध में जीत हासिल कर ली।

प्रीतिमति खुश थी। वह ज्यादा खुश इसलिए थी, क्योंकि चिन्तागति ने उसके द्वारा पूर्व में किये गये प्रयासों से काफी कम समय में मेरु की तीन प्रदक्षिणाएं देकर माला को पकड़ा था।

प्रीतिमति दासियों के साथ मन में चहकती हुई हाथ में वरमाला लेकर चिन्तागति राजकुमार के पास गई। उसने ज्योंहि चिन्तागति के गले में वरमाला ड़ालनी चाही। त्योंहि

चिन्तागति ने उसकी वरमाला पहिनने से इन्कार कर दिया और कहा–आप मुझे वरमाला मत पहिनाइए।

प्रीतिमति ने इसकी वजह पूछने पर चिन्तागति ने कहा–

मेरे छोटे भाई मनोगति और चपलगति आपकी ओर आकर्षित हैं, मैं नहीं। इस पर प्रीतिमति ने कहा–

मुझसे विवाह का जब आपका मन नहीं था, तब आपने स्वयंवर में हिस्सा लिया ही क्यों? क्यों एक कन्या को लज्जित कर रहे हों? क्यों अपमानित कर रहे हों?

प्रीतिमति के आवेशों, भावों, क्रोध व नाराजगी को जाननेवाले चिंतागति राजकुमार ने कहा–

हे देवी! आप के साथ विवाह का तो मेरा भी मन था, इसलिए स्वयंवर में हिस्सा लेने के लिए आया था, परंतु मेरे छोटे भाइयों की आपके प्रति विशेष इच्छा को देखकर मेरी इच्छा अपने आप मिट गई। जब वे इस युद्ध में हार गए, तब उनके हताश चेहरों को देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। इसमें उनका अपमान समझ कर कुछ प्रतिशोध की भावना से मैं इस गतियुद्ध में आया। संयोग से यह युद्ध मेरे द्वारा जीता गया। पुण्योदय से जीते हुए राजकुमार के रूप में आपके सामने खड़ा हूँ। इसमें आपका अपमान करने का या आपको लज्जित करने का कोई भाव नहीं है। मैं भाइयों के प्रति राग से मजबूर हूँ। इसलिए न चाहते हुए भी आपको मना कर रहा हूँ।

गतियुद्ध में आपको जीता गया है। अब आप हमारे आधीन हों। इसलिए जैसा हम कहेंगे, वैसा आपको करना होगा। हमारे आदेश से यह वरमाला आपको इन दोनों में से किसी एक के गले में वरमाला पहिनानी होगी।

चिन्तागति वरमाला पहिनेगा नहीं, यह सोच कर दुःखी राजकुमारी प्रीतिमति ऐसी विषम परिस्थिति देखकर और दुःखी

हुई, परंतु दृढ़ स्वभाव वाली प्रीतिमति ने गतियुद्ध जीतते ही सिर्फ चिन्तागति को ही पति के रूप में देखा था। वह चंचल मनवाली नहीं थी। इसलिए उसने दृढ़ता से कहा- आपने हमें गतियुद्ध में जीता है। यह सब जानते हैं। हम अब आपके आधीन हैं, आपकी सेविका हैं, यह बात भी सही है। आपकी आज्ञा ही हमें शिरोधार्य होनी चाहिए, और है भी, परंतु आपकी आज्ञा हमारे कुल-शील की रक्षावाली होनी चाहिए, न कि हमारे कुल-शील को नष्ट करने वाली, इसलिए जैसा आप कहेंगे, वैसा हम करेंगे। परंतु उसमें हमारे कुल, शील, मर्यादाओं का उल्लंघन न होता हो। स्वयंवर आपने जीता है, इसलिए वरमाला के हकदार आप हैं, यदि उन्होंने स्वयंवर जीता होता तो वे वरमाला के हकदार होते, परंतु उन्होंने स्वयंवर तो जीता नहीं। हमारे कुल व शील की मर्यादा के विरूद्ध होने से हम आपकी यह आज्ञा मानने में असमर्थ हैं। आप हमें अग्नि में कूदने के लिए कहें, जहर पीने के लिए कहें, या जो आपको अच्छा लगे वह कहें, हम सहर्ष तैयार हैं, परन्तु यह आदेश हमें स्वीकार नहीं होगा, बल्कि अनुचित लग रहा है। आप जैसे कुलवन्त को, शीलवन्त को ऐसा आदेश देने से पहले दस बार सोचना चाहिए था, क्योंकि आपका आदेश अकुलीन तथा शील को नष्ट करनेवाला है। मैंने तो स्वयंवर में जीतते ही पति के रूप में सिर्फ आपको ही देखा है। पति के छोटे भाई पुत्र के समान होते हैं, इसलिए वे मेरे पुत्र हुए, पुत्र के गले में मैं कैसे वरमाला ड़ाल सकती हूँ? मैं उनके लिए माँ के समान हूँ, वे भी माँ समान भाभी के हाथों से अपने गले में वरमाला कैसे ड़लवायेंगे, आप विवेकवान हो, इससे ज्यादा मैं आप से क्या कहूँ?

इस पर चिंतागति ने अपने मन की व्यथा, दुविधा बतायी कि जिसे मैंने अपने छोटे भाई की पत्नी के रूप में देखा, उससे अपने गले में वरमाला ड़लवाते हुए अपने आप से

शर्मिंदा हूँ। और ऐसा अनुचित आदेश देते हुए भी शर्मिंदा हूँ। इसे कर्म की विचित्र गति न कहूँ तो और क्या कहूँ? क्योंकि छोटे भाई की पत्नी के रूप में देखने से हम भी आपसे वरमाला पहिन नहीं सकते, यह सब कहने, करने की पीछे हमारा आपके प्रति पूर्व से ही कोई द्वेषभाव नहीं है। कर्मोदय से उपस्थित परिस्थितियाँ ही इसमें कारण दिखती हैं। यह कहकर किंकर्तव्यमूढ़ चिन्तागति शान्त हो गया।

चिन्तागति को असमंजस में देखकर सुलझे हुए पक्के विचारवाली प्रीतिमति ने उससे कहा हे नाथ! गतियुद्ध जीतते ही मैंने आपको पति के रूप में देखा था, परंतु आप से संयोग होना हमारे भाग्य में नहीं दिखता, इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह हमारे पूर्व कर्मों का परिणाम है। इसमें आपके या हमारे वर्तमान जीवन का कोई परिणाम कारण नहीं दिखता, आप को हमने मन से पति माना है, आप ही हमारे पति रहोगे। रही बात मनोगति और चपलगति की वे दोनों ही नहीं, अपितु संसार के सभी युवक हमारे लिए भाई के समान हैं, मुझ से छोटे पुत्र के समान हैं और मुझसे बड़े पिता के समान हैं। पति-भाव सिर्फ आपके प्रति ही है।

चिन्तागति को प्रीतिमति के व्यवहार और विचारों से अचम्भा हुआ। जिसे उसने अभिमानी राजकुमारी समझा था, वह सती, साध्वी, पतिव्रता नारी है। अपने दुर्भाव और दुर्विचारों पर उसे लज्जा महसूस हो रही थी। उसे लगा मैंने एक धर्मात्मा, आत्मसाधिका, सुशीला नारी को समझने में गलती की। **सच है मनुष्य अज्ञान में न जाने कैसे-कैसे पाप करते हैं। उस समय उसे पता नहीं लग पाता, परंतु जब उनका फल सामने आता है, तब वह सिर्फ पछताता ही रहता है। इसलिए हर कार्य को सोच समझ कर करना चाहिए। सोच समझ कर करने में फायदा है, जिससे बाद में पछताना नहीं पड़ता।** देखो, प्रीतिमति को समझने में कितनी बड़ी भूल

हुई हैं, मनुष्य दिखता कुछ है, होता कुछ है, इसलिए कभी किसी को बुरा समझने की भूल नहीं करें। उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे थे, उसने जैसे-तैसे हिम्मत बटोरकर कहा-

''हे देवी, धन्य हो, धन्य है तुम्हारी दृढ़ता, धन्य है तुम्हारा शील, धन्य है तुम्हारी धार्मिक-आस्था। मुझे आपसे बहुत ज्ञान मिला। **ज्ञान सिर्फ ग्रंथों से नहीं, अपितु व्यवहार से भी सीखा जाता है। आचरण से सीखा हुआ ज्ञान ग्रंथों से सीखे हुए ज्ञान से स्थायी होता है।** आपके आचरण से सीखा हुआ ज्ञान मेरे जीवन में अमिट छाप छोड़ गया, जीवन को बदल गया। इस दृष्टि से आप मेरी गुरु हो गई हो, साधर्मी तो हो ही।

इतना कहकर चिंतागति चुप हो गया। थोड़ी देर दोनों मौन रहे।

प्रीतिमति को संसार से वैराग्य हुआ था। उसे सारा संसार असार लगने लगा था, उसने चिंतागति से कहा-

'' हे देव! अब हमारा मन संसार से उदासीन हो चुका है। अनादिकाल से भोगे जा रहे भोगों से उकता गई हूँ।'' सच ही कहा है-

भोगा: न भुक्ता: वयमेव भुक्ता:।
कालो न यातो वयमेव याता:।
तपो न तप्तो वयमेव तप्ता:।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा:।।

अर्थ :- किसी के द्वारा भोग भोगे नहीं जाते, अपितु जीव ही भोगों के द्वारा भोगा जाता है। काल कभी समाप्त नहीं होता, अपितु काल के प्रवाह में जीव ही समाप्त होता है। संसार में जो जीव तप नहीं करते, वे कष्टों की आँच से स्वयं तपते रहते हैं। संसारी जीव की तृष्णा कभी नष्ट नहीं होती, अपितु जीव ही स्वयं जीर्ण हो नष्ट होता है।

हे देव! संसार का ऐसा स्वरूप देखकर हम स्वयं संसार

से भयभीत हो कर दीक्षा लेना चाहते हैं, कृपया हमें दीक्षा की अनुमति देकर अनुगृहीत कीजिए।

चिंतागति सोचने लगा–जिसे साधारण कांच का टुकडा समझा था, वह तो चिंतामणि रत्न निकला। उसके विचार से प्रीतिमति ने सभी राजकुमारों को धर्मयुद्ध में पराजित कर दिया है, क्योंकि सभी राजकुमार अभी भोगों में ही हैं, यह आर्यकन्या वैराग्य के रथ पर सवार हो चुकी है। मुझे भी इसने धर्मयुद्ध में पराजित कर दिया है। यह मेरे प्रति सम्मान की वजह से आज्ञा मांग रही है, मन से तो दीक्षा ले चुकी है यह सोचकर, चिंतागति, जो स्वयं भी अन्तर्मन से दीक्षा की तैयारी चुका था, ने प्रीतिमति से कहा–

हे राजकुमारीजी! अभी तो आपके खेलने–कूदने के दिन हैं, दीक्षा का विचार क्यों कर रही हों?

इसके उत्तर में राजकुमारी प्रीतिमति ने कहा– हे देव! विषय–कषायों में खेलते–कूदते रहने से इस जीव ने अनादि से कर्मबन्ध ही बांधे हैं। यह जीव ज्यादातर समय निगोद में ही बिताता है, स्थावर तथा त्रस पर्याय, त्रस पर्याय में मनुष्य, मनुष्य में उच्च कुल, उच्च कुल में देव–गुरु–शास्त्र का समागम, सम्यग्दर्शन, संयम, तप आदि दुर्लभ हैं–

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु, त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी।।
उत्तम देस सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाणा।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रतपालन, शुद्धभाव करना।।
दुर्लभ तैं दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं, फिर इस भव में आवै।।

आप स्वयं ज्ञानी हैं, मनुष्य भव की दुर्लभता जानते हैं।

इसका एक-एक समय बहुमूल्य है। **दीक्षा तो किसी अतिशय पुण्यवान के भाग्य में होती है।**

वैराग्य का ऐसा सुअवसर खोकर फिर विषय-कषायों में फँस गई तो मुक्ति का मार्ग कब पाऊंगी? इसलिए हे नाथ, अनुमति देकर मेरे इस पुनीत कार्य की अनुमोदना कीजिए।

प्रीतिमति के आत्मबल की दृढ़ता को जानते हुए भी परखने की इच्छा से चिंतागति ने प्रीतिमति से कहा-

हे देवी! त्याग, तपस्या का मार्ग बड़ा कठिन होता है, आपका शरीर सुविधाओं में पला है, आपका कोमल शरीर कठोर मार्ग पर कैसे चल पायेगा? त्याग, तपस्या के भारी कष्टों को कैसे सह पायेगा?

प्रीतिमति ने गंभीर होकर जवाब दिया- हे देव! त्याग, तपस्या का मार्ग कठिन नहीं है। विषयभोगियों को, कषायी जीवों को, सुविधाभोगियों को, रागियों को कठिन लगता है। पराधीन होकर नरकों में न जाने कितने कठिन कष्ट सहे हैं, परंतु यहाँ स्वाधीन होकर कष्टों को सहने में असमर्थ होता है, इसीलिए आगामी अनन्त पर्यायों में दु:ख पाता है, यहाँ थोड़े से सुख के लिए आगामी अनन्त दु:खों की पोटली बांधता है। मेरा शरीर सुकुमाल आदि मुनियों से कोमल तो नहीं है, जिनका पैर जहाँ भी पड़ता खून का पंजा छप जाता। फिर भी उन्होंने त्याग, तपस्या का मार्ग नहीं छोड़ा। महाव्रतों का पालन किया। शरीर को जैसी आदतों में ढ़ालो, उसमें ढ़ल जाता है। वह जड़ है, अपनी ओर से कुछ नहीं कहता। त्याग, तपस्या में कष्ट नहीं होते हैं, बल्कि वहाँ वैराग्य से अध्यात्म-अमृत बरसता है। किसी ने सच कहा है-

न हि भोगो भाग्यं, भाग्यं भोगेषु वैराग्यम्।

अर्थ - भोगों की प्राप्ति में सौभाग्य नहीं है, सौभाग्य तो भोगों से वैराग्य होने में है।

इसलिए हे देव, मेरी वैराग्य-सम्पदा की अनुमोदना कीजिए, मुझे वैराग्यमार्ग पर चलने की अनुमति दीजिए।

चिंतागति ने कहा- हे देवी, आकाश या हवा को मुट्ठी में कौन बांध सका है? इसी तरह वैराग्य से भरे मनवाले को संसार में कौन बांध सका है। हमारी अनुमति तो केवल नाममात्र है, यह आपका बड़प्पन है। आप जाइए हम भी आपके रास्ते पर आने की कोशिश करेंगे।

प्रीतिमति ने माताजी, पिताजी आदि बड़ों के पास जाकर दीक्षा की अनुमति ली और **निर्वृत्ति नाम की आर्यिका** के पास जाकर आर्यिका दीक्षा ली।

गतियुद्ध में हारे हुए मनोगति और चपलगति के मन में पूर्व में ही वैराग्य बस चुका था, चिंतागति और प्रीतिमति के मन में भी वैराग्य बस चुका था, चिंतागति और प्रीतिमति की वैराग्यभरी चर्चा सुन कर मनोगति, चपलगति के मन का वैराग्य और दृढ़ हो चुका था। उन्होंने बड़े भाई चिंतागति से कहा-

हे भैय्या, हमें भी दीक्षा की अनुमति दीजिए। हमारे इस तरह जाने की वजह से पिताजी आदि से हमारी ओर से क्षमा मांगिए।

चिंतागति ने गंभीर होकर कहा- छोटे होकर आनंद के रास्ते पर जा रहे हो, यह अच्छी बात है, पर बड़े भाई को संसार के मार्ग पर छोड़कर जा रहे हो, यह ठीक नहीं है। संसार में अब तक साथ रहे हो, इस वैराग्य-अमृत के रास्ते पर भी साथ ही चलेंगे। रही पिताजी आदि को कहने की बात, वह सेवकों के द्वारा उन तक भिजवा देंगे। यह कहकर उन्होंने सेवकों के द्वारा पिताजी के पास दीक्षा का समाचार भिजवाया और **दमवर** नाम के मुनि के पास उन तीनों ने दीक्षा ली। सभी ने कठोर तपस्याएं कीं।

आयु के अन्त में तीनों भाई माहेन्द्र स्वर्ग के अन्तिम पटल में सात सागर की आयुवाले सामानिक जाति के देव बने।

चिन्तागति (नेमिनाथ भगवान) का जीव माहेन्द्र स्वर्ग से आकर जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर सुपद्मा नामक देश में सिंहपुर नगर के राजा अर्हद्दास के घर अपराजित नाम से जन्मा। यहाँ दीक्षा लेकर आयु के अन्त में सल्लेखना मरण कर अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयु वाला इन्द्र बना।

अच्युत स्वर्ग से आकर नागपुर नामक नगर में राजा श्रीचन्द्र (व रानी श्रीमती) के घर सुप्रतिष्ठ नाम का पुत्र जन्मा। राजा श्रीचन्द्र ने सुप्रतिष्ठ को राज्य देकर दीक्षा ली। राजा सुप्रतिष्ठ एक दिन कार्तिक की पूर्णिमा की रात्रि में महल की छत पर आठ सौ रानियों के मध्य बैठा था। उसी समय आकाश से उल्कापात हुआ। राज्य, जीवन, भोग आदि उल्कापात के समान क्षणभंगुर हैं, ऐसा विचार आते ही, उसे संसार से वैराग्य हुआ। उसने दीक्षा ली। अनेक प्रकार से कठिन तपस्या कर निर्मल सोलह कारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर कर्म का बन्ध किया। एक मास के आहारत्याग के साथ सल्लेखनापूर्वक शरीर त्याग कर जयन्त नाम के स्वर्ग में बाईस सागर की आयुवाला देव बना।

वहाँ से आकर हरिवंश में राजा समुद्रविजय और रानी शिवादेवी के गर्भ से वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन भरतक्षेत्र के बाईसवें तीर्थङ्कर के रूप में जन्में। देवों ने उनके गर्भ से पूर्व छह माह तथा गर्भ के नौ माह तक प्रतिदिन रत्नवर्षा कर उनका गर्भकल्याणक उत्सव मनाया। जब जन्म हुआ, तब सुमेरू पर्वत पर ले जाकर सौधर्म, ईशान स्वर्ग के दो इन्द्रों ने 1008 (एक हजार आठ) कलशों के द्वारा क्षीरसागर के जल

से पाण्डुक शिला पर शाश्वत विद्यमान सिंहासन पर विराजमान कर असंख्यात देवों की उपस्थिति में जन्मोत्सव मनाया।

उनकी यहाँ एक हजार वर्ष की आयु थी। कृष्ण उनके बड़े चचेरे भाई थे। पाण्ड़व बुआओं के पुत्र थे। बलदेव भी उनके चचेरे भाई थे।

नेमिकुमार स्वर्ग से प्राप्त दिव्य-भोगों को भोगते हुए युवा हुए। श्रीकृष्ण आदि सभी उनका सम्मान करते थे। श्रीकृष्ण ने जब से जरासंध का वध करके चक्रवर्ती नारायण पद प्राप्त किया, तब से उन्हें अपने बल पर अभिमान हो गया था।

एक बार का प्रसंग है। कुसुमचित्रा नामक राजसभा में श्रीकृष्ण आदि विराजमान थे। उसी समय नेमिकुमार भी वहाँ आये। श्रीकृष्ण ने आसन से उठकर उनकी अगवानी की। आदर के साथ अपने बराबर आसन दिया। सभी ने हास्य-विनोद की चर्चाएं कीं।

उसी समय सभा में किसी ने इस विषय पर चर्चा शुरू की कि इस समय इस क्षेत्र में सबसे बलवान कौन हैं?

चर्चा चारों ओर फैल गई। सभी की चर्चा इसी विषय पर होने लगी। किसी ने भीम को, किसी ने अर्जुन को, किसी ने किसी को, किसी ने किसी को, किसी ने किसी को बलवान बताया । किन्हीं राजाओं ने कृष्ण को बलवान बताया। बलदेव से रहा नहीं गया। उन्होंने मंद-मंद मुस्कुराते हुए नेमिकुमार की ओर देखकर कहा-

हे बन्धुओं! इनके गर्भ, जन्म कल्याणक महोत्सव देवताओं ने मनाए हैं। जिनके वस्त्रादि स्वर्ग से आते हैं। जन्म से जिनके शरीर पर 1008 शुभ लक्षण विद्यमान होते हैं। श्री कृष्ण ने कोटिशिला उठायी हो, परंतु ये नेमिकुमार एक ऊंगली पर सुमेरू को, हथेली से तीनों लोक को उठा सकते हैं, समुद्रों को उठाकर फेंक सकते हैं, अहो इनके बल की क्या चर्चा करें!

इनके समान बलशाली तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है।

बलदेव के द्वारा नेमिकुमार की प्रशंसा सुनकर कृष्ण को कुछ बुरा लगा, क्योंकि उन्हें अपने बल पर अभिमान था। उन्हें लगता था कि इस धरती पर उनके समान दूसरा कोई बलशाली नहीं है। उन्होंने नेमिकुमार की ओर देखकर कहा-

क्यों न नेमिकुमार और मुझमें बाहुयुद्ध किया जाय? इससे उनके बल की परीक्षा भी हो जायेगी। क्योंकि भले ही उनमें अनंत बल हो, परंतु बिना परीक्षा कौन विश्वास करें? जैसे आत्मा में अनंत बल है, परंतु उसकी श्रद्धा, भोग और अनुभव के बिना जीवों को कोई फायदा नहीं होता। इसलिए हम दोनों में बाहुयुद्ध ठीक रहेगा।

नेमिकुमार ने कहा- हे अग्रज, मैं बाहुयुद्ध नहीं कर पाऊंगा।

कृष्ण को लगा नेमि मुझ से घबरा गया। इसलिए उन्होंने चहकते हुए कहा-

क्यों? इसमें क्या परेशानी है?

इस पर नेमिकुमार ने कहा- आज मेरी ऊंगली में दर्द हो रहा है। मेरी ऊंगली टेडी हो गई है। उन्होंने चलाकर टेढी की हुई ऊंगली श्रीकृष्ण को दिखाई। श्रीकृष्ण को लगा नेमि बहाने बना रहा है। उन्होंने स्वयं नेमिकुमार की ऊंगली सीधी करने की कोशिश की। जब उनसे ऊंगली सीधी नहीं हुई, तब उन्होंने लोहे की मजबूत सांकल मंगवाकर ऊंगली में फंसाई। स्वयं सांकल को खींचकर देखा, फिर भी ऊंगली सीधी नहीं हुई, तब उन्होंने अपनी सहायता के लिए सभासदों को बुलाया, उनसे भी ऊंगली सीधी नहीं हुई, तब लगभग सभी उस जंजीर को अपनी ओर पूरा जोर लगाकर खींचने लगे फिर भी ऊंगली सीधी नहीं हुई, तब नेमिकुमार के मन में मज़ाक सूझी। उन्होंने चलाकर टेढ़ी की हुई ऊंगली सीधी कर तुरंत टेढी कर दी,

ऊंगली अचानक सीधी होने से सभी लुढ़क गए। एक के ऊपर एक गिर गए। फिर नेमिकुमार ने अपना हाथ ऊपर उठाया। सांकल ऊपर उठाने से सभी सांकल से लटक गए। थोड़ी देर नेमिकुमार ने हाथ ऊपर ही रखा। एक-एक कर सभी नीचे गिर गए। कृष्ण सांकल से लटके रह गए। उन्हें देखकर नेमिकुमार आदि सभी मंद-मंद मुस्कुरायें। श्रीकृष्ण इस घटना से शर्मिंदा हुए। वे नेमिकुमार के आशय को समझ गए। उनके अतुल बल को समझ गए।

उस दिन से कृष्ण के मन में शंका घर कर गई थी कि नेमि के बल का पार नहीं है, इसलिए इनके रहते हुए मेरा राज्य सुरक्षित नहीं है, ये कभी भी राज्य छीन सकते हैं। इसलिए वे मन में नेमिकुमार से ड़रे-ड़रे रहते थे।

वे समझ नहीं पाये कि जिनके इन्द्रादि दास हों, उन्हें विश्व के वैभव से क्या प्रयोजन? जिनके भोजन, वस्त्रादि स्वर्ग के देव लाते हों, उन्हें इन भौतिक पदार्थों में क्या रूचि होगी? जो प्राय: अपने आत्मिक अमृत में डूबे हुए तृप्त रहते हैं, उन्हें तीनों विश्व के शासन से भी क्या तृप्ति मिलेगी? परंतु श्री कृष्ण की अपनी सोच थी, उसमें कोई क्या करें?

उक्त घटना बीते काफी समय बीत गया। नेमिकुमार अब तीन सौ बरस के हो चुके थे। उनका ज्यादातर समय आत्मचिंतन, आत्मानुभव में बीतता था। वे सदा गंभीर तथा आत्मानुभव के प्रति जागरूक रहते थे। अपना उपयोग इधर-उधर नहीं भटकाते थे, उपयोग इधर-उधर न जायें, इसका सदा ध्यान भी रखते थे। वे स्वयं बुद्ध थे, उनको गुरु की आवश्यकता नहीं थी, हो भी क्यों? जिनको देखने मात्र से मुनिराजों की शंकाओं के समाधान होते हैं, उन्हें गुरु की क्या आवश्यकता? जो विश्वगुरु हो, उनका गुरु कौन हो? चैतन्य की मस्ती में मस्त रहनेवाले नेमिकुमार को उस छोटे राज्य से

कोई प्रयोजन नहीं था, फिर भी कृष्ण के मन में शंका बनी ही रहती थी कि नेमि की वजह से उनका राज्य सुरक्षित नहीं है।

गर्मी के दिनों में एक दिन श्रीकृष्ण अपनी रानियों के साथ जलक्रीड़ा के लिए गए थे। वहाँ उन्होंने जलक्रीड़ा की। श्रीकृष्ण आदि के अनुरोध से सदा गंभीर रहनेवाले नेमिकुमार भी जलक्रीड़ा के लिए जल में उतरे। उन्होंने जलक्रीड़ा की। जलक्रीड़ा के बाद विरागी नेमिकुमार के शरीर को पोंछा गया, उन्हें दूसरे वस्त्र पहनाए गए।

उस समय भगवान ने अपना गीला वस्त्र निचोड़ने के लिए श्रीकृष्ण की प्रेमपात्र, अनुपम सुंदरी सत्यभामा से विलासपूर्णभाव से सहज ही कहा – सत्यभामा भाभी, भैय्या के वस्त्र तो आपने अब तक निचोड़ दिये, परंतु हमारे वस्त्रों को कभी हाथ भी नहीं लगाया। आज एक दिन हमारे वस्त्र को भी निचोड़ दीजिए।

देवर नेमिकुमार के भावों को, आशय तथा मज़ाक को समझने वाली सत्यभामा ने बनावटी क्रोध से नेमिकुमार से कहा–

हे देवरजी! मैं नारायण की पत्नी हूँ। वे छह खण्ड़ के स्वामी हैं। उनके शरीर की कांति से रत्नादि की कांति और ज्यादा बढ़ जाती है। उनके पास कौस्तुभमणि है। वे महानाग[1] नामक शय्या पर सोते हैं, जिसकी अनेकों देव रक्षक हैं, वे शाङ्र्ग नामक धनुष्य को धारण करते हैं, वे पृथ्वी के राजाओं के स्वामी हैं। आकाश और समुद्र को अपनी आवाज से हिला दे, ऐसे दैवी शंख को बजाते हैं। सुदर्शन चक्र चलाने वाले चक्रधारी हैं। जिनकी हजारों रानियाँ हैं, उन रानियों में से एक मैं उनकी अतिप्रिय हूँ, वे भी मुझे कभी आज्ञा नहीं देते। आप

1. नामशय्या सर्पों की बनी हुई नहीं होती, यह देवनिर्मित शय्या होती है, जिसका नाम नागशय्या है, जिसपर नारायण जैसे पुण्यवान ही सो सकते हैं।

उनसे छोटे होकर भी विचित्र पुरुष जान पड़ते हो जो ऐसी आज्ञा दे रहे हो।

सत्यभामा ने ये सारी बाते झूठे क्रोध के साथ सिर्फ मज़ाक में ही कही थीं, परंतु उसकी बातें श्रीकृष्ण की अन्य रानियों को अटपटी और अनुचित लगी थीं, क्योंकि वे जानती थीं कि नेमिकुमार तीन लोक के नाथ, अतुल बलधारी अंतरंग से निर्मोही हैं, इसी भव से मोक्ष जानेवाले चरमशरीरी हैं। दिव्यध्वनि के द्वारा जगत् के भोले जीवों का उद्धार करनेवाले हैं। इसलिए अनेक रानियों ने उसे टोकते हुए कहा–

''अरि निर्लज्ज, त्रिलोकीनाथ की निंदा क्यों कर रही हो?'' किसी ने कहा–

''स्वर्ग के देव भी उनकी सेवा–सानिध्य में अपना सौभाग्य समझते हैं।''

किसी दूसरी ने कहा–

''इनके जन्म से अपना हरिवंश धन्य हुआ है।''

किसी अन्य ने कहा–

''जिनके दर्शन मुनियों के लिए दुर्लभ होते हैं, ऐसे जगद्वंद्य तीर्थङ्कर का निशदिन सानिध्य क्या कम महापुण्य है?''

किसी अन्य ने कहा– ''सत्यभामे लगता है, तेरी मति मारी गई है, जो तेरे मुँह से ऐसे कठोर शब्द निकले।''

सत्यभामा को लगभग सभी ने टोका। वह स्वयं नेमिकुमार की ये सारी विशेषताएं, अतिशय भरी बातें जानती थी, पर वह आज त्रिलोकीनाथ, वीतरागी, तीर्थङ्कर के साथ ठिठोली की मुद्रा में थी। औरों की परवाह किये बिना उसने फिर मज़ाक करते हुए कहा–

अरे नेमि देवरजी, दूसरों से कपड़े निचोड़वाने का इतना ही शौक है, तो विवाह क्यों नहीं कर लेते? वह आपकी

अर्द्धाङ्गिनी आपके गीले कपड़े निचोड़ देगी, सेवा करेगी, आप जैसे त्रिलोकीनाथ का साथ पाकर संसार से तर भी जायेगी।

सत्यभामा की मज़ाक को मज़ाक में लेते हुए नेमिकुमार ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ मुस्कुराकर वहाँ से चल दिये।

रागादि कषायों को अपने से भिन्न जाननेवाले कषायों को स्वरूप से भिन्न अनुभव करते हुए भी उनके भावों में किञ्चित् कषाय उत्पन्न हो ही गई। वे तेजगति से राजमहल में आये। आकर सबसे पहले नागशय्या पर चढ़े। उस शय्या की रक्षा करनेवाले देवों ने उनकी अगवानी की, उनकी पूजा की। नागशय्या पर तेजी से चढ़ने से भूमि के भीतर कम्पन हुआ, जो गिरनार पर्वत तक पहुँचा जिसे श्रीकृष्ण आदि ने महसूस किया।

बाद में उन्होंने शार्ङ्ग धनुष मोड़ कर उस पर प्रत्यंचा (ड़ोरी) चढ़ाकर टंकार ध्वनि की। उसकी आवाज की धमक चारों ओर फैल गई। उसके बाद एक हाथ में सुदर्शन चक्र लेकर एक ऊंगली पर तेजगति से घुमाया, उससे चिनगारियाँ निकलने लगीं। जिनको दूर से ही देखा जा सकता था। दूसरे हाथ में शंख लेकर उन्होंने नाक से उसे बजाया। उसकी आवाज से समुद्र का पानी भी हिलने लगा।

धनुष आदि की आवाज से शौर्यपुरी में हाहाकार मच गया; लोग भय से इधर उधर भागने लगे। एक दूसरे की ओर देखने लगे, पूछने लगे, किसी को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर में हुआ क्या है?

द्वारिका नगरी में हाथी-घोड़े सांकल आदि बंधनों को तोड़कर इधर-उधर भागने लगे। समुद्र में लहरें उछलने लगीं।

श्रीकृष्ण सोच में पड़ गए कि मेरे सिवा दूसरा शंख को फूंकनेवाला, चक्ररत्न घुमाने वाला, शार्ङ्ग धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाला, नागशय्या पर उछल सकनेवाला नेमि ही हो सकता है।

श्रीकृष्ण को भीतर ही भीतर एक अज्ञात खुशी होने लगी कि चलो, इस जलक्रीड़ा में सत्यभामा की मज़ाक के कारण नेमिकुमार में कुछ तो कषाय उत्पन्न हुई। और इसी कषाय के आवेश में शादी के लिए तो हाँ कहेगा। वरना जब भी शादी की चर्चा करते थे तो मना करता था या वहाँ से निकल जाता था।

अहो जगत् के जीवों के विचारों को देखों- उन्हें तो हर किसी शादी की पड़ी रहती है, उन्होंने तीर्थङ्कर जैसो को भी शादी के बंधन में बांधने की पड़ी रहती है। वाह रे कषायी जगत्। श्रीकृष्ण जो स्वयं भावि तीर्थङ्कर थे, उन्हें भी अपने छोटे चचेरे भाई, जो तीर्थंकर थे, की शादी की ही फिकर थी। वे चाहते थे कि नेमि विवाह कर लें।

कषाय को देखो, वह तीर्थङ्कर के भीतर उत्पन्न होकर उत्पात मचाती है, वह जानती है कि ये मुझे जल्दी ही मिटा देंगे, तब भी उत्पात मचाती ही है, सामान्य जनों में उत्पात मचाये तो कौनसा कमाल है?

मज़ाक में उत्पन्न कषाय इसतरह का रूप दिखाती है, तब सचमुच की कषाय कैसा रूप दिखाती होगी? कल्पना करो।

श्रीकृष्ण सीधे अपने महल में आये, वहाँ नेमिकुमार की क्रीड़ाएँ देखकर खुश हुए। श्रीकृष्ण ने अनुज नेमि को गले लगाया। एक वर्तमान के तीर्थंकर को भावि तीर्थंकर ने गले लगाया। और कहा-हे देव! आप शुर वीर हैं, विश्व में सबसे अधिक शक्तिशाली हैं। आपकी वीरता कौन नहीं जानता? सत्यभामा ने आपको नहीं पहिचाना, इसलिए उसने आपका अनजाने में अनादर किया। पहिचाना हो तो भी मात्र मज़ाक की भावना से ऐसा किया। उसके लिए हम आपसे क्षमा मांगते हैं। हे देव! क्षमा कर दीजिए। और भी हल्की फुल्की बातें

करके शादी के लिए उनसे हाँ करवा ली। इधर भोजवंशी राजा उग्रसेन के पास उनकी पुत्री राजीमति(राजुल) की नेमिकुमार हेतु समुद्रविजय की संमति से विधिपूर्वक याचना की। राज उग्रसेन की स्वीकृति आयी कि हे श्रीकृष्णजी, हम आपके अधीनस्थ राजा हैं, हम पर, हमारे राज्य पर, प्रजा पर आपका पूर्ण अधिकार है। हम स्वीकृति देने वाले कौन होते हैं? आपने हम पर, हमारी पुत्री पर बड़ा उपकार ही किया है, जो हरिवंश लायक हमें समझा। हमारी पुत्री को त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर नेमिकुंवरजी के योग्य समझा। आपका हमारे आंगन में हृदय से स्वागत है।

श्रीकृष्ण, समुद्रविजय आदि ने जूनागढ जाकर नेमिकुमार की मंगनी कर दी। राजा उग्रसेन ने उनके स्वागत के लिए पलक-पावड़े बिछाये! उन सब का बहुत स्वागत सत्कार किया। अपनी श्रद्धा-भक्ति के अनुसार भेंट दी। इस तरह से नेमिकुमार की मंगनी-समारोह सम्पन्न हो गया।

राजुल ने जब से अपना विवाह-सम्बन्ध नेमिकुंवर के साथ तय होना सुना था, तब से वह उनके राग में रंग गई थी। रंगे भी क्यों नहीं? जन्मजन्मान्तर के संस्कार जो थे। यह वही राजुल का जीव है, जो पूर्व में प्रीतिमति था। नेमिकुमार का जीव उस पर्याय में चिन्तागति नामका राजकुमार था। उससमय उस पर्याय में चिन्तागति से विवाह न हो पाने पर निर्वृत्ति नाम की आर्यिका से दीक्षा धारण कर उग्र तपस्या की थी। अनेकों उत्तम पर्यायें धारण कर इस पर्याय में राजुल बनी। पूर्व में दोनों का परस्पर वात्सल्यभाव था, पर विवाह नहीं हो पाया था।

इस पर्याय में राजुल उठते-बैठते सिर्फ नेमि, नेमि, नेमि का ही ध्यान करती थी। अन्तरंग में वह विवेकवती थी ही, इसलिए इसप्रकार की परिणति को राग की परिणति जानती थी।

ग्रीष्मकाल समाप्त होकर वर्षाकाल का चौमासा प्रारंभ होने में बस कुछ ही दिन शेष थे। नेमि-राजुल के विवाह का दिन चौमासे से पूर्व ही था। सभी तैयारियाँ जोरों पर थीं। द्वारिका में सभी के मन उमंग से भरे थे। नगरवासी उस दिन की प्रतीक्षा चाव से कर रहे थे।

वह दिन भी आ गया। नेमिकुंवर दुल्हा बनकर वर्णनातीत सुंदर लग रहे थे। एक तीर्थंकर दुल्हे के वेश में कितने सुंदर लग रहे थे, यह तो प्रत्यक्षदर्शी ही जान सकता है।

नेमिकुंवर की बारात द्वारिका से जुनागढ़ की ओर चल दी। उस बारात में सभी के मन में एक से बढ़कर एक उमंग थी। सभी अपने सौभाग्य से अभिभूत थे। उमंग और उत्साह का चरम उस बारात में था।

पर श्रीकृष्ण के मन की शल्य अभी समाप्त नहीं हुई थी। रह रह कर श्रीकृष्ण को यह आशंका खाये जा रही थी कि शादी के बाद नेमि के मन में राज्य का विचार आया और मेरा राज्य छीन लिया तो मेरा राज्य जायेगा। मान-सम्मान जायेगा। भीतर ही भीतर यह भी जानते थे कि तीर्थंकर जैसे जीव के मन में ऐसे तुच्छ विचार नहीं आ सकते। फिर शल्य जब तक नहीं निकले दु:ख देती ही है। श्रीकृष्ण ने एक दिन अपने मन की बात बलदेव को बतायी थी, तब बलदेव ने कृष्ण को बताया था कि अरे कृष्ण तुम्हारे मन में ऐसा तुच्छ विचार आया ही कैसे? जो तीन लोक के नाथ हैं, जन्म से तीन ज्ञान के धारी हैं, हजारों देव उनकी सेवा में रहते हैं। वे तुम्हारे धरती के छोटे से टुकड़े को क्यों चाहेंगे? अरे, जो सदा निर्भार रहते हैं और रहना चाहते हैं, वे चलाकर सम्पत्ति के पीछे क्यों भागेंगे? वे इतने पुण्यवान हैं कि सम्पत्ति ही उनके पीछे भागती है। निर्भारता की इच्छावाला जीव चलाकर सिर पर भार क्यों रखना चाहेगा? साँप से बचने का इच्छावाला जीव उसकी

बांबी में क्योंकर हाथ फंसाना चाहेगा? सोलह तीर्थंकर भावनाएँ भानेवाला जीव सिर्फ अपने आत्मध्यान से उत्पन्न वीतरागभाव से संतुष्ट रहता है। वे छह खण्ड़ की ओर नहीं अपने अखण्ड़ चैतन्य की ओर देखते हैं। इसलिए हे कृष्ण तुम्हें ''श्री नेमि मेरे राज्य को छीनेंगे'' ऐसा सोचना ही नहीं चाहिए। बलदेव के समझाने से श्रीकृष्ण को कुछ शांति मिली। फिर भी वे चाहते थे कि नेमि को वैराग्य हो और वे राज्य छोड़कर चलें जाय। परंतु वे कभी अपनी चाह में सफल नहीं हो सके। नेमि के पुण्य के समक्ष उनका पुण्य नगण्य था। **जीवन में सफलता के लिए पुण्य चाहिए।** पुण्य के कारण ही धन का अम्बार लगता है, बड़े बड़े पद सहज ही मिलते हैं, सारी इष्ट-सामग्री जुड़ जाती है, मनुष्य जो यह सोचता है कि मैंने यह किया, यह किया दरअसल वह सब पूर्व पुण्य का कराया होता है। श्रीकृष्ण के पास नेमि से ज्यादा पुण्य होना चाहिए था, जो वे सफल होते, परंतु उतना पुण्य श्रीकृष्ण के पास नहीं था।

नेमिकुमार की बारात जूनागढ़ की ओर राजुल से वरने के लिए निकली। तीर्थङ्कर की बारात के वैभव, विशालता का वर्णन शब्दों में कैसे समाये? हजारों राजाओं से भरी बारात जूनागढ़ के पास पहुँची। बारात बहुत लम्बी थी। बीच में अन्तराल नहीं था। सद्य:प्रसूता कुछ गायें इस ओर रह गईं, उनके नवजात बछड़े उस ओर, कुछ पशु इस ओर, कुछ उस ओर, कुछ माँए इधर, उनके वत्स उस ओर। पशुओं की करुणाभरी आवाजें निकलने लगीं। वे आवाजें नेमिकुमार के कानों से टकराईं। जीवन में पहली बार ऐसी करूणाभरी आवाजें सुनी थीं। वे सोच में पड़ गए-अरे, संसार के स्वार्थीपन को देखो, अपने विषय-कषायों की पूर्ति के लिए दूसरे के दु:खों को भी नहीं गिनते। मुझे ही देखो, विवाह जैसे सांसारिक कार्य के लिए इन पशुओं को कैसे दु:खी कर रहा हूँ। इनको मारकर

माँस खाया जायेगा न मैं विवाह करूँ, न इन पशुओं का वध हों, धिक्कार है ऐसे संसार के स्वार्थीपन को, मुझे तो वह मार्ग अपनाना चाहिए, जिससे किसी को कष्ट न हो, आत्मा की संसार से मुक्ति हो। यह सोच उनको वैराग्य हुआ, उन्होंने सारथी से रूकने के लिए कहा और कहा ''मार्ग दो'' जिससे ये पशु आ-जा सके। फिर उन्होंने बारह भावनाओं का चिंतन प्रारंभ कर दिया। जो भी वहाँ आया, सबको वैराग्य की ही चर्चा सुनाई दी। नेमिकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

वहाँ स्वर्ग से देव आए। लौकान्तिक देवों ने उनके वैराग्य की अनुमोदना की। रथादि त्यागकर नेमिकुमार देवकुरू पालकी में सवार होकर वन की ओर गए। **''नमः सिद्धेभ्यः''** कहकर उन्होंने दीक्षा ली। जहाँ विवाह-उत्सव होना था, वहाँ देव-मानवों के द्वारा दीक्षा कल्याणक उत्सव मनाया गया, श्रावण शुक्ला षष्ठी जो नेमिकुमार का जन्मदिन था, वही उनका दीक्षा दिन भी। उनके साथ अनेकों राजाओं ने दीक्षाएँ लीं। देव दीक्षा नहीं ले पाने से सिर्फ पश्चाताप करते रहें। देव सोच रहे थे कि काश हम भी मनुष्य होते तो नेमिकुमार के साथ हम भी दीक्षा लेते। ये शेष मनुष्य अभागे हैं, जो दीक्षा नहीं ले पा रहे हैं। देव दीक्षा-कल्याणक मनाकर चले गए। शेष मनुष्य राजाआदि अपने-अपने निवासस्थान की ओर गए।

राजुल को जैसे ही पता चला कि जिससे विवाह-बंधन बंधना था, वे संसार-बंधन को तोड़कर चले गए, तब उसने भी संसार का बंधन तोड़ कर दीक्षा लेने का दृढ़ निर्णय किया। वह पिताजी के पास गई, उनसे दीक्षा की अनुमति मांगी, तब पिता जी ने समझाया-

बेटी, ऐसी नादानी क्यों कर रही हो? अभी सात फेरे नहीं हुए हैं, अन्य राजकुमार से तुम्हारा विवाह करा देंगे।

इस पर राजुल बोली-

पिताजी, यह नादानी नहीं, समझदारी है। **संसार में रहना नादानी है, संसार को छोड़ने में तो समझदारी है। राग करने में नादानी है, वीतरागता में तो समझदारी ही है।** यह कार्य मुझे अब तक करना चाहिए था, नहीं कर पायी, यह नादानी थी, अब कर रही हूँ, इसमें तो समझदारी ही समझ में आती है। मैंने त्रिलोकीनाथ को पति माना था, सात फेरे केवल औपचारिक होते, अन्य राजकुमार तीर्थङ्कर जैसे कैसे हो सकते हैं? अन्य राजकुमार मेरे लिए केवल पुद्गल का पिण्डमात्र हैं। क्योंकि विवाह का राग समाप्त हो गया है। पत्नी का कर्तव्य है, पति के सच्चे मार्ग पर चले। सो मैं भी उनके वीतरागी मार्ग पर चलूँगी। मुझे क्षमा कर दीजिए और उनके दिव्य वीतरागी मार्ग पर जाने की अनुमति दीजिए। हे पिताजी, मैं वीरपुत्री हूँ, मोक्षवीर की पत्नी हूँ, मैं रो-धो कर संसार में नहीं रहूँगी। मैं भी एकावतारी होकर मोक्ष जाऊँगी। कृपया दीक्षा की अनुमति दीजिए।

राजुल ने पिता से अनुमति पाकर सैंकडों कुमारिकाओं के साथ दीक्षा ली। गिरिनार की गिरिगुफा में कठोर तपस्या की। आज वह गिरिगुफा **राजुल की गुफा** के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ आत्मसाधना कर सल्लेखनापूर्वक देह त्यागकर देवपद प्राप्त किया। वह आत्मा शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करेगी।

×××××

..... जिनमत में तो एक रागादि मिटाने का प्रयोजन है; इसलिए कहीं बहुत रागादि छुड़ाकर थोड़े रागादि कराने के प्रयोजन का पोषण किया है, कहीं सर्व रागादि मिटाने के प्रयोजन का पोषण किया है, परन्तु रागादि बढ़ाने का प्रयोजन कहीं नहीं है। इसलिए जिनमत का सर्व कथन निर्दोष है।

5. सती द्रौपदी

भरतक्षेत्र की चम्पानगरी में मेघवाहन नाम का राजा राज्य करता था। इसी नगरी में सोमदेव ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सोमिला था। सोमदत्त (युधिष्ठिर का जीव), सोमिल (भीम का जीव) तथा सोमभूति (अर्जुन का जीव) नाम के उसके तीन बेटे थे।

सोमदेव का अग्निभूति नाम का एक साला था। अग्निला नाम की उस की पत्नी थी। उसके धनश्री (नकुल का जीव), सोमश्री (सहदेव का जीव), नागश्री (द्रौपदी का जीव)- ये तीन बेटियाँ थीं।

सोमदत्त, सोमिल तथा सोमभूति को विवाह योग्य देखकर सोमदेव ने धनश्री, सोमश्री तथा नागश्री के साथ उन तीनों का विवाह करा दिया।

एक बार मुनिराज का उपदेश सुनकर, संसार की यथार्थ स्थिति जानकर सोमदेव को संसार से वैराग्य हुआ और उसने जिनधर्म अंगीकार कर दीक्षा ली।

धर्मरूचि नाम के एक मुनिराज विहार करते हुए सोमदेव के घर के सामने से जा रहे थे, आहार का समय था। सोमदत्त आदि अत्यंत आवश्यक कार्य से नागश्री को आहारकार्य हेतु छोड़कर चले गए। जाने का मन तो नागश्री का भी था, परंतु परिवार में छोटी होने से वह कुछ कह नहीं पायी। मन ही मन कुढ़ती रही। उसने बेमन से आहार दिया। उसने मुनिराज को उसकी स्वतंत्रता में बाधक जानकर उनके आहार में जहर (कड़वी तुंबी का रस) मिला दिया। मुनिराज आहार के विषय में निरपेक्ष थे, उन्होंने सरस निरस का विचार न करते हुए आहार ग्रहण किया। परंतु जहर से शरीर में पीड़ा होने लगी। प्राणान्त का समय जानकर उन्होंने सल्लेखना ग्रहण की तथा पंच परमेष्ठी का स्मरण करते हुए देह छोड़कर सर्वार्थसिद्धि नाम के स्वर्ग में देव बने।

नागश्री के द्वारा विष मिला देने से परम तपस्वी धर्मरूचि मुनिराज की मृत्यु हुई- यह समाचार जंगल में आग की तरह तुरंत चारों ओर फैल गया।

पाप पुण्य अपने दरवाजे स्वयं खोलते हैं, जैसे पानी बहने का रास्ता खुद-ब-खुद बना लेता है। नगर निवासियों ने उसे बहुत कोसा, भला बुरा कहा। चारों ओर उसकी निंदा हुई। अरे, आहार देने का इतना ही मन नहीं था, तो आहार नहीं देती। वे जबरदस्ती करके घर में नहीं आए थे। कम से कम जहर तो नहीं देती। छोटी-सी त्रुटि से कितना बड़ा महापाप उसने बांध लिया। तरह-तरह की गालियाँ, भर्त्सना के शब्दों से उसे अपमानित कर दिया। कुछ लोगों ने उत्तेजित होकर उसके बाल काट दिये, मुँह पर कालिख पोती। गधे पर बिठाया। नगर में घुमाकर उसे नगर से बाहर कर दिया।

सोमदत्त आदि जब घर आए तब उन्हें इस बात का पता चला तो उन्होंने सोचा आज कितना बड़ा अनर्थ हो गया। आज हमारे आंगन में धर्म अपमानित हुआ है। हमने सावधानी क्यों नहीं रखी? हम जानते थे नागश्री के आचरण को; पर ध्यान क्यों नहीं दिया? नागश्री को इस महापाप का फल कई जन्मों तक भोगना पड़ेगा। सोमदत्त आदि को बहुत पश्चाताप हुआ। संसार व्यर्थ लगने लगा। **पश्चाताप और पाप धर्मसेवन से ही धुलते हैं,** यह सोचकर वे सभी घर से निकल गए, उन्होंने **वरूण** नाम के मुनि के पास दीक्षाएं ग्रहण कीं।

×××××

उधर नागश्री को नगर निकाला देने के बाद पेट भरने के लाले पड़े। पेट भरने के लिए अन्न भी भरपेट नहीं मिलता था, उसे भीख में भी अन्न नहीं मिलता था। जैसे तैसे झूठ़न से पेट भरकर जीवन जी रही थी। उसके द्वारा किया गया पाप सामान्य नहीं था,

बहुत ही जघन्य था, उसे उसका फल इसी जीवन में मिलना प्रारंभ हो गया, उसे कोढ़ हुआ। रोम-रोम से बदबू आने लगी। अन्न नहीं होने पर भूख ज्यादा ही लगती है। पर खाने को कण भी नहीं था, न मिलने की आस थी। पीने को पानी नहीं था, न हि पास कोई पिलानेवाला था। ऐसी दयनीय दशा में तड़प-तड़प कर मरी। मरकर वह **पांचवें नरक** में गई। वहाँ सात सागर तक अवर्णनीय दुःख भोगा। वहाँ एक पल भी शांति नहीं थी।

5 वें नरक से निकल कर स्वयंप्रभद्वीप में **दृष्टिविष जाति का सर्प** बनी। सर्पयोनि में भी उसके शरीर का आकार देखने में भयानक था।

मरकर पुनः **तीसरे नरक** गई। वहाँ तीन सागर काल तक कष्टों को सहती रही।

तीसरे नरक से निकल कर **त्रस, स्थावरों की अनेक योनियों में दो सागर तक दुःख भोगती रही।**

जैसे-तैसे उसके पास पुण्य इकट्ठा हुआ और वह उसी चम्पानगरी में **चाण्ड़ाल के घर कन्या** बनी। वह भीख मांग कर पेट भरती थी। उसे सब अछूत समझते थे। दूर-दूर रहते थे। वह मंदिर, घर आदि के रास्तों को साफ करती थी। झाडू पोछे का काम करती थी, उसके बदले उसे रूखी-सूखी बासी रोटी मिलती, उससे पेट भर लेती।

एक बार चम्पानगरी में **समाधिगुप्त** नामके मुनिराज आए थे। सभी लोग धर्मलाभ लेना चाहते थे, दर्शन का अवसर खोना नहीं चाहते थे, झुण्ड़ के झुण्ड़ उनके दर्शन कर धन्य समझ रहे थे। वह चाण्ड़ालकन्या भी देखा-देखी दर्शन के लिए आयी। उसने महाराज के दूर से ही दर्शन किए। महाराज ने उसे ममतामयी नजरों देखा और कहा बेटी धर्माराधना करो, तुम्हारा भला होगा।

जीवन में पहली बार उसे किसी ने इतने वात्सल्य से देखा तथा पहली बार कोई इतने प्यार से बोला। उसे बहुत अच्छा

लगा, मुनिराज पर उसकी श्रद्धा कई गुणा बढ़ गई। क्योंकि **मीठे वचन विश्वास उत्पन्न करते ही हैं।**

उसने पूछा मुझे धर्म के बारे में कुछ भी पता नहीं, आराधना कैसे करूँ?

महाराज ने कहा- बेटी, कुछ नियम व्रत ले लो। मद्य, मांस, मधु का त्याग करो।

उसने कहा- ठीक है, महाराज, आज से मैं मद्य, मांस, मधु का सेवन नहीं करूंगी।

उसने जीवन में कभी अपने नियम नहीं तोड़े। अब चम्पानगरी के लोग, उसे सम्मान से देखते थे। उसे अच्छा लगता था। इस तरह नियमों का पालन करते हुए उसने शरीर छोड़ा।

मरकर वह चम्पानगरी में ही सुबन्धु व्यापारी के घर धनवती स्त्री से **सुकुमारी नामकी पुत्री** बनी। परंतु यहाँ भी पाप ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। मुनि को आहार में जहर देने का पाप अभी भी चल ही रहा था। उसके शरीर से बहुत दुर्गंध आती थी। जन्म के समय से ही पिताजी आदि सगे संबंधी भी उससे दूर रहते थे। माँ की ममता के सहारे वह जैसे-तैसे बड़ी हो गई। जैसे पेड़ के सहारे बेल बड़ी होती है। उसके शरीर की बदबू के कारण उसे सभी **दुर्गन्धा** कहकर पुकारते थे।

जब वह बड़ी हो गई तो माँ-पिताजी को उसके विवाह की चिंता हो गई। उन्होंने उचित वर की बहुत तलाश की पर कोई भी उसके साथ विवाह के लिए 'हाँ' नहीं कह रहा था।

इसी नगरी में धनदेव नाम का छोटा व्यापारी था। उसकी पत्नी का नाम अशोकदत्ता था। जिनदेव, जिनदत्त नामके दो पुत्र थे। सुबन्धु उसके पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गया। उसे धन का लोभ देने की कोशिश की, परंतु धनदेव यद्यपि छोटा व्यापारी था, पर वह नेक ईमानदार था, दूसरे की मजबूरी का फायदा उठाना

पाप समझता था। उसे सुबन्धु पर दया आयी। उसने बड़े पुत्र जिनदेव के साथ उसका विवाह करना चाहा। परंतु जिनदेव इसके लिए तैयार नहीं हुआ, दुर्गन्धा के साथ विवाह की बजाय मुक्तिकन्या के साथ विवाह अच्छा है- यह सोचकर वह घर छोड़कर **सुव्रत मुनि** के पास दीक्षित हो गया।

बड़े लोगों के आग्रह पर जिनदत्त दुर्गन्धा के साथ विवाह के लिए तैयार हो गया। परंतु विवाह के बाद दुर्गंध के कारण उससे दूर ही रहने लगा।

दुर्गंधा बार-बार अपने दुर्भाग्य को कोसती थी। वह धार्मिक विचारों में लीन रहने लगी। वह इसे अपने पूर्वजन्मों के कुकर्मों का दोष मानती थी। वह मानती थी कि इस दुनियाँ में और भी तो लड़कियां हैं, सभी के साथ ऐसा व्यवहार नहीं होता- जरूर मेरे पूर्व जन्मों के कर्म अच्छे नहीं थे, वरना मैं ही ऐसी क्यों? क्यों जन्म से ही बदबूदार शरीरवाली बनी हूँ? इस घटना से सुकुमारी ने बहुत प्रकार से अपनी निंदा की।

पति होते हुए भी बिन पति का जीवन जीनेवाली अपनी पुत्री की दुःखमयी दशा जानकर उसकी माँ धनवती उसे घर लिवा लायी। घर में भी माँ के अलावा पिताजी, भाई आदि सभी उससे दूर-दूर रहते थे। यहाँ तक कि उन्होंने उसके लिए घर के एक कोणे कुटिया बनाकर दी। वह उसी में रहती थी, सिर्फ माँ ही उसके पास आती जाती थी। उसे सदा समझाती थी कि -

बेटी, इस समय तुम्हारे पापकर्म के उदय के दिन चल रहे हैं। ये दिन भी निकल जाएंगे। अच्छे दिन आ जाएंगे। थोड़ा धैर्य रखो, हमेशा भगवान का स्मरण करती रहो, नियम शील की श्रद्धा करो, धर्म धारण करो, विलाप-विषाद मत करो। **बुरे दिनों में धैर्य ही एक शरण है।**

दुर्गन्धा माँ के कहे वचनों पर चलती। व्रत, उपवास करती

थी। एक दिन उसने उपवास किया तथा अनेक आर्यिकाओं से युक्त **क्षान्ता** नाम की आर्यिका को बड़ी भक्तिभाव से भोजन कराया।

क्षान्ता आर्यिका के संघ में कुछ दिन पहले ही दीक्षित हुईं, कोमल शरीरवाली, कम उम्र की दो आर्यिकाएं थीं। उनके विषय में जानने की उसकी इच्छा थी। इसलिए आहार के पश्चात् नम्रता के साथ जिज्ञासावश उसने पूछ ही लिया कि हे आर्ये! आपके साथ ये कोमलांगी आर्यिकाएं कौन हैं? और इन्होंने इतनी कम उम्र में दीक्षा क्यों ग्रहण की है?

क्षान्ता आर्यिका ने उत्तर में कहा-

पूर्व जन्म में ये दोनों सौधर्मस्वर्ग में सौधर्म इन्द्र की देवियाँ थीं। विमला और सुप्रभा- इनके नाम थे। एक बार वे अपने स्वामी के साथ नंदीश्वरद्वीप गई थीं। वहाँ बड़े भक्तिभाव से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, अर्चना की। वहाँ उन्होंने संसार से उदासीन होकर प्रतिज्ञा की थी कि-

''भविष्य में जब भी वे मनुष्य में जन्म लेंगी, तब निश्चय ही कठोर तपस्या करते हुए धर्मसाधना करेंगी।''

स्वर्ग से निकलकर वे दोनों अयोध्या के राजा श्रीसेन के घर रानी सुकान्ता की कोख से **हरिषेणा** तथा **श्रीषेणा** नाम की पुत्रियों के रूप में जन्मीं। युवा होने पर राजा ने स्वयंवर विधि से उनका विवाह करना उचित समझा। स्वयंवर की सम्पूर्ण तैयारी हुई, शुभमुहूर्त में वे स्वयंवर मंडप में आईं। वहाँ पहुँचते ही उन्हें ऊपर आकाश में नंदीश्वरद्वीप जानेवाले देवों के विमान दिखे, जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जिससे उन्होंने पूर्वभव की सारी घटनाएं, अपनी प्रतिज्ञाएं जानीं। उन्होंने वह वृतान्त पिताजी को सुनाया, उनसे दीक्षा के लिए आज्ञा मांगी। पिता की आज्ञा पाकर हमारे पास दीक्षित हुई हैं। अनेक स्थानों पर विहार करते हुए आज आपके घर हैं।

आर्यिकाओं की जीवनगाथा सुनकर वह विचारों में खो गई। सोचने लगी कि-

इन दोनों ने अनेक प्रकार की भोग-सामग्रियों को छोड़कर दीक्षा ली है, एक मैं हूँ, जो नाममात्र की भोग-सामग्री में ही फंसी पड़ी हूँ। विचारों की गहराइयों से निकल कर, माता-पिता भाईयों से आज्ञा लेकर उसने भी दीक्षा ली। वह आर्यिका माता बनी। एक समय पहले की अभागन अब जगत्पूज्य, जगद्वंद्य बन गई। उन्हीं के साथ रहकर व्रतों का पालन करने लगी।

×××××

एक बार वसन्तसेना नाम की वेश्या जा रही थी, उसके आगे-पीछे चार-पाँच चापलूस कामी थे। वसन्तसेना को देखकर सुकुमारी के मन में भाव आया कि ''काश, ऐसे अनेक पुरुष मेरी भी सेवा करते तो ---------।'' उसने ऐसे भावों को अपने पद के विरूद्ध जानकर पश्चाताप भी किया, परंतु उस निदान (भाव) से उसे बंध हो चुका था। व्रतादिक का पालन करते हुए देह त्यागकर स्वर्ग में देवी बनी। अर्जुन (सोमभूति) का जीव उसी स्वर्ग में देव था, उसकी पत्नी (देवी) बनी।

वहाँ धर्मसाधना में लीन रहते हुए समय बिताया। बाद में माकन्दी के राजा द्रुपद की पत्नी सुदर्शना की कोंख से **द्रौपदी** नाम की कन्या बनी। उसके धृष्टद्युम्न आदि अनेक भाई थे। उसके हंसते खेलते हुए दिन बीत गए। वह विवाहयोग्य हो गई। द्रुपद ने उसका विवाह, स्वयंवर-पद्धति से करना उचित समझा।

×××××

यहाँ एक अन्य घटना जो इसी प्रसंग से जुड़ी है, जानना जरूरी है-

एक **सुरेन्द्रवर्धन** नाम का विद्याधरों का राजा था, उसके एक पुत्री थी, जो विवाहलायक हो गई थी, तब उसने एक

निमित्तज्ञानी से पूछा कि इसका पति कौन होगा? निमित्तज्ञानी ने गंभीरतापूर्वक विचार करके बताया कि जो वीर माकंदी में आकर तुम्हारे गांडीव धनुष को गोल करने एवं राधावेध करने में समर्थ होगा, वही तुम्हारी पुत्री का एवं द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का पति होगा। सुरेन्द्रवर्धन गांडीवधनुष लेकर द्रुपद के पास आया, निमित्तज्ञानी की सारी बाते बता दीं।

द्रुपद ने राजाओं को निमंत्रण भेजे। स्वयंवर मंडप सजवाया, साथ ही वहाँ गांडीव सजवाकर रखवा दिया।

द्रौपदी अनुपम सुंदरी थी। उसके सौंदर्य की चर्चा पहले से ही फैली हुई थी। स्वयंवर में अनेक राजाओं की भीड़ जमा हो गई। **बिना पुण्योदय के कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती**, तब द्रौपदी जैसी अनुपम सुंदरी बिना विशेष पुण्य के कैसे प्राप्त होगी? जिसके पास वैसा पुण्य होगा, उसी का गला द्रौपदी के द्वारा पहनाई गई वरमाला से सुशोभित होगा। शेष हीनपुण्य या अल्पपुण्यवाले राजागण निराश ही लौटेंगे।

जिनकी चर्चा कथा के प्रारंभ में आई थी, वे सोमदत्त, सोमिल, सोमभूति स्वर्ग आदि जन्मों के बाद इस समय राजा पाण्डु की पहली पत्नी कुंती के गर्भ से क्रमशः युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन के रूप में जन्मे हैं। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री के गर्भ से पूर्व में जो धनश्री व मित्रश्री थीं, वे अनेक जन्मों के बाद इस जन्म में क्रमशः नकुल व सहदेव बने हैं। वे पांचों पाण्डु के पुत्र होने से पाण्डव कहलाए। सभी स्वभाव से सज्जन, नीति के मार्ग पर चलनेवाले थे।

पाण्डु ने मुनि से अपनी अल्पायु जानी, दीक्षा लेकर देह त्याग दी। सौंधर्म स्वर्ग में देव बने। माद्री ने भी तपस्या का मार्ग अपनाया। आयु पूर्ण कर स्वर्ग में देवी बनी।

पाण्डु के धृतराष्ट्र और विदुर दो भाई थे। धृतराष्ट्र ने एक

निमित्तज्ञानी मुनि से पाण्डवों के द्वारा कौरवों का विनाश जानकर पाण्डवों और कौरवों में राज्य को आधा-आधा बाट दिया और दीक्षा लेकर मुनि बन गए।

दुर्योधन स्वभाव से दुष्ट था। वह राज्य के बटवारे से खुश नहीं था। उसने लाक्षागृह (लाख का घर) बनवाया, उसमें पाण्डवों को रूकवाया। रात में उसमें आग लगवा दी। पाण्डव गुप्तमार्ग से बच निकले। वे दुर्योधन की नीयत जानकर गुप्तरूप से रहने लगे, परंतु सूर्य के प्रकाश को कौन दबा पाया? अपने पराक्रमों से वे जगह-जगह सम्मानित होते रहे। वे माकन्दी में एक कुम्हार के घर, ब्राह्मण का भेष धारण कर ठहरे हुए थे। वे भी कुतुहल व जिज्ञासावश द्रौपदी का स्वयंवर देखने आए।

द्रौपदी का स्वयंवर प्रारंभ हो गया। एक-एक कर राजा आते गए। गांडीव धनुष को झुकाने व राधावेध करने का प्रयत्न करने लगे, परंतु धनुष चढ़ाना तो दूर कोई भी राजा उसका स्पर्श भी नहीं कर पाया, धनुष की किरणों से उनकी आँखे चौंधियाने लगतीं, त्यों ही वे उसे छोड़कर लौट आते। दुर्योधन भी सफल नहीं हुआ। जब सभी राजा असफल हो गए, तब मंडप में सन्नाटा पसर गया। सब स्तब्ध थे, शांत थे। सबके मस्तक लटक गए। द्रुपद, द्रौपदी, सुरेन्द्रवर्धन विद्याधर आदि सभी को चिंता हुई कि अब क्या होगा? द्रौपदी के विवाह का क्या होगा?

द्रुपद आदि की ऐसी दशा देखकर युधिष्ठिर को दुख हुआ, उसने अर्जुन को इशारे से अपने पास बुलाया, धीरे से कहा-

हे वीर! हे पुत्र! आप संसार में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर हो। इन शूरवीर राजाओं में एक भी ऐसा नहीं निकला, जो धनुष को चढ़ा सका। आप जैसे धनुर्धर के होते हुए भी क्या द्रौपदी पतिविहीन ही रहेगी? द्रुपद जैसा सज्जन, धर्मात्मा, धर्मप्रिय राजा दुःखी हो- क्या यह हमें अच्छा लगेगा? इसलिए जाइए और लक्ष्यवेध कीजिए।

अर्जुन सिद्ध भगवान को याद कर भाईयों को नमस्कार कर लक्ष्यवेध के लिए जाने लगा, तब उस ब्राह्मण को धनुष की ओर जाते हुए देखकर कईं राजा मंदमंद उपहास मुद्रा में हंस रहे थे, कईं उसकी हंसी होने की प्रतीक्षा में थे। अर्जुन जब धनुष के पास गया, तब उसके पुण्यप्रताप से धनुष की ज्वालाएं अपने आप शांत हो गईं। उसने एक प्रयास में ही धनुष को झुकाकर लक्ष्य (राधा) वेध किया, तो सभी के मुँह खुले के खुले रह गए।

द्रुपद खुश हुए। द्रौपदी का मन खिल उठा। सुरेन्द्रवर्धन विद्याधर के हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था। हृदय में उमंगे, हाथ में वरमाला लेकर खुशी से चहकती द्रौपदी आगे बढ़ी। वह अर्जुन के गले में वरमाला ड़ाल रही थी, तब हवा का तेज झोंका आया। वरमाला की कुछ पंखुडियाँ अर्जुन के पास खड़े भाइयों पर गिरीं। इसी से **सती, पतिव्रता होते हुए भी सुकुमारी के जन्म में वसन्तसेना को देखकर बांधे हुए निदानबंध के पापोदय से जनता में उसके सम्बन्ध में यह अपवाद (अपयश) फैल गया कि वह पंचभर्तारी (पाँच पतिवाली) है।** इसलिए **जो पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकता, उसकी इच्छा करके पापबंध नहीं करें। इच्छा से पुण्य जलता है, बढ़ता नहीं।** पाप किस जन्म में फल देगा? सर्वज्ञ के अलावा कोई नहीं जानता? इसलिए सावधान रहिए, पापभाव को अपने पास भी फटकने नहीं दीजिए। अन्यथा दुर्गति को अपने पास ही जानिए।

लक्ष्यवेध समाप्त हुआ, परंतु दुर्योधन के मन में ईर्ष्या की आग जल रही थी। उसने बगावत के स्वर में अन्य राजाओं से कहा- हम जैसे वीरों के होते हुए इन भिखारी ब्राह्मणों को मण्डप में क्यों आने दिया? यह हम क्षत्रियों का अपमान है, घोर अनादर है।

कुछ राजाओं ने उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिला दी। कुछ ने कहा- हम सभी वीर असमर्थ रहे, तब वे आए, इसलिए द्रुपद को

दोष देना ठीक नहीं है। दुर्योधन ने अपने पक्ष के राजाओं के साथ मिलकर विचार-विमर्श करके एक दूत द्रुपद के पास भेजा और कहलवाया कि –

हे महाराज! दुर्योधन आदि शूरवीर राजाओं के रहते हुए आपने अपनी पुत्री एक ऐसे व्यक्ति के साथ ब्याह दी, जिसके कुलशील का पता नहीं, जो निर्धन भिखारी है, यह कार्य आपके अनुरूप नहीं, बल्कि अशोभनीय है। अतः इन ब्राह्मणों को बड़ा-सा उपहार देकर संतुष्ट करके किसी योग्य राजा के साथ द्रौपदी का विवाह कर दीजिए। अन्यथा हम सब को युद्ध के लिए बाध्य होना पड़ेगा। हम यह सहन नहीं कर पाऐंगे कि वीर क्षत्रिय राजाओं के रहते हुए एक अज्ञात कुलशील वाले, अतिसाधारण, दरिद्र ब्राह्मण के साथ द्रौपदी रहे! किसी राजा के साथ ही द्रौपदी का विवाह कराने से आपकी शान बनी रहेगी, वरना यह दाग सदा के लिए आपके चरित्र पर रहेगा कि द्रुपद ने वीर क्षत्रिय राजाओं के रहते हुए भी एक अज्ञात कुलशीली ब्राह्मण से बेटी ब्याह दी। अन्य लोग भी इसे उदाहरण बनाकर विजातीय विवाह करते रहेंगे।

द्रुपद को दुर्योधन आदि राजाओं का संदेश अप्रिय लगा, वे न्यायप्रिय राजा थे, उन्हें क्रोध आया, परंतु परिस्थिति देखकर उसे दबा दिया, परंतु कठोर शब्दों में जवाब भिजवाया कि-

हे दुर्योधन आदि राजओं ! आप सब को पहले अवसर दिया, परंतु आपके असफल होने पर आपके सामने इस वीर ने लक्ष्यवेध किया था, जो स्वयंवर की शर्त थी, नियमानुसार जिसने शर्त पूर्ण की, वही द्रौपदी का पति है। असफलता से तो आप सभी के मुँह लटक गए थे, अब किस मुँह से बातें कर रहे हों?

हमारा महल भी प्रजा का ही होता है, तब स्वयंवर मण्डप क्या चीज है? उस मण्डप में कोई भी आ सकता है। आने की मना नहीं है।

स्वयंवर में सफलता वीर को ही प्राप्त होती है, जो वीर है, वही राजा है, भले ही उसके पास राज्य न हो।

जिसने वीर, क्षत्रिय राजाओं से बढ़कर प्रयत्न किया, वह अज्ञात कुलशीली कैसे है? वह अतिवीर अब तो विश्वप्रसिद्ध है। रही बात दरिद्रता की, द्रुपद का दामाद दरिद्री नहीं हो सकता, जिसने द्रौपदी के गले में वरमाला ड़ाली है, वह अब दरिद्री नहीं है। दाग मेरे चरित्र पर नहीं, बल्कि आपके चरित्र पर रहेगा कि दुर्योधनादि वीर बैठे के बैठे ही रहे और एक साधारण व्यक्ति लक्ष्यवेध कर द्रुपद का दामाद बना। रही बात युद्ध की, द्रुपद, न्याय के लिए प्राणों को भी तुच्छ समझता है।

द्रुपद के उत्तर के साथ भावों को समझकर दुर्योधन व उसके पक्ष के राजा युद्ध की तैयारी करने लगे। उधर पाण्ड़व द्रुपद के पास गए। युद्ध के लिए पांच रथ मांगे, द्रुपद चतुर थे, समझ गए कि ये साधारण ब्राह्मण नहीं हैं, क्योंकि ऐसी मांग वीर (क्षत्रिय) ही कर सकते हैं। पाण्ड़वों ने रथों के आते ही द्रुपद को युद्ध जीतने का विश्वास दिलाया, निश्चिंत रहने के लिए कहा।

अब दोनों सेनाएं आमने-सामने आ गई। युद्ध होने लगा। युद्ध में घनघोरता आ गई। अर्जुन के बाणों के सामने दुर्योधनादि सब को पस्त देखकर अर्जुन के साथ युद्ध के लिए द्रोणाचार्य आए। गुरू द्रोणाचार्य को सामने देखकर अर्जुन ने अपने परिचयवाला पत्र बाण के द्वारा उनके चरणों तक पहुँचाया। पाण्ड़वों को जीवित जानकर द्रोणाचार्य को प्रसन्नता हुई। उन्होंने यह समाचार दुर्योधन को सुनाया। हवा की मानिंद यह खबर चारों ओर फैल गई। अमृत के समान मीठी लगी, परंतु दुर्योधन के शरीर को इस खबर से ईर्ष्या, द्वेष रूपी बिच्छु डंक मारने लगे। पर उसने अपनी पीड़ा बाहर प्रगट होने नहीं दी। पितामह भीष्म, गुरू द्रोणाचार्य, सुलझे विचारवाले कर्ण ने पाण्ड़वों से कौरवों को क्षमादान के लिए कहा।

पाण्ड़वों ने गुरूजनों का मान रखा। कौरवों को क्षमा कर दिया। पाण्ड़वों की यह उदारता कौरवों के लिए आग में घी की तरह थी। उधर दुर्योधन ने जिनेश्वर की शपथपूर्वक कहा कि लाक्षागृह में आग उसने नहीं लगायी। हालांकि लाक्षागृह में आग लगवाने की योजना दुर्योधन की ही थी। क्षमादान करने के पश्चात् सरलहृदयी पाण्ड़व कौरवों के गले मिले। कौरवों के गले पाण्ड़वों से मिल रहे थे, परंतु दिल नहीं।

द्रुपद ने अर्जुन का युद्ध देखा तो समझ गए थे कि वे साधारण ब्राह्मण नहीं हैं, अब तो पक्का हो गया कि वे सब पाण्ड़व हैं, वरमालाधारी वीर कोई और नहीं, बल्कि वीर, धनुर्धारी अर्जुन है। द्रुपद की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। द्रौपदी का विवाह ठाट-बाट से हुआ। द्रौपदी को लेकर पाण्ड़व हस्तिनापुर आकर रहने लगे।

×××××

एक दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर से कहा- आज मन बेचैन हो रहा है। यदि आपका मन हो तो मन बहलाने के लिए शतरंज खेलते हैं। युधिष्ठिर सरलमना थे, वे दुर्योधन के कपट को समझ नहीं पाए। वे शतरंज खेलने लगे, युधिष्ठिर का पक्ष हारने लगा। **एक बार का गलत रास्ते पर गया हुआ कदम सम्भला नहीं तो वह आदमी को विपत्तियों के गहरे गड्ढे में गिराता है।** पाण्ड़व जुए में धीरे-धीरे सब वैभव हार गए। युधिष्ठिर अपने भाइयों व पत्नियों को हार गए। भीम आदि ने उन्हें टोका था, परंतु **व्यसनों के नशे में सत्य सुनाई नहीं देता। जुआ तो व्यसनों का सिरमौर है। उसे तो झूठमूठ में भी नहीं खेलना चाहिए।** अन्त में युधिष्ठिर स्वयं को भी हार गए, तब महल में लौट आए। वे ठीक से बैठ भी नहीं पाए थे कि दुर्योधन के दूत ने आकर कहा कि अब आप दुर्योधन के अधीनस्थ होने से वे आपको आज्ञा देते हैं कि आप भाइयों के साथ वनवास जाइए। क्योंकि आप राजपाट को 12 वर्ष के लिए हार

चुके हो, अतः आज रात्रि के अंधेरे में ही निकल जाइए।

उधर दुःशासन रनिवास में गया। द्रौपदी को जबरदस्ती बाहर निकालने लगा। द्रौपदी ने विरोध किया तो वह उसके बालों को पकड़कर घसीटते हुए बाहर लाया। भीष्म ने उसे ऐसा करने से मना किया। पर **क्या कषायों का ज्वार सद्विचार को सहन कर पाता है?** माँ समान अपनी भाभी का अपमान कर दुःशासन ने अपनी दुर्गति तय की थी। द्रौपदी के बाल बिखर गए, साथ ही आँखों से आँसुओं की धाराएं भी निकलती रहीं। विलखती-बिसुरती द्रौपदी पाण्ड़वों के पास गई, सुबकते हुए उसने कहा-

आज मेरा घोर अपमान हुआ है, यह मेरा नहीं आपकी वीरता का अपमान है। मैं अबला हूँ, पर आप सब तो वीरों में वीर कहलाते हो, आपके रहते मेरा अपमान क्यों हुआ? जिस मुँह को खुले हुए किसी ने नहीं देखा, इस पापी की वजह से उसे सब ने खुला देखा। आप वीरों के साथ समझदार भी हों, आपको अपनी कुलवधू की रक्षा, सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए।

उसने भीम, अर्जुन की ओर मुखातिब होकर कहा- आप लोगों के सामने भी मेरा यों हि अपमान होता रहेगा तो आपकी गदा और धनुष किस काम के ?

भीम, अर्जुन की त्यौंरियाँ चढ़ गईं, दुःशासन का नाश करने के लिए युधिष्ठिर से आज्ञा मांगी। पुत्रसमान भाईयों को युधिष्ठिर ने बड़े शांत स्वर से समझाया कि इसमय हमारा समय अनुकूल नहीं है। **पाप के उदय में समय अनुकूल नहीं हो तो शांत रहना ही एकमात्र उपाय होता है। पाप का उदय समाप्त होने तक शांत रहना चाहिए।** मेरी दुर्बुद्धि की वजह से आप सब पर इस तरह विपत्ति के बादल मंड़रा रहे हैं। आप सब का बल संसार में सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी मेरी दुर्बुद्धि की वजह से व्यर्थ हो गया है। कुछ काल तक हमें शांत ही रहना चाहिए। पुण्य का उदय आने पर

अनुकूल समय आने पर हम अवश्य ही इस अपमान का बदला लेंगे।

बड़े भाई के आगे आज्ञाकारी अनुज नतमस्तक हो गए।

युधिष्ठिर के निर्देशन पर सभी वनवास पर निकल गए। जाने से पहले वे सब द्रौपदी की सुरक्षा चाहते थे, वे चाहते थे कि द्रौपदी को किसी सुरक्षित स्थान पर रखकर वनवास में चले जाएं। पर द्रौपदी कब और कैस मानती? वह तो अपनी जिद पर अड़ी रही कि वह भी उनके साथ ही जाएगी।

द्रौपदी को साथ लेकर पाण्ड़व रात अंधेरे में वनवास के लिए निकल गए।

मनोरंजन हेतु खेले गए थोड़े समय के खेल ने उन वीरों को वन में उबड़, खाबड़, कंकरिली जमीन पर रहने के लिए, पेड़ों की छाल के कपड़े पहनने के लिए, वन के फल, झील, नदियों का पानी पीने के लिए मजबूर होना पड़ा।

रात में जंगली, ड़रावने जानवरों की आवाजें, नीचे चुभनभरी धरती, ऊपर से सर्दी, गर्मी, बारिश की परेशानियों से ढ़ंग से नींद नहीं आती थी।

वे सब पुण्यशाली थे, इसलिए अतिकष्ट तो उन्हें नहीं था, पर थोड़ा कष्ट तो कष्ट ही था, आखिरकार वह था तो वन ही, घर तो था नहीं। **पुण्य के उदय के बिना तिनका भी प्राप्त नहीं होता; महल, राजपाट की बात तो बहुत दूर की है।**

जब एक दिन उन्हें जंगल में मुनिसंघ दिखाई दिया, तब उन्हें वनवास में भी पुण्य दिखाई दिया। उन्होंने जंगल में मंगल माना। आज यदि वे वन में नहीं होते तो जगत् के तारणहार मुनियों के दर्शन कैसे होते ?

परंतु दुर्भाग्य ऐसा कि मुनिराजों के स्वागत-सत्कार आदि के लिए शुद्ध, प्रासुक वस्तुएं पास नहीं थीं। उन्हें आहार दे तो कैसे दे? स्वयं वन के फल खानेवाले, मुनिराजों को आहार में क्या देते?

देते तो कैसे? उन्हें आहार न देने की अपेक्षा मृत्यु भली लगी। वे अपनी निर्धनता, विवशता, लाचारी को मन ही मन धिक्कारने लगे।

आचार्य युधिष्ठिर आदि के भावों को अपने दिव्यज्ञान से समझ गए। उन्होंने पाण्ड़वों को संबोधा कि-

हे धर्मवत्सल, धर्मप्रेमी युधिष्ठिर, तुम तो संसार की विचित्रता को समझते हो, आप सबने उसको भोगा है, भोग रहे हो, थोड़ी-सी दुर्बुद्धि आप को जंगल में लाई है। पूर्व में आपने जो पाप किया था, आज वह उदय में आया है, परंतु कुछ समय बाद वह समाप्त हो जाएगा। दुःखी मत होना, क्योंकि **पाप में समता धारण करना ही उपाय है।**

धर्म को वचनों के द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट कर अमृतवचनों की वर्षा कर वे संघसहित वहाँ से चले गए।

×××××

एक बार विद्याधरों के साथ दुर्योधन का युद्ध हुआ था, उसमें विद्याधरों ने दुर्योधन को हरा, बंदी बना लिया था। यह घटना जब युधिष्ठिर को पता चली, तो अर्जुन को भेजा। विद्याधरों को हराकर अर्जुन युधिष्ठिर के सामने दुर्योधन को लाया, युधिष्ठिर ने उसे प्रेम से गले लगाया, प्रेम से मिलकर अपने कुल की अच्छी परम्परा की याद दिलाकर अच्छे से राज्य की प्रेरणा के साथ विदा कर दिया।

दुर्योधन अपनी राजधानी में लौट आया, परंतु वह बेचैन रहने लगा, विद्याधरों के द्वारा बंदी बनाया जाना- उसे इतना नहीं अखरा था, जितना अर्जुन के द्वारा छुड़ाया जाना। दुर्योधन इस अपमान को सहन नहीं कर पा रहा था, वह भीतर ही भीतर झूरने लगा, बेचैन रहने लगा, उसे इसमें पाण्ड़वों का प्रेम नहीं, अपितु कृपा दिखी, अपना छोटापन दिखा। उसे लगा कि जीवन में बार-बार आनेवाली परेशानियों, अपमानों का कारण पाण्ड़व ही हैं, जो

उसका चैन बार-बार खींच रहे हैं, उसने सोचा कि पाण्ड़व नहीं रहे तो ही उसे इन सबसे निजात मिल सकती है। इसलिए उसने एक योजना सोची कि जो कोई पाण्ड़वों को गुप्तरूप से मारेगा, उसे आधा राज्य देने की गुप्त रीति से घोषणा भी कर दी।

कनकध्वज ने दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा की कि मैं पाण्ड़वों को मारूँगा, यदि असफल रहा तो स्वयं को अग्नि के हवाले कर दूंगा। इस कार्य की सिद्धि के लिए उसने **कृत्या** नामक विद्या की साधना प्रारंभ कर दी।

पाण्ड़वों का वन में समय बीत रहा था। एक दिन किसी देव ने द्रौपदी का अपहरण किया। उस देव के पीछे अर्जुन, भीम, नकुल भागे, परंतु देव के द्वारा निर्मित मायामयी जल को पीकर बेहोश हो गए।

इसी समय कनकध्वज को कृत्या विद्या सिद्ध हो गई, उसने उस विद्या को पाण्ड़वों को मारने का आदेश दिया। उस विद्या ने पाण्ड़वों को बेहोश देखा, वह देव जिसने पाण्ड़वों को मायामयी जल से बेहोश कर दिया था, उसने भील के भेष में आकर उस कृत्या विद्या से पूछा - यहाँ किस लिए आयी हो?

विद्या ने कहा - यहाँ आयी थी अपने मालिक की आज्ञा से पाण्ड़वों को मारने के लिए, पर वे तो पहले से ही मरे हुए हैं। अब मैं क्या करूँ? भील भेषधारी देव ने उसे कहा कि जिसने भेजा, उसी को मार दो, तुम्हारा काम पूरा हो जाएगा। विद्या ने वैसे ही किया, कनकध्वज को मार दिया। देखो, पुण्यपाप का खेल, जो विद्या पाण्ड़वों को मारने के लिए सिद्ध की थी, **पुण्य के उदय से पाण्ड़व तो बच गए, पर पाप के उदय से विद्या सिद्ध करनेवाला अपने अधीन रहनेवाली विद्या से मारा गया।**

देव ने विद्या के जाने के बाद पाण्ड़वों को होश में ला दिया और बताया, मैं सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र के आदेश से विद्या से आप

लोगों की रक्षा के लिए आया था, आप की रक्षा का कार्य पूरा हो गया, इसलिए जा रहा हूँ। आपकी धर्मश्रद्धा, धर्मभक्ति से प्रभावित होकर इन्द्र ने यह कार्य मुझे सौंपा था।

देव के जाने के बाद पाण्ड़व और अधिक गुप्त रूप से रहने लगे।

देखते ही देखते उनका 12 वर्ष का वनवास का समय बीत गया। अब एक वर्ष का अज्ञातवास का समय बाकी था। सबने अलग-अलग भेष धारण किए। विराटनगर आए। यहाँ के राजा का नाम विराट था। उसी विराट राजा की राजसभा की नौकरी का कार्य युधिष्ठिर ने प्राप्त किया। भीम, राजा की रसोई में रसोइया बना। नकुल, राजा की घुड़साल में घोड़ों की देखभाल का कार्य करने लगा। सहदेव राजा की गाएं संभालने लगा। अर्जुन ने स्त्री का भेष धारण किया, वह नृत्यशिक्षिका का कार्य करने लगा। द्रौपदी दासी बनकर रानी सुदर्शना की सेवा करने लगी। सभी छद्मवेष में अपना-अपना कार्य कर रहे थे, समय-समय पर एक दूसरे से मिलते थे।

एक दिन रानी सुदर्शना का भाई कीचक बहन से मिलने आया था, वहाँ उसकी नजर द्रौपदी पर पड़ी। द्रौपदी का सौंदर्य उसे इतना भाया कि वह उसे देखता ही रहा। वह उसे पाना चाहता था, प्रयत्न करने लगा, उसे पाने के लिए। उसने द्रौपदी से बात की, तब द्रौपदी ने उसे समझाया कि कहाँ आप राजा के साले साहब? और कहाँ मुझ जैसी दासी? आपको मुझ जैसी दासी के लोभ में पड़ना शोभा नहीं देता। **लोभ में पड़ा आसक्त व्यक्ति विषय-कषायों में फँसकर दीनता को प्राप्त होता है,** वह द्रौपदी के सामने गिड़गिड़ाने लगा, विषयों की भीख मांगने लगा। तुम्हें पाए बिना मैं मर जाऊँगा- इस तरह व्याकुलताभरे वचन कहने लगा।

अन्त में द्रौपदी ने उससे कहा कि मुझे अबला समझने की भूल न करें, मेरे पांच महा बलशाली गंधर्व रक्षक हैं। उन्हें पता

चले तो आप को जीवित नहीं रहने देंगे। अतः आपकी भलाई इसी में है कि आप मुझसे दूर ही रहिए और मेरा विचार अपने दिमाग से निकाल दीजिए। जब कीचक ने जबरदस्ती करने की कोशिश की, तब द्रौपदी ने युक्ति से काम लिया, उसे अन्य दिन निश्चित स्थान पर मिलने के लिए बुलाया। उधर मिलने की खुशी में कीचक उछलता-कूदता चला गया। इधर द्रौपदी ने सारी बातें पाण्ड़वों को एकान्त में बुलाकर बता दीं। युधिष्ठिर ने भीम को स्त्री के भेष में (द्रौपदी के स्थान पर) कीचक से मिलने के लिए भेजने की योजना बनाई।

निश्चित स्थान व समय पर स्त्री-भेष में भीम पहुँच गए। कीचक तो उससे भी पहले उस स्थान पर पहुँच चुका था। भीम ने कीचक की जमकर पिटाई की। बुरे काम का बुरा नतीजा होता है। विषयवासना का बुरा फल देखकर उसे बड़ा भारी पश्चाताप हुआ, संसार की विचित्रता, भावों की असारता देखकर उसे वैराग्य हुआ। उसने **रतिवर्धन नाम के मुनि** के पास दीक्षा ली, कुछ समय **पहले जो विषयों से हारा हुआ था, अब स्वयं तारणहार मुनि बना।** एकांत निर्जन स्थान पर चला गया। कीचक के निन्यानवें भाई थे। सब ने उसे खोजा, पर कहीं नहीं पाया। उन्हें एक जलती हुई चिता दिखाई दी, किसी ने बताया कि यह जलती चिता कीचक की है तथा उस की यह दशा शैलन्ध्री नाम की दासी के कारण हुई है। (द्रौपदी, शैलन्ध्री नाम से दासी का कार्य कर रही थी।)

उधर द्रौपदी ने यह समाचार चारों ओर फैला दिया कि कीचक अपनी कामवासना को पूरी करने के लिए उससे जबरदस्ती करने लगा था, तब एक गंधर्व उसकी रक्षा करने आया और उसने उसकी पिटाई की। यह बात सारे राज्य में आग की तरह फैल गई। यह समाचार राजा विराट तक पहुँचा। वह सकते में आ गया। लोग ड़रे हुए थे, वे जमा हो गए। कुछ लोग इस दुःखद घटना का कारण शैलन्ध्री (द्रौपदी) को जानकर उसे चिता में जलाने

का प्रयास करने लगे तो वह जोर-जोर से करूण स्वर से विलाप करने लगी, सहायता के लिए पुकारने लगी। उसकी आवाज भीम के कानों तक पहुँची तो गुस्से में एक बड़े वृक्ष को जड़ से उखाड़कर वह चिता की ओर आया, उसे इस तरह देखा तो सबको गंधर्व के आने का भ्रम हो गया, लोग तो भाग गए, पर कीचक के निन्यानवें भाई वहीं खड़े रहे, गुस्साए भीम का गुस्सा उन पर निकला, उसने उन्हें जलती चिता में ड़ाल दिया। वे सब जीवित मारे गए।

उधर कीचक मुनि ध्यान, अध्ययन, कठोर तप में समय व्यतीत करते-करते घने जंगल में एकान्त निश्चल बैठे थे। वहाँ एक यक्ष पहले से ही था। उसने मुनि के मन की निर्मलता की परीक्षा के लिए आधी रात के समय द्रौपदी का रूप धारण कर मुनि के सामने पहुँच अनेक कामभरी क्रीड़ाएं कीं। उसकी ये क्रीड़ाएं जली हुई रस्सी की तरह साबित हुईं, जो मुनि के मन को बांध न सकीं। मुनि तो विकारों से दूर की किसी दूसरी दुनियां में थे, जहाँ आत्मिक आनंद के सागर में डुबकियों के अलावा दूसरा कार्य था ही नहीं। उन्होंने वैराग्यजननी भावनाओं के चिंतन एवं आत्मिक शरण से अपनी शुद्धि की रक्षा की। मन को विकारी नहीं होने दिया, फलस्वरूप विषयवासना पर विजयपताका के रूप में उन्हें अवधिज्ञान प्रकट हुआ। उनकी अचल, कठोर साधना देखकर यक्ष हार गया, उसने उनसे बार-बार क्षमायाचना की, पुनः-पुनः नमस्कार, प्रणाम किए। तथा बड़ी विनय के साथ द्रौपदी के प्रति उनके प्रेम का कारण पूछा। तब मुनि ने अवधिज्ञान के बल पर जो बताया, वह इस प्रकार है-

एक समय मैं **तरंगिनी** नाम की नदी के किनारे, जहाँ **वेगवती** नाम की नदी का संगम होता है, वहाँ **क्षुद्र** नाम का म्लेच्छ था। मेरे परिणाम बहुत रौद्र रहते थे, वहाँ एक बार मुनिराज आए थे, उनके दर्शन से मेरे परिणामों में शांति छा गई। उनके दर्शन के

बाद से मेरे परिणाम शांत रहने लगे।

मरकर मैं व्यापारी के घर **कुमारदेव** नामका पुत्र बना। वहाँ मेरी नागश्री नामक माँ ने **धर्मरुचि** नामक मुनिराज को विष मिलाकर आहार दिया था, जिसने मुनि की मृत्यु हुई थी। इस जघन्य पाप से वह कुगतियों भटकती रहीं। मैं मरकर कुत्ता बना। कुत्ते का जीवन पूरा कर मैं **सित** नामक तापस के घर मधु नामक पुत्र बना। एक दिन किसी श्रावक ने **विनयदत्त** मुनि को आहार दिया, तब मैं वहीं था, मुनिमुद्रा मुझे इतनी भाई की मैं भी मुनि बना। समाधिपूर्वक देह त्याग कर मैं **स्वर्ग में देव** बना। स्वर्ग से आकर इस समय मैं कीचक बना हूँ। मेरी माँ का जीव (जिसने महाराज को विषमिश्रित आहार दिया था, वह) इस समय द्रौपदी बनी है। पूर्वसंस्कारों के कारण इस जीवन में उसके प्रति प्रेम उमड़ा था।

मुनिराज से वैराग्यभरी घटनाएं सुनकर यक्ष द्रवित हुआ, मुनि को नमस्कार कर वह चला गया।

इधर कीचक के गंधर्व द्वारा मारे जाने के समाचार सुनकर कौरवपक्ष का पक्षधर **जालन्धर** नामक वीर राजा दलबल के साथ विराटनगर आया। वहाँ वह गाये चुराने लगा, दरअसल उसे गाए नहीं चुरानी थीं, वह तो गायों को चुराने के बहाने राजा से युद्ध करना चाहता था। वहाँ उसकी इच्छा पूरी हुई, विराट राजा और उसके पुत्र युद्ध के लिए सेना के साथ आ गए, परंतु जालंधर की विराट सेना देखकर सहम गए। पाण्ड़वों ने उन्हें हिम्मत दिलाई। उनमें युद्ध हुआ, जिसमें जालन्धर ने विराट राजा को बंदी बना लिया और ले जाने लगा, तब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम युद्ध के लिए गया। भीम ने जालन्धर से युद्ध किया, जालन्धर को हराकर विराट राजा को मुक्त कराया। जालन्धर को ही बंदी बना लिया। जालन्धर के बंदी बनाने के समाचार दुर्योधन तक पहुँच गए तो वह आग-बबूला हो गया। वह स्वयं विशाल सेना के साथ युद्ध के

लिए आया। उनमें घनघोर युद्ध होने लगा, युद्ध की भयंकरता देखकर दुर्योधन की सहायता के लिए पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य आदि एक-एक कर आए, अन्य कौरवपक्षी राजा भी आ गए। युद्ध लम्बी अवधि तक चलता देख, हिंसा पाप की जड़ जानकर अर्जुन ने सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग कर कौरवपक्ष के सभी महारथियों को मूर्च्छित कर बंदी बना लिया। इस तरह से उस युद्ध में राजा विराट को विजय प्राप्त हुई।

युद्ध में चतुराई और पराक्रम देखकर राजा विराट को समझने में देर नहीं लगी कि पांचों युद्धवीर कोई और नहीं बल्कि पाण्ड़व ही हैं, उन्होंने उनको बुलाकर उनका सम्मान किया, अपनी लघुता प्रकट की, क्षमा मांगी, खेद व्यक्त किया। पाण्ड़वों ने उन्हें सम्मान देकर अपनी परिस्थिति का कारण बताया और कहा- कि इसमें आपकी कोई भूल नहीं थी, आप क्षमा मांग कर हमें शर्मिंदा मत कीजिए, आप बड़े हैं, हमारे हितैषी भी, इसलिए हम ही क्षमा मांगते हैं।

राजा विराट ने अपनी एकमात्र पुत्री का विवाह अर्जुन से कराने का प्रस्ताव रखा। अर्जुन ने यह कहकर मना कर दिया कि आपकी पुत्री को मैंने (वृहन्नला बनकर) शिक्षा दी है, उसका शिक्षागुरू होने से मेरे लिए वह पुत्री के समान है, इसलिए मैं उससे विवाह नहीं कर सकता। हॉ, यदि आप उचित समझे तो सुभद्रा से उत्पन्न मेरा एक पुत्र 'अभिमन्यु' है, वह विवाह-योग्य भी हो गया है। उसके साथ उसका पाणिग्रहण (विवाह) कराइये। राजा विराट को अर्जुन का प्रस्ताव अच्छा लगा, सभी ने अनुमोदना की। अभिमन्यु का ठाटबाट से विराट की पुत्री से विवाह सम्पन्न हुआ।

विवाह के बाद पाण्ड़व कृष्ण के पास द्वारिका आ गए। उनका 12 वर्ष का वनवास व एक वर्ष का अज्ञातवास का समय

पूरा हो चुका था। द्वारिका में पाण्ड़व आराम से रह रहे थे, एक दिन उन्होंने संधिप्रस्ताव के साथ एक दूत दुर्योधन के पास भेजा। आधे राज्य की मांग की। दुर्योधन ने गुस्से में आकर मना कर दिया।

उसी समय की बात है, द्वारिका का एक व्यापारी व्यापार करने के लिए जरासन्ध के राज्य में गया था। वहाँ वह जरासंध से मिला। राजा को दिव्यरत्न देकर नमस्कार किया। बातचीत में जरासंध ने पूछा कि वहाँ का शासक कौन है? दिव्य रत्न कैसे मिले? व्यापारी ने बताया-

तीर्थङ्कर नेमिनाथ जिनके सहयोगी हैं, ऐसे नारायण (चक्रवर्ती) कृष्ण वहाँ के आदरणीय शासक हैं। तीर्थङ्कर नेमिनाथ के जन्म के समय स्वर्ग के देवों ने कुबेर की आज्ञा से 15 माह तक रत्न बरसाए थे, उनमें से ये कुछ रत्न लेकर आया हूँ।

जरासंध स्वयं को नारायण (चक्रवर्ती) समझता था, अपने आपको भरतखण्ड का सबसे बड़ा राजा (चक्रवर्ती) समझता था। इसलिए उसने जब व्यापारी के मुँह से कृष्ण की प्रशंसा सुनी, वह चक्रवर्ती माना जाता है, ऐसा सुना तब उत्तेजित हुआ। क्योंकि **अभिमानी दूसरे की प्रशंसा कब सहन कर पाता है?** उसने झूठे चक्रवर्तित्व के अभिमान में व्यापारी से कहा-

कृष्ण, यहाँ आकर हमें नमस्कार करें, हमारी अधीनता स्वीकार करें और सुख से राज्य करें, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार रहें।

व्यापारी चला गया। उसने यह समाचार श्रीकृष्ण को सुनाया। कृष्ण ने उत्तर के रूप में कुछ नहीं कहा, केवल मंदमंद मुस्कुराए। न ही उन्होंने जरासन्ध के पास कोई जवाब भेजा।

कई दिनों तक जवाब नहीं आया, तब जरासन्ध ने कृष्ण (द्वारिका) पर आक्रमण का निर्णय किया। सहयोग के लिए दुर्योधन के पास एक दूत भेजा। दुर्योधन को यह अवसर अच्छा लगा, एक

तीर से दो निशाने होते दिखाई दिए, क्योंकि पाण्ड़व वहीं थे। दुर्योधन का साथ पाकर सेना लेकर जरासंध द्वारिका पर हमले के लिए निकल पड़ा। जरासंध के समाचार, उसकी युद्ध की घोषणा, सहयोगियों की जानकारी जानकर नारद ने कृष्ण को बतायी।

जरासंध ने व्यूहरचना करके, सारी तैयारियाँ करके एक दूत कृष्ण के पास भेजा और कहलवाया कि मुझे नमस्कार करो, मेरी अधीनता स्वीकार करो, अन्यथा राज्य छोड़कर जाओ या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

कृष्ण ने नमस्कार करने या राज्य छोड़कर जाने से भी मना कर दिया। युद्ध के लिए तैयार होने के लिए कहा।

युद्ध की घोषणा हुई। दोनों ओर की विशाल सेनाएं कुरूक्षेत्र में आमने-सामने आ गईं। युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों ओर से भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ। उस युद्ध की भयंकरता का वर्णन शब्दों में संभव नहीं है।

एक बार इस महायुद्ध में कौरवपक्ष के जयाद्रि आदि अनेक राजाओं ने अभिमन्यु को घेर लिया था, उस पर एक साथ सबने शस्त्रास्त्रों से प्रहार किए, उसे घायल किया, उसे मरणासन्न, प्यासा देखकर कर्ण ने उसे पानी पिलाना चाहा, पर अभिमन्यु ने यह कहकर मना कर दिया कि-

मेरा बचना संभव नहीं है, ऐसा जानकर मैंने समाधि, सल्लेखना ग्रहण की है। मैंने अन्न-जल का त्याग किया हुआ है, अब मैं पंचपरमेष्ठी के स्मरण के साथ देह छोड़ रहा हूँ।

युद्ध में शिखण्डी के द्वारा भीष्म, अर्जुन के द्वारा द्रोणाचार्य और जयद्रथ, युधिष्ठिर के द्वारा शल्य, भीम के द्वारा दुर्योधन, कृष्ण के पुत्र शम्बुकुमार के द्वारा अनेक वीर मारे गए।

श्रीकृष्ण जरासंध का वध कर चक्रवर्ती बने। युद्ध में श्रीकृष्ण, पाण्ड़वों की विजय हुई। युद्ध में विजय के बाद पाण्ड़व

हस्तिनापुर आकर राज्य संभालने लगे।

×××××

पाण्ड़व राज्य को न्याय, नीति, प्रेम से चला रहे थे, प्रजा भी उनके राज में प्रसन्न थी। दिन देखते-देखते सुख से बीत रहे थे।

एक बार नारद हस्तिनापुर आये थे। पाण्ड़वों से मिलने के बाद द्रौपदी से मिलने की इच्छा से द्रौपदी के महल में गए। जब वे महल में आए, तब द्रौपदी श्रृंगार करके अपने सौंदर्य को दर्पण में निहार रही थी। अपने ही सौंदर्य के जाल में फंसी हुई द्रौपदी नारद को नमस्कार करना ही भूल गई। मौन ही रही। उसका नमस्कार न करना नारद को अखरा, हृदय तक चुभ गया। द्रौपदी के रूखे व्यवहार को नारद ने अपना अपमान समझा, हालांकि द्रौपदी ने जानबुझकर ऐसा नहीं किया था। नारद ने मन की बात मन में ही रखी और वहाँ से चले गए।

बदला लेने की भावना से नारद ने द्रौपदी का एक सुन्दर चित्र बनाया। उस चित्र को लेकर **धातकीखण्ड द्वीप** की **अमरकंका नगरी** के **पद्मनाभ राजा** को दिखाया। पद्मनाभ राजा ने जब उसे देखा तो देखता ही रहा, वह हक्का-बक्का रह गया, इतनी सुंदर महिला उसे कहीं नहीं दिखी थी, इसलिए उसने उसको पाने की चाह मन में लिए हुए पूछा- यह कौन है ?

नारद ने बताया - जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के कुरूजांगल देश की हस्तिनापुर नगरी के राजा युधिष्ठिर के छोटे भाई अर्जुन की पत्नी द्रौपदी है। आन्तरिक संताप और काम से पीड़ित हुए पद्मनाभ ने यह नहीं सोचा कि यह ब्याहता है, उसे पाने की इच्छा उसे दुर्गति में ले जाएगी। नारद तो अपना प्रयोजन सिद्ध समझ कर वहाँ से चले गए।

नारद के जाने के बाद राजा पद्मनाभ बेचैन रहने लगा। उसे

द्रौपदी के बिना जीवन बेकार लगने लगा। वह बीमार रहने लगा। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या उपाय करे? जिससे उसे द्रौपदी की प्राप्ति हो जाए। बहुत सोचने के बाद उसे एक उपाय सूझा।

पद्मनाभ जंगल में गया। वहाँ उसने मंत्र की आराधना की। मंत्र की आराधना से उसने एक **संगम नाम के देव** को सिद्ध (आधीन) किया। सिद्ध होते ही संगम देव ने पद्मनाभ से किसी कार्य के लिए पूछा। तब उसने द्रौपदी को लाने के लिए कहा।

संगम देव गया। रात्रि में पलंग पर सोई हुई द्रौपदी को पलंग सहित उठाकर लाया। सुबह आँख खुलने पर उसने अपने आपको एक अनजान जगह पाया। सामने एक अपरिचित व्यक्ति को हँसते हुए देखा, द्रौपदी ने इसे सपना समझकर पुनः आंखे बंद कर दीं।

पद्मनाभ ने उसके पास आकर धीरे से कहा- हे विश्वसुन्दरी देवी, यह सपना नहीं हकीकत है। मैं धातकीखण्डद्वीप की अमरकंका नगरी का राजा पद्मनाभ हूँ। नारद ने आपका चित्र दिखाया, उसे देखकर मंत्र-मुग्ध हो गया था, आपको पाने के लिए मंत्र की आराधना की, उससे एक अधीन रहनेवाला एक आज्ञाकारी देव सिद्ध हुआ। उसे आदेश देकर आपको यहाँ बुलवाया। मेरी आज्ञा से वह देव आपको पलंगसहित उठाकर यहाँ लाया। आप मेरी रानी बनना स्वीकार करके मुझे प्रसन्न करो, यहाँ मेरा अथाह वैभव है, उसका उपभोग करो। मेरी महारानी बनकर आनंदपूर्वक जीवन जिओ।

द्रौपदी हकीकत जानकर ड़र गई, सहम गई। रोने लगी। अर्जुन को याद करने लगी। उसे वापिस छोड़ने के लिए कहा, परंतु **कामी पर आंसू, विपत्ति, रोने, ड़रने का कोई असर नहीं होता।** विनति बेअसर देखकर वीरांगना द्रौपदी ने गरजते हुए कहा-

मुझे अबला समझने की भूल मत करना, आप जानते

नहीं हो? किससे बात कर रहे हो? मेरे एक नहीं पाँच पाण्ड़व रक्षक हैं; जो इस धरती पर सबसे अधिक बलशाली हैं।

मैं सिर्फ अर्जुन की पत्नी हूँ, उसकी रहूँगी। तुम जैसे कायर की नहीं, जो परविवाहिता स्त्री को नींद में उठवाकर लाते हैं। मैं तुमसे विवाह करके नहीं, बल्कि पाण्ड़वों के हाथों मरवाकर प्रसन्न करूँगी।

अर्जुन ही एकमात्र मेरा वैभव है। तुम्हारा तो क्या संसार का सारा वैभव मुझ जैसी विवाहिता के लिए सड़े-गले कचरे से भी बदतर है। **जिसके पास शीलरूपी खजाना नहीं, उसके पास कुछ भी नहीं,** वह क्या आनंदपूर्वक जीवन जी सकता है? मैं मरकर भी अपने शील की रक्षा करूंगी। वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है।

द्रौपदी ने उसके सामने प्रतिज्ञा की कि-**जब तक अर्जुन के दर्शन नहीं होते, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।** उसने पंच परमेष्ठी का उच्चारण कर उनको नमस्कार करते हुए अन्न-जल त्याग दिये।

×××××

इधर हस्तिनापुर में सुबह होने पर द्रौपदी के दिखाई नहीं देने पर खलबली मच गई। किसी को समझ में नहीं आ रहा था, कि बलशाली पाण्ड़वों के होते हुए कौन हिम्मत कर सकता है, द्रौपदी का अपहरण करने की? द्रौपदी का पता लगाने के लिए चारों ओर गुप्तचर फैला दिये गए, परंतु कहीं से कोई सूत्र हाथ नहीं लगा। द्रौपदी का कोई समाचार कहीं से भी नहीं मिल रहा था। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, त्यों-त्यों पाण्ड़वों की चिंताएं बढ़ रही थीं।

उधर द्वारिका में कृष्ण को द्रौपदी के अपहरण की सूचना सुनाई। गुस्से में आकर कृष्ण ने युद्ध की तैयारी प्रारंभ कर दी। क्योंकि पाण्ड़व रिश्तें में यादवों के भांजे थे, कृष्ण को क्रोध आना

स्वाभाविक था।

नारद अपने अपमान का बदला चुकता हुआ है या नहीं, यह देखने के लिए अमरकंका नगरी पहुँचा। पर यह क्या? अमरकंका पहुँचते ही द्रौपदी के सतीत्व और धर्मपरायणता के तेज के आगे उसका बदला लेने का विकार हार गया। द्रौपदी की ऐसी दयनीय दशा देखकर नारद को धक्का लगा, दुःखी हुआ, वह सोचने लगा- मैंने बिना सोचे समझे यह कैसा बदला लिया? द्रौपदी की धर्मनिष्ठा, सतीत्व के आगे मैं स्वयं बदल गया हूँ, हार गया हूँ।

नारद स्वयं पश्चाताप में डूब गया। उसी गमगीन पश्चातापभरी हालात में डूबा हुआ वह सीधे कृष्ण के पास गया तथा द्रौपदी के अपहरण की कथा आद्योपान्त सुनाई। तथा उसे लाने का उपाय, मार्ग, साधन आदि की जानकारी दी।

कृष्ण ने बिना देर किए हस्तिनापुर दूत भेजकर यह समाचार पाण्ड़वों को दिया। नारद के द्वारा बताये मार्ग व साधनों के साथ पाण्ड़व तथा कृष्ण लवणसमुद्र के तट पर गए। वहाँ जाकर कृष्ण ने सोचा- इस भूतल/धरती पर कोई मनुष्य कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो? बिना देव की सहायता के समुद्र पार नहीं कर सकता है। हम बिना देव की सहायता इस समुद्र को पार नहीं कर पाएंगे, न हि अमरकंका पहुँच पाएंगे। इसलिए कृष्ण ने समुद्र के तट पर तीन उपवास का व्रत धारण किया। उससे समुद्र-रक्षक **स्वस्तिक** नाम का देव प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा मांगी, पूछा बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

कृष्ण ने देव को सारी बाते बतायीं। उस देव ने उनको समुद्र जल पर चलनेवाले रथ दिए। उन रथों पर सवार हो कृष्ण के साथ पाण्ड़व अमरकंका पहुँच गए।

वहाँ पहुँचते ही ऊँचे स्वर से शंखनाद किया, शस्त्रास्त्र

सम्भाल कर पद्मनाभ को युद्ध के लिए ललकारा।

पद्मनाभ ने जब शंखनाद सुना तो सकते में आ गया, इस प्रकार की युद्ध की ललकार सुनकर तो और भी चकराया। फिर संभल गया, नगरी में युद्ध भेरी बजवाकर युद्ध के लिए तैयार होकर आया। सामने मात्र 6 (छह) व्यक्ति देखकर प्रारंभ में तो मुस्कुराया और बात ही बात में युद्ध जीतने की उमंग से आगे बढ़ा। युद्ध करने लगा, परंतु युद्ध शुरू होते ही अर्जुन के बाणों से विचलित हो गया, उसके आक्रमण से बेचैन हो गया, समझ गया कि ये कोई साधारण वीर नहीं हैं, तभी तो समुद्र पार कर यहाँ तक पहुँच गए। छह होते हुए भी हमारी इतनी बड़ी सेना से भिड़ने की हिम्मत कर पाए हैं। उसने सोचा अपनी जान बचाने में ही भलाई है, नहीं तो युद्ध में मृत्यु अवश्य होनी है। यह सोचकर वह वहाँ से भाग गया, नगर का मुख्य दरवाजा बंद करवाया। पाण्ड़वों ने दरवाजा तोड़ा। पद्मनाभ के पीछे भागे। ड़रा हुआ पद्मनाभ भागता-भागता द्रौपदी के चरणों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा-

हे देवी, मैंने आपके साथ जो अन्याय किया, कुदृष्टि ड़ाली, उसी का यह परिणाम है, उसी का फल भोग रहा हूँ। मुझ पर रहम करो, मेरी रक्षा करो, मुझे अपने चरणों में शरण दो, मेरे प्राण बचाओं, मेरे प्राण अब आपके हाथों में हैं। पाण्ड़वों की क्रोधाग्नि से भस्म हो जाऊंगा। मैं मरना नहीं चाहता, मुझे बचाओ.... मुझे बचा लो, आप जो कहेंगी, वह करने के लिए तैयार हूँ।

द्रौपदी ने उसे बताया स्त्री के कपड़े, गहने आदि पहनकर स्त्री के भेष में पाण्ड़वों के चरणों पर गिरो, वे उदारमना इस भेष में देखकर आपको माफ कर देंगे। उसने वैसा ही किया, स्त्री का भेष धारण किया और ज्यों हि कृष्ण के साथ पाण्ड़व वहाँ पहुँचे, त्यों हि उनके चरणों पर गिरा। क्षमा मांगी, पाण्ड़वों ने उसे क्षमा कर दिया। क्योंकि शरणागत को क्षमा करना, अभयदान देना

पाण्ड़वों की रीति रही है।

पाण्ड़वों ने द्रौपदी को आहारजल देकर उसकी पारणा करायी। बाद में पद्मनाभ ने सबका सम्मान कर सम्मान के साथ बिदा किया। क्षमा मांगकर आपस के दुर्भाव समाप्त किये।

उन सबका संगम हुआ। यह सब पाण्ड़व-द्रौपदी के पूर्व पुण्य का उदय ही था। उसके (पुण्य के) बिना उनका मिलन असंभव था तथा धातकीद्वीप से द्रौपदी की प्राप्ति भी असंभव ही थी। **पुण्य असंभव को संभव कर देता है, पाप से संभव भी असंभव हो होता है।**

द्रौपदी को लेकर कृष्ण के साथ पाण्ड़व द्वारिका आए, क्योंकि उन्हें नेमिनाथ के वैराग्य होने के समाचार मिले थे। वे नेमिनाथ के दीक्षा कल्याणक समारोह में पहुँच गए।

नेमिनाथ को दीक्षा के बाद कुछ समय बाद ही केवलज्ञान प्रकट हो गया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण (धर्मसभा) की रचना की। पाण्ड़व भगवान के वंदन, दर्शन, अमृतवचन सुनने के लिए आये।

सभी भगवान के दर्शन, वंदन करके धर्मसभा में यथायोग्य स्थान पर बैठ गए। उन्होंने भगवान से अपने पूर्व जन्मों के बारे में पूछा। भगवान से अपने पूर्व जन्मों के बारे में सुनकर उन्हे संसार से वैराग्य हुआ। पाँचों पाण्ड़वों ने दीक्षा, संन्यास ग्रहण किया, मुनि बने। आत्मसाधना में लीन हो गए।

निर्दोष तपस्या करते हुए, उपसर्ग सहन करते हुये शत्रुंजय तीर्थक्षेत्र से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन ने मोक्ष प्राप्त किया, इसी क्षेत्र से शांत परिणामों से देह छोड़कर नकुल और सहदेव सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्ग गए।

द्रौपदी ने आर्यिकाजीवन तपसाधना में बीताकर समाधिपूर्व शरीर त्यागकर सोहलवें स्वर्ग में देव बनी।

×××××

6. सती चंदनबाला

जंम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक **सिंधु** नाम का देश था। उस देश में **वैशाली** नाम की नगरी थी। इस नगरी में **चेटक** नाम के राजा रहते थे। इनकी रानी का नाम **सुभद्रा** था।

चेटक के धनदत्त, धनभद्र आदि दस पुत्र थे और प्रियकारिणी, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलना, ज्येष्ठा और चंदनबाला ये सात पुत्रियाँ थीं।

इनमें से प्रियकारिणी का विवाह कुण्डलनगर के राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर इनके पुत्र थे।

राजा शतानीक के साथ मृगावती का, दशरथ[1] राजा के साथ सुप्रभा का, उदयन राजा के साथ प्रभावती का, श्रेणिक के साथ चेलना का इस प्रकार पाँच पुत्रियों के विवाह हुए थे।

ज्येष्ठा ने **यशस्वती** नाम की आर्यिका के पास दीक्षा ली थी।

चंदनबाला, जो अभी बालिका ही थी, उसने यशस्वती आर्यिका के पास धर्म का उपदेश सुना तथा सम्यग्दर्शन के साथ श्राविका के व्रत ग्रहण किये थे।

एक दिन चंदनबाला **अशोकवन** में खेल रही थी। उस समय आकाशमार्ग से विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के सुवर्णाभ नगर का राजा मनोवेग अपनी मनोवगा नाम की पत्नी के साथ जा रहा था। उसकी निगाह चंदनबाला पर पड़ी। उसे देखते ही वह पूर्वसंस्कारों के कारण उस पर आसक्त हुआ।

उसने उस समय पत्नी को सुवर्णाभ नगर ले जाकर महल में छोड़ा। **रूपिणी विद्या** के द्वारा अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासन पर बैठ विमान से अशोकवन में आया।

---

1. ये दशरथ राजा भ-महावीर के समय हुए हैं, जो राम के पिता से भिन्न हैं।

अशोकवन में खेलती हुई चंदनबाला को लेकर विमान से अपने नगर की ओर जा रहा था।

मनोवेगा को बिना बताये अचानक तेजी से चले जाने से अपने पति पर शक हुआ। उसने **आलोकिनी** नाम की विद्या से पति मनोवेग को एक रोती हुई सुंदरी के साथ आते हुए देखा। वह तुरंत ही गुस्से से भर गई। उसने भेष बदले हुए पति का पीछा किया। सबसे पहले उसने उसके सिंहासन को बायें पैर से लात मारी, जिसके कारण रूपिणी विद्या वहाँ से भाग गई। मनोवेग का असली रूप सामने आया। वह पत्नी से ड़रकर और तेजी से भागने लगा। मनोवेगा ने उतनी ही तेजी से उसका पीछा किया। उससे कहा- यदि अपना जीवन चाहते हो तो इस **सुंदरी** को छोड़ दो।

पत्नी से ड़रे हुए मनोवेग ने पर्णलघ्वी नाम की विद्या की सहायता से उसे **भूतरमण** नाम के वन में ऐरावती नाम की नदी के दाहिने किनारे पर छोड़ दिया। उस वन में चंदनबाला ने णमोकार मंत्र बोलते हुए वह रात बितायी।

दूसरे दिन सुबह कालक नाम का भील वहाँ आया। चंदनबाला ने उसे ड़र के कारण अपने आभूषण उतारकर दिये। धर्म का उपदेश भी दिया। आभूषण और उपदेश पाकर वह भील बहुत संतुष्ट हुआ।

वह भील चंदनबाला को लेकर भीमकूट नाम के पर्वत पर रहनेवाले सिंह नाम के भीलों के सरदार के पास उसे ले गया।

भीलों का सरदार सिंह मन से पापी था। चंदनबाला को देखकर उसका हृदय काम से भर गया। भील सरदार की माँ पुत्र के भावों को समझ गई। उसने पुत्र से कहा-

यह देवी है। इसे छूने का विचार भी मत करना। नहीं तो यह शाप, संताप, शोक, दुःख देगी। माँ की बातें सुनकर सरदार चंदनबाला को देवी समझकर उससे ड़र गया।

चंदनबाला कुछ दिन सरदार की माँ के साथ रही।

एक दिन वत्स देश के कौशाम्बी नगर के **सेठ वृषभसेन** का मित्रवीर नाम का कर्मचारी भीलों के सरदार सिंह के पास आया था। मित्रवीर और सिंह में मित्रता थी। सिंह ने चंदनबाला को मित्रवीर को सौंप दिया।

मित्रवीर चंदनबाला को लेकर कौशाम्बी नगर आया। उसने उसे बाजार में बेचना चाहा, तब भारी भीड़ के बीच उसकी बोलियाँ लगायी जा रही थीं। एक बुजुर्ग वेश्या उसे भारी रकम देकर खरीदना चाहती थी। संयोगवश सेठ वृषभसेन उधर से जा रहे थे। उन्होंने उस सुंदरी अबला की सबसे ज्यादा बोली लगाकर उसे खरीद लिया और उसे लेकर घर आये। **देखों, पाप के उदय से तीर्थङ्कर महावीर की मौसी, राजा चेटक की राजकुमारी भरे बाजार नीलाम हुई।** उन्होंने अपने कर्मचारी मित्रवीर को इस तरह के कृत्य के लिए बहुत ड़ाटा।

उन्होंने चंदनबाला से कहा-

बेटी, यह अपना ही घर समझो। मुझे अपना धर्मपिता समझो। चंदनबाला वृषभसेन को पिता तथा सेठानी सुभद्रा को माँता समझती थी। सेठ भी उसे 'बेटी' 'बेटी' कहते- कहते न थकते थे।

यहाँ चंदनबाला का समय आनंद से बीत रहा था। वह अपना ज्यादातर समय देवधर्म में बिताती थी। वहाँ रहते- रहते उसका काफी समय बीत गया।

एक दिन वह सेठ को पानी का लोटा दे रही थी। उस समय उसके बाल खुलकर नीचे बैठे हुए सेठ पर फैल गये। संयोगवश उसी समय सेठानी उधर से निकल रही थी। उसने सेठ और चंदनबाला को इस हालात में देख लिया। उस समय सेठ ने बाल को समेटकर हाथ में देते हुए कहा- बेटी, बाल सम्भालो।

सुभद्रा ने सेठ के शब्द तो सुने नहीं। वह शक से भर गई। उसने सोचा-

कितने बड़े धोखेबाज हैं वृषभसेन, मुँह से बेटी कहते हैं और मन से नीयत खराब रखते हैं और इस कलमुँही को देखो, पिता कहती है और गंदे खेल खेलती है।

वह क्रोध से ओंठ चबाकर चुपचाप चली गई, परंतु प्रतिशोध लेने के लिए बेताब थी। सेठ के घर से जाते ही उसे पकड़ कर सबसे पहले उसके बाल काट दिये। फिर उसे सांकलों से बांधकर तहखाने में कैद कर दिया।

सेठ घर आये, तब उन्होंने चंदनबाला को घर में नहीं देखा। उन्होंने पत्नी से पूछा- सुभद्रा, बेटी चंदना दिखाई नहीं दे रही है? कहाँ गई है?

सेठानी मन ही मन सोचने लगी- देखो कितनी धूर्तता दिखा रहे हैं। उसके बिना मन नहीं लग रहा है। कह रहे हैं बेटी कहाँ है? उसने सेठ से कहा- मुझे नहीं पता? बताकर भी नहीं गई। सेठ ने भी सोचा यहीं कहीं गई होगी। परंतु शाम तक भी नहीं आई, तब सेठ ने उसे कईं जगह तलाश किया, परंतु वह नहीं मिली, तब किसी अनहोनि के ड़र से चिंता में पड़ गए।

सेठ के जाने पर सेठानी उसे खराब भोजन पानी पहुंचाती थी, स्वयं जाकर मारण-ताड़न भी करती थी।

चंदनबाला व्रतधारिणी श्राविका थी। इसलिए वह सोचती थी कि **मेरे पूर्व पापकर्म का ऐसा तीव्र उदय आया है, यह सेठानी सुभद्रा तो निमित्तमात्र है।** इसी विचार के साथ हमेशा भगवान की भक्ति व तत्त्वचिंतन में लीन रहती थी। आत्मनिंदा करती रहती थी। उसने अपने समाचार उस देश के राजा शतानीक के पास भी नहीं भेजे, जो उसके जीजाजी थे, उनकी पत्नी मृगावती चंदनबाला की बड़ी बहन थी। **सब कर्मों का खेल है-** यह सोचकर सेठानी के अत्याचारों को शांतभाव से सहती रहती थी।

एक दिन (भगवान) मुनि महावीर आहार के लिए उसी

नगरी में आये। झरोखे से उसे उनके दर्शन हुए। उन्हें आहार देने के उसके भाव हुए। उसके आगे बढ़ते ही उसके सभी बंधन टूट गए। सिर पर लंबे घने काले बाल उग आए।

चंदनबाला ने विधिपूर्वक पड़गाहन कर आहार कराया। उसे आहारदान से संतुष्टि मिली। उसका मिट्टी का सकोरा उत्तम धातु के पात्र में बदल गया था। वह खराब अन्न दिव्य अन्न में बदल गया था।

देवों ने उसका सम्मान किया। उन्होंने रत्नवर्षा, सुगंधित पुष्पवर्षा की, सुगंधित जलवर्षा की, देवदुन्दुभि बजायी, सुगन्धित वायु इत्यादि पञ्च आश्चर्य किए।

चंदनबाला के आहारदान की चर्चा तुरंत ही चारों ओर फैल गई। राजा शतानीक, रानी मृगावती समाचार सुनते ही वहाँ आए। चन्दनबाला से मिले, उसे गले लगाया। और पूछा- यहाँ कैसे पहुँची? तब चंदनबाला ने उसे अब तक की हकीकत विस्तार से बतायी।

घबड़ाए हुए सेठ-सेठानी चंदनबाला के चरणों पर गिर गए। चंदनबाला ने उन्हें क्षमाकर ऐसा करने से मना कर दिया।

चेटक भी समाचार मिलते ही आ गए। बेटी से मिले। उन्होंने चंदनबाला से कहा- बेटी, घर चलो।

चंदनबाला से कहा-

पिताजी, घर में ही तो थी। कर्मों ने रहने नहीं दिया। कर्मों की लीला है, वह खेलती हुई मुझको उठाकर ले गया। उसी ने जंगल में पटका, बाजार में बिकवाया। सांकलों से बंधवाया। मुनि महावीर को आहार कराया।

हे पिताजी, अब इससे ज्यादा कर्मों के कहर सहने के लिए मुझ में शक्ति नहीं है।

चेटक- बेटी, अब तो पाप का समय बीत गया।

चंदनबाला- लेकिन पिताजी, आगे का पता नहीं, कर्म कब कैसे उदय में आये? कौन जानता है? पिताजी, मैं तो महावीर स्वामी के शरण में जाऊंगी, उन्हीं के मार्ग को अपनाऊंगी। उन्हीं के दर्शन से मेरे अभी के कष्ट दूर हुए हैं, उनके मार्ग पर चलने से कष्ट सदा के लिए दूर होते हैं- ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं उनकी वंदना करना चाहती हूँ।

इसके बाद चेटक, चन्दनबाला आदि सभी ने महावीर स्वामी की वंदना की। चंदनबाला ने महावीर स्वामी के पास आर्यिका दीक्षा ली।

वहाँ राजा चेटक ने गणधर से प्रश्न किया कि भगवन! चंदना पर ऐसे कष्ट क्यों आये? किस कारण से उसे दुःख उठाने पड़े? उसने पूर्व में कौन-सा कर्म किया था, जिससे उसे इस जन्म में राजपुत्री होते हुए भी यातनाएं भोगनी पड़ीं।

गणधर भगवान ने बताया-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगधदेश में **वत्सा** नाम की नगरी है। **प्रसेनिक** मगधदेश का राजा था। इस नगरी में **अग्निभूति** नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी दो पत्नियाँ थीं- एक ब्राह्मण जाति की और दूसरी वैश्य जाति की।

ब्राह्मण जाति की महिला से उसे शिवभूति नामक पुत्र की प्राप्ति हुई तथा चित्रसेना नाम की एक बेटी हुई।

शिवभूति (मनोवेग के जीव) का विवाह सोमशर्मा ब्राह्मण की बेटी सोमिला (चंदन बाला के जीव) से हुआ था। तथा चित्रसेना का विवाह देव शर्मा ब्राह्मण से हुआ था।

कुछ वर्षों के बाद चित्रसेना विधवा हो गई थी। इसलिए वह अपने पुत्रों को लेकर भाई शिवभूति के घर आ गई थी।

सोमिला को चित्रसेना का बच्चों के साथ घर आना अच्छा नहीं लगा था। सोमिला उसे हमेशा ताने मारती थी, जली कटी

सुनाती थी। चित्रसेना कर्मों के उदय जानकर सोमिला के अत्याचारों को सहन करती थी।

सोमिला ने चारों ओर यह बात फैला दी थी कि चित्रसेना का शिवभूति के साथ गंदा सम्बन्ध है। चित्रसेना ने इस आक्षेप को भी सह लिया, परंतु मन ही मन उसने निदान बांधा था कि इस झूठे आरोप का बदला अवश्य लूंगी।

एक दिन सोमिला ने **शिवगुप्त मुनिराज** को आहार दिया था। शिवभूति ने उसे आहार देने के लिए ड़ाटा था। सोमिला ने मुनिराज का स्वरूप समझाकर शिवभूति को शांत कर दिया। शिवभूति तब से मुनिराज को स्वयं आहार देने लगा तथा आहार की अनुमोदना करने लगा।

इस तरह से उनकी आयु पूरी हुई ।

×××××

शिवभूति मरकर बंगदेश के कान्तपुर नगर में राजा सुवर्ण वर्मा और रानी विद्युल्लेखा का महाबल नाम का पुत्र जन्मा।

सोमिला मरकर अंगदेश के राजा श्रीषेण और रानी धनश्री की कनकलता नाम की बेटी के रूप में जन्मी।

सुवर्ण वर्मा और धनश्री भाई-बहन थे। महाबल और कनकलता का परस्पर अनुराग देखकर यहाँ महाबल और कनकलता का विवाह होना तय किया था। परन्तु उनके माता-पिताओं ने उन दोनों से कहा-

जब तक विवाह नहीं होता है, तब तक आप दोनों अलग-अलग रहना। परंतु दोनों काम के ताप को सहन नहीं कर सके। दोनों चोरी- छिपे आपस में मिलते रहे। उन दोनों के माता- पिताओं को इस बात का पता चला, तब उन्होंने उन दोनों से कहा कि आप लोगों ने हमारी मर्जी के विरूद्ध कार्य किया है। मना करने पर भी आपस में मिलते रहे हो, अतः हमारे राज्यों से दूर चले जाओ।

वे दोनों वहाँ से दूसरे देश में चले गए। एक प्रत्यन्त नाम के नगर में रहने लगे। वे दोनों परिश्रम करके भोजनादिक व्यवस्था कर प्रसन्न थे। एक दिन उन्हें **मुनिगुप्त** नाम के मुनिराज के दर्शन हुए। वे आहार के लिए नगर में आए थे। उन्होंने मुनिराज को विधिपूर्वक आहार दिया। वहाँ उनका समय आनन्द से बीत रहा था।

एक दिन महाबल चैत्रमास में वन में घूमने गया। वहाँ उसे साँप ने कांट खाया। जिससे वह तुरन्त ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। महाबल की मृत्यु से कनकलता बहुत दुःखी हुई। उसने भी तलवार से आत्मघात कर जीवन समाप्त किया।

×××××

पलाशद्वीप के पलाशनगर में महाबल नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम काञ्चनलता था। इनके घर **कनकलता का जीव पद्मलता नाम की कन्या के रूप में जन्मा।**

भरतक्षेत्र के अवन्ति देश में उज्जयिनी नाम का नगर है। इस नगर में धनदेव नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम धनमित्रा था। **महाबल का जीव इनके घर में नागदत्त नाम का बेटा बना।** नागदत्त के अर्थस्वामिनी नाम की छोटी बहन थी।

एक बार धनदेव ने धनमित्रा को छोड़ दिया और दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लिया। धनमित्रा दुःखी होकर नागदत्त और अर्थस्वामिनी को लेकर दूसरे देश में चली गई। वहाँ उसे **शीलदत्त मुनिराज** के दर्शन हुए। धनमित्रा ने ज्ञान प्राप्त करने के लिए नागदत्त को शीलदत्त मुनिराज को सौंप दिया।

नागदत्त ने मुनिराज से श्रावकों के व्रत लिए। श्रावक धर्म का पालन करते हुए वह शास्त्रों का अभ्यास करने लगा। अभ्यास करते-करते वह विद्वान बना। उत्तम कवि हुआ। उसने शास्त्रों की व्याख्याएं सुनाकर बहुत- सा धन पाया। माँ और अपनी बहन का

भरण पोषण करने लगा। नंदी गांव के एक सेठ के पुत्र के साथ अपनी बहन अर्थस्वामिनी का विवाह कराया।

एक दिन नागदत्त माँ से आज्ञा लेकर पिता धनदेव से मिलने उज्जयिनी गया। पिता के चरण-स्पर्श किए। पिता ने उसका बहुत स्वागत किया। गले मिले।

नागदत्त ने पिता धनदेव से अपने हिस्से का धन मांगा। तब पिता ने कहा-

हे पुत्र! अपने घर का सारा धन पलाश द्वीप के पलाश नगर में राजा महाबल के पास रखा है, उसे लाकर तू ले ले।

नागदत्त अपने दो सौतेले भाई नकुल और सहदेव को लेकर नाव पर बैठकर समुद्री रास्ते से पलाश द्वीप पहुँच गया। वहाँ उसने देखा कि उस द्वीप में कोई मनुष्य नहीं है। जो भी हो महल में जाकर देखता हूँ - यह सोचकर वह महल के भीतर गया। वहाँ उसने एक जगह एक अकेली कन्या को बैठा हुआ देखा। उसने उससे पूछा-

यह नगर ऐसा क्यों हो गया है? तुम कौन हो?

इसके उत्तर में उस कन्या ने उसे बताया कि-

पहले इस नगर के दो स्वामी थे, वे आपस में हिस्सेदार थे। उनमें से एक क्रोधी था। उसने राक्षस विद्या सिद्ध की थी, इसलिए वह भी राक्षस नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसने क्रोध में आकर आधे हिस्सेदार महाबल राजा और नगर को नष्ट कर दिया। इस नगर के राजा महाबल और रानी काञ्चनलता की मैं पद्मलता नाम की पुत्री हूँ।

मेरे पिता के पास मंत्रों से सिद्ध की हुई तलवार थी, जिसे वे कभी अलग नहीं रखते थे, परंतु आज भूल से उन्होंने वह तलवार दूर रख दी। अवसर देखकर उस राक्षस ने मेरे पिता और माता को मार दिया है। उसने मुझे अपनी बेटी समझकर छोड़

दिया है। इस समय वह कहीं गया है। अभी मुझे लेने के लिए आयेगा।

नागदत्त पास ही रखी उस तलवार को लेकर मुख्यद्वार के पास छिप गया। ज्यों हि वह राक्षस आया, उसने उस तलवार से उस पर प्रहार किये। घायल राक्षस णमोकार मंत्र बोलता हुआ धरती पर गिरा।

मरणासन्न राक्षस के मुँह से णमोकार मंत्र को सुनकर नागदत्त सोचने लगा- यह मैंने क्या किया? मैंने एक श्रद्धानी जैनी को मारा है। मुझसे कितना बड़ा पाप हुआ है?

यह सोच उसने तुरंत ही तलवार फेंक दी। राक्षस से पूछा-

हे भद्र आप कौन हो? आपका धर्म क्या है?

उस मरणासन्न राक्षस ने कहा-

मैं विद्याधर हूँ। जैनधर्म का पक्का श्रद्धानी हूँ। मैं भी एक सच्चे श्रावक का पुत्र हूँ, लेकिन स्वभाव से क्रोधी हूँ। देखो, क्रोध के कारण कैसा पाप कर चुका हूँ? क्रोध कितना बुरा है? **क्रोध के कारण मित्र शत्रु हो जाता है। क्रोध से धर्म नष्ट हो जाता है। राज्य नष्ट हो जाता है। क्रोधी पर माता भी क्रोध करने लगती है। क्रोध से अधोगति होती है, देखो, क्रोध के कारण ही मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। इसलिए अपना भला चाहनेवाले मनुष्य को क्रोध छोड़ देना चाहिए।**

राक्षस ने उस नागदत्त से पूछा- आप कौन हैं?

उसके उत्तर में नागदत्त ने कहा- मैं यहाँ मेहमान हूँ। पिता के कहने से धन वापिस पाने के लिए यहाँ आया था। महल के भीतर जाने पर कन्या को दुःखी देखकर उसकी रक्षा की दृष्टि से आप पर प्रहार जैसा घृणित कार्य कर बैठा- इसका मुझे बहुत खेद है। यह कहते हुए उसकी आंखों में आँसू आ गए।

राक्षस ने कहा- बेटा, रोओ मत, आपकी जगह मैं होता तो

मैं भी ऐसा ही कार्य करता।

नागदत्त ने कहा- मुझे क्षमा कीजिए।

राक्षस ने कहा- बेटा, यह सब पूर्व कर्म का उदय है, इसमें तुम्हारा क्या दोष है? इसलिए क्षमा जैसी कोई बात नहीं है, फिर भी क्षमा करता हूँ।

नागदत्त ने उसका समाधि-मरण कराया। जिससे राक्षस स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

इसके बाद नागदत्त अपना धन और पद्मलता को लेकर जहाज पर बैठकर आनेवाला था। परंतु नकुल, सहदेव पद्मलता और धन लेकर फुर्ति से जहाज पर बैठ गए और वहाँ से चल दिए। उन दोनों ने नागदत्त को जहाज पर बैठने को मौका नहीं दिया। उन्होंने जहाज की रस्सी काट दी थी। वे दोनों जब उज्जयिनी पहुँचे, तब पिता धनदेव और अन्य लोगों ने उनसे पूछा-

नागदत्त भी आपके साथ गया था, वह कहाँ है?

उन्होंने कहा- वह यहाँ से हमारे साथ गया था, वहाँ जाकर वह किसी और जगह चला गया। कहाँ गया? हमें नहीं पता।

इधर नागदत्त की माँ धनमित्रा पुत्र के नहीं आने से चिंतित हो गई थी। क्योंकि नागदत्त कुछ दिनों की कहकर गया था, पर बहुत दिन बीत गए तो भी वह नहीं आया था। अनहोनि की आंशका से वह रोने लगी, उसने **श्री शीलदत्त** मुनिराज का आश्रय लिया। वह मुनि के पास गई। उसने रोते - रोते ही मुनिराज से अपने मन की बात बताई और पूछा कि मेरे बेटे नागदत्त के साथ क्या हुआ?

मुनिराज को उस पर दया आई। उन्होंने अवधिज्ञान से जानकर बताया कि घबराओ मत।

''माते! आपका पुत्र बिना कष्ट के शीघ्र ही आपके पास आयेगा।''

संतुष्ट होकर धनमित्रा घर गई ।

×××××

इधर नागदत्त ने भाइयों का धोखा देखकर विचार किया कि-

मनुष्य धन के लिए क्या-क्या पाप नहीं करता? पर धन मनुष्य से सारे पाप करवाकर उसे नरक आदि दुर्गतियों में भेज देता है, खुद यहीं पड़ा रहता है। धरा का धन धरा पर धरा का धरा रह जाता है। धन के लिए यह जीव सारे रिश्ते-नाते भूला देता है। देखो, मेरे भाई धन के लालच में मुझे यहाँ छोड़कर चले गए। वे धन मांगते तो मैं वैसे ही उनको दे देता। वास्तव में **लालच बुरी बला है।** इसमें भाइयों का भी क्या दोष है? मैंने ही पूर्व जन्मों में धन के लालच में किसी को ऐसा ही धोखा दिया होगा। उसी कर्म का परिणाम है कि ये मेरे भाई, मुझे धोखा देकर गए हैं। अस्तु, जो भी हो, मैं शांत- परिणामों को नहीं छोडूंगा। धर्म की शरण नहीं छोडूंगा- ऐसा सोचते- सोचते उसे वहाँ एक जिनमंदिर दिखा। वह उस जिनमंदिर में गया। उसने जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किए। दर्शन कर ''और कहाँ जाऊँ, यहीं बैठता हूँ, यहाँ और कोई शरण भी तो नहीं है।'' ऐसा सोचकर चिंताओं से घिरा वह वहीं बैठ गया।

संयोगवश एक जैनश्रद्धानी विद्याधर उस मंदिर में आया था। उसने जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किए। दर्शन करने के बाद जिनभक्त नागदत्त को चिन्ताग्रस्त देख विद्याधर ने पास जाकर उससे पूछा-

हे साधर्मी बंधु, ऐसे उदास क्यों बैठे हो?

उसके उत्तर में नागदत्त ने अपनी अब तक की सारी हकीकत उसे बतायी।

विद्याधर ने नागदत्त की सहायता की। उसे बहुत सारे रत्न दिये। उसे अपने विमान पर बिठाकर लाया और मनोहर नाम के उद्यान में उतार कर अपने देश चला गया।

हे जीवों, देखो पुण्य पाप के फलों को। नागदत्त का पाप का उदय आया था, तो भाई ही उसे धोखा देकर चले गए। पुण्य का

उदय आया तो एक अनजान विद्याधर मिला। न केवल विद्याधर मिला, बल्कि वह विद्याधर बहुत सारा धन देकर सुरक्षित जगह छोड़कर चला गया।

नागदत्त वहाँ से बहन के घर आया। भाई- बहन प्रेम से मिले। उसने अपनी आप-बीती सुनाई। अर्थस्वामिनी भाई से मिलकर बहुत खुशी हुई। उन्होंने खूब बाते कीं। नागदत्त कुछ दिन बहन के घर पर रहा।

एक दिन अर्थस्वामिनी के ससुर नागदत्त के पास आकर कहने लगे-

हे नागदत्त, धनदेव, अपने बेटे नकुल के लिए हमारी पुत्री का हाथ मांग रहे हैं। उन्होंने हमें वहाँ बुलाया है, परंतु हम निर्धन हैं, उनसे बात करने के लिए कैसे जायें?

नागदत्त ने उन्हें रत्न दिये। और कहा- अब आप निर्धन नहीं हैं, आप जाइए। बेटी के विवाह की बात पक्की कीजिए।

इस पर अर्थस्वामिनी के ससुर ने कहा-

जिसने आप के साथ धोखा किया है, उससे हम अपनी कन्या कैसे ब्याहें ? ऐसे धोखेबाज के साथ कन्या ब्याहने की बजाय उसका जीवनभर कुंवारी रहना ठीक है।

नागदत्त ने उनसे कहा- आपका विचार भावुकता से भरा हुआ है। कन्या का विवाह तो कहीं न कहीं करना ही है, जब वे चलाकर हाथ मांग रहे हैं, तो अपनी कन्या दे दीजिए।

देखिए, उदारता महापुरूषों की, वे चाहते तो इन्कार कर सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। नागदत्त उदार विचार वाला था।

इसके बाद भी अर्थस्वामिनी के ससुर बेटी के विवाह की बात करने हेतु जाने के लिए तैयार नहीं दिखे, तब उसने कहा-

चलिए, मैं आपके साथ चलता हूँ।

इसके बाद नागदत्त, अर्थस्वामिनी के ससुर उज्जयिनी गए। वहाँ उन्हें पुण्ययोग से मुनि दिखे सबसे पहले मुनिराज के दर्शन किए।

उसके बाद नागदत्त राजा के पास गया। उसने राजा को दिव्य रत्न भेंट स्वरूप दिये। राजा प्रसन्न हुआ। राजा ने पूछा-

हे नागदत्त ! कहाँ से आ रहे हो? कहाँ गए थे?

नागदत्त ने शुरू से अन्त तक की सारी घटनाएं एक-एक करके बतायीं। नागदत्त की दुःखभरी बाते सुनकर राजा को धनदेव पर बहुत गुस्सा आया। धनदेव और उसके पुत्रों को बंदी बनाने के लिए आदेश दिया। नागदत्त ने राजा को ऐसा करने के लिए मना कर दिया।

राजा ने उसकी अच्छाइयाँ देखकर नागदत्त को बहुत-सा धन देकर 'नगर सेठ का' पद भी दिया तथा राजसभा में भी सम्मानित पद दिया। नागदत्त की माँ को सेवकों के द्वारा वहीं बुलवाया। पद्मलता के साथ उसका विवाह कराया।

राजा ने राजसभा में कहा-

देखो, पुण्य का महात्म्य अलग ही होता है। पुण्य का महात्म्य देखना हो तो नागदत्त को देखो। बचपन से लेकर अब अनेक बार संकटों से घिरा, परंतु पुण्य ने उसकी हर बार सहायता की। पुण्य के कारण राजपुत्री के साथ उसका विवाह हुआ। पुण्य के कारण विद्याधर मिला, विद्याधर ने अनेक रत्न दिए। विद्याधर ने सहायता कर उसे नया जीवन दिया। हमसे मित्रता हुई। इसलिए कहना पड़ेगा कि-

पुण्याज्जलायते वह्निर्विषमप्यमृतायते।
मित्रायन्ते द्विषः पुण्यात्पुण्याच्छाम्यन्ति भीतयः॥

दुर्विधाः सधनाः पुण्यात्पुण्यात्स्वर्गश्च लभ्यते।
तस्मात्पुण्यं विचिन्वन्तु हतापत्सम्पदेषिणः॥

अर्थः- पुण्य के उदय से अग्नि जल बन जाती है, पुण्य से विष भी अमृत हो जाता है। पुण्य से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। पुण्य से सभी ड़र शांत हो जाते हैं। पुण्य से निर्धन मनुष्य भी धनवान होते हैं। पुण्य से स्वर्ग भी प्राप्त होता है। बिना बाधा की सम्पत्ति चाहनेवालों को पुण्य रूप विचार करने चाहिए।

नागदत्त का सम्मान व प्रभाव देखकर धनदेव, उसकी स्त्री और बेटे राजसभा में आकर ''क्षमा करो'' ''क्षमा करो'' कहते हुए नागदत्त के चरणों का स्पर्श करना चाहते थे, परंतु नागदत्त ने उन्हें चरणस्पर्श करने नहीं दिये। धर्म का उपदेश देकर धर्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन सबको उत्तम श्रावकधर्म का धारण कराया। नागदत्त ने समुद्र-यात्रा से पूर्व समुद्र के किनारे पर सकुशल लौटने पर जिनेन्द्र भगवान की भव्य पूजा करने का निर्णय किया था। उसके अनुसार नागदत्त ने एक भव्य जिनपूजन की।

नागदत्त ने जीवन पर्यन्त श्रावकधर्म का पालन किया। आयु के अंत में संन्यास धारण किया देह छोड़कर सौधर्मस्वर्ग में ऋद्धिधारी बड़ा देव बना। पद्मलता भी धार्मिक जीवन बिताकर देह छोड़कर उसी स्वर्ग में देवी बनी। अर्थस्वामिनी भी स्वर्ग गई।

×××××

नागदत्त का जीव स्वर्ग से आकर भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर शिवशंकर नगर में विद्याधर राजा पवनवेग और रानी सुवेगा का मनोवेग नाम का पुत्र हुआ है। नागदत्त की छोटी बहन अर्थस्वामिनी का जीव स्वर्ग से आकर यहाँ मनोवेगा हुई। देखो, कर्मलीला पूर्व जन्म के भाई-बहन यहाँ पति-पत्नी बने हैं। राक्षस विद्याधर का जीव स्वर्ग से आकर यहाँ राजा चेटक बना है। नागदत्त की माँ धनमित्रा भी स्वर्ग गई थी, स्वर्ग से आकर यहाँ आकर राजा चेटक की सुभद्रा नाम की रानी बनी है। **पद्मलता का जीव**

स्वर्ग से आकर यहाँ चेटक की चंदनबाला नाम की सबसे छोटी पुत्री बना है। नकुल का जीव संसार में भटकता हुआ यहाँ अब सिंह नाम का भीलों का सरदार बना है।

सहदेव का जीव संसार में भटकता हुआ यहाँ अब मित्रवीर नाम से सेठ वृषभसेन का नौकर बना है। नागदत्त के पिता धनदेव का जीव भी स्वर्ग गया था, वह स्वर्ग से आकर यहाँ वृषभसेन नाम का सेठ बना है। पूर्व में जो चित्रसेना थी, वह संसार में अनेक जन्म धारण करने के बाद अब यहाँ सेठ वृषभसेन की सुभद्रा नाम की पत्नी बनी है। पूर्वभव के स्नेह के कारण मनोवेग ने चंदनबाला का अपहरण किया था। पूर्व के चित्रसेना के भव में बांधे निदान के कारण सेठ की पत्नी सुभद्रा ने इस जन्म में उसे कष्ट पहुंचाये थे।

मनोवेग इसी भव में वैराग्य धारण कर मोक्षपद प्राप्त करेंगे। चंदनबाला ज्ञान व तप के प्रभाव से गणिनी आर्यिका का पद प्राप्त करके अच्युत स्वर्ग में देव बनेगी। कुछ ही भवों के बाद मोक्षपद प्राप्त करेगी।

×××××

(6) अनुयोगों के अभ्यास का क्रम-

वहाँ प्रथमानुयोगादिक का अभ्यास करना। पहले इसका अभ्यास करना, फिर इसका करना-ऐसा नियम नहीं है, परन्तु अपने परिणामों की अवस्था देखकर जिसके अभ्यास से अपनी धर्म में प्रवृत्ति हो उसी का अभ्यास करना। अथवा कभी किसी शास्त्र का अभ्यास करें; कभी किसी शास्त्र का अभ्यास करें। जैसे रोजनामचे में तो अनेक रकमें जहाँ-तहाँ लिखी हैं, उनकी खाते में ठीक खतौनी करे तो लेने-देन का निश्चय हो, उसी प्रकार शास्त्रों मे तो अनेक प्रकार का उपदेश जहाँ-तहाँ दिया है, उसे सम्यग्ज्ञान में यथार्थ प्रयोजन सहित पहिचाने तो हित-अहित का निश्चय हो।.... मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगमज्ञान कहा है, आगमज्ञान बिना धर्म का साधन नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हें भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

7. सती मैनासुंदरी

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मालवदेश था। इस देश में उज्जयिनी नगरी के राजा का नाम पुहुपाल था। राजा की रानी का नाम निपुणसुंदरी था। इनकी दो बेटियाँ थीं। बड़ी बेटी का नाम सुरसुंदरी और छोटी बेटी का नाम मैनासुंदरी था।

जब बेटियाँ पढ़ने लायक हो गईं, तब राजा ने उनसे पूछा हे बेटियों, आप पढ़ने-योग्य हो गई हों। मैं आपकी इच्छाओं का ध्यान रखते हुए आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप अपनी इच्छाएं बताएं कि किन गुरूओं से पढ़ना चाहती हों? उन्हीं गुरूओं से पढ़ने की व्यवस्था करूँ?

पिताजी की भावना को जानते हुए सुरसुंदरी ने कहा- पिताजी, मैं अन्य गुरू के पास पढ़ना चाहती हूँ। मैनासुंदरी ने कहा-पिताजी, मैं जैनगुरू के पास पढ़ना चाहती हूँ।

बेटियों की भावना के अनुसार सुरसुंदरी को उसके गुरू के पास और मैनासुंदरी के लिए जैनगुरू के पास पढ़ने की व्यवस्था की।

×××××

दोनों बेटियाँ अपने-अपने गुरूओं से विद्याएं पढ़कर आ गईं। कुछ समय और बीत गया।

एक दिन राजा अपने मंत्रियों के साथ राज-काज के बारे में चर्चा कर रहे थे। तभी किसी कार्य से सुरसुंदरी पिताजी के पास आई थी। उसकी युवावस्था देखकर राजा के मन में उसके विवाह का विचार आया।

राजा पुहुपाल ने बेटी से पूछा-

बेटी, आप अपनी इच्छा के अनुसार वर के बारे में बताइए, जिससे उसी के साथ मैं आपका विवाहसंबंध करा दूँ।

सुरसुंदरी ने आँखे नीचे कर उत्तर दिया-

पिताजी, **विद्या, वैभव, रूप, यौवन आदि उत्तम ऐश्वर्य पुण्य के उदय से प्राप्त होते हैं।** उन्हें मैंने आपके आशीर्वाद से प्राप्त कर लिया है। आपने इच्छित वर के विषय में पूछा है तो उस विषय में मेरा नम्र निवेदन यही है कि कौशाम्बी नगरी के राजा का पुत्र हरिवाहन विद्या, वय, बुद्धि एवं बल से मेरे अनुरूप है, इसलिए वर के रूप में वही मुझे अभीष्ट है।

पुहुपाल ने हरिवाहन के साथ सुरसुंदरी का विवाह बड़े ठाट-बाट से सम्पन्न कराया।

×××××

एक दिन भगवान आदिनाथ की पूजन कर मैनासुंदरी गंधोदक लेकर पिताजी के पास गई। पुहुपाल ने कहा- आओ, बेटी, बैठो।

मैनासुंदरी पिताजी के पास जाकर बैठ गई।

उसके हाथ में जल देखकर राजा ने पूछा- बेटी, आपके हाथ में यह क्या है?

मैनासुंदरी- पिताजी, यह गंधोदक है। भगवान के अभिषेक का जल है।

पुहुपाल- यह क्यों लाई हो?

मैनासुंदरी - पिताजी, आपके लिए लाई हूँ। इसे उत्तम अंग अर्थात् मस्तक पर विनयपूर्वक लगाना चाहिए। इसकी एक छोटी बूंद भी जमीन पर नहीं गिरनी चाहिए। उस पर अपने या अन्य के पाँव पड़ेंगे तो बड़ी अविनय होती है। अविनय से पाप लगता है। शुद्ध हाथ से, शुद्ध विनय भावना से इसे माथे पर ही लगाना चाहिए, अन्य स्थानों पर नहीं। इसे लीजिए। मस्तक पर लगाइए। इसकी विनय से पुण्य लगता है।

इसे पाने में विद्याधर, देव, श्रेष्ठ मनुष्य आदि अपना

सौभाग्य समझते हैं। मेरू पर तीर्थंकर भगवान का 1008 (एक हजार आठ) कलशों से अभिषेक करते हैं। वह जल इतना होता है कि एक नदी बह जाये, परंतु देवता आदि परम भक्ति से उसे अपने मस्तक पर धारण करते हैं। वे लोग इतनी संख्या में होते हैं कि वह गंधोदकजल की नदी सूखकर अल्प-सी रह जाती है।

शास्त्रों में जिनप्रतिमा को एक हजार साक्षात् तीर्थंकरों से भी अधिक बताया है। यह जिनप्रतिमाजी के अभिषेक का पवित्र जल है, इसे विनय के साथ स्वीकार कीजिए।

मैनासुंदरी की बात से राजा पुहुपाल प्रभावित हुए और उन्होंने उस गंधोदक को विनयपूर्वक अपने मस्तक पर लगाया।

राजा बेटी की जिनभक्ति से प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रेम से उसका मस्तक सूंघा। प्रसन्न होकर उसकी परीक्षा के लिए प्रश्न पूछा।

बेटी, यह पुण्य क्या होता है?

मैनासुंदरी- पिताजी, आप स्वयं विद्वान हैं, आप जानते ही हैं कि पुण्य क्या है? फिर भी आप मेरे ज्ञान को परखने के लिए पूछ रहे हैं तो मैं अपने गुरू की शिक्षा के अनुसार बताती हूँ-

अर्हन्तदेव, दयामयधर्म एवं निर्ग्रन्थ गुरू की सेवा से पुण्यबंध होता है। वीतरागता की पोषक वाणी बोलने से पुण्यबंध होता है। वीतरागता की पोषक चर्या से पुण्यबंध होता है। हिंसादि पांच पाप, मांसभक्षण आदि सात व्यसन, पांच इन्द्रियों के विषय इनके त्याग से पुण्यबंध होता है। देवपूजा, स्वाध्याय आदि षट् आवश्यक पालने से पुण्यबंध होता है। मन, वचन, काय से किसी भी प्राणी की निंदा नहीं करने से, किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाने से पुण्यबंध होता है।

संसारी प्राणी को धर्म, तत्त्व का उपदेश देने से, उन्हें सही वीतरागता के रास्ते पर लाने से, लाने का प्रयत्न करने से पुण्यबंध

होता है। अहिंसा के पालन से पुण्यबंध होता है। सत्य बोलने से, चोरी नहीं करने से, कुशील सेवन नहीं करने से, अल्प परिग्रह की भावना से पुण्यबंध होता है। धर्मात्माओं की सेवा, सहायता करने से पुण्यबंध होता है। दयाधर्म से, अणुव्रत, महाव्रतों के निरतिचार पालन करने से पुण्यबंध होता है।

पिताजी, पुण्य से वैभव, निरोग शरीर, अनुकूल भोग, उच्च गति प्राप्त होते हैं, वीतरागभाव से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मैनासुंदरी के उत्तर से प्रसन्न हुए राजा पुहुपाल ने देखा कि मैनासुंदरी विवाहयोग्य हो गई है। इसका विवाह करना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने कहा-

बेटी, सुरसुंदरी की तरह तुम्हारा विवाह भी तुम्हारी इच्छा के अनुसार योग्य वर से करा देंगे। इसलिए जो वर तुम्हें इच्छित हो बताइए, उसी के साथ तुम्हारा विवाह करा देंगे।

मैनासुंदरी- पिताजी, कुलीन कन्याएं अपने मुँह से वर के बारे में कहा नहीं करती हैं। वे माता-पिता की इच्छा को ही सर्वोपरी मानती हैं। वे माता-पिता से अपने वर के बार में कहने में लज्जा का अनुभव करती हैं।

जिन्होंने भगवान का मार्ग नहीं पहिचाना, तत्त्व का ज्ञान जिन्हें नहीं हैं, वे ही अपने मुँह से वर के बारे में कहती हैं।

पुहुपाल- बेटी, अपने वर के बारे में बताने में लज्जा कैसी?

मैनासुंदरी- पिताजी, भगवान आदिनाथ की दो बेटियाँ थीं- ब्राह्मी, सुंदरी। पिताजी का मानभंग न हो इसलिए उन्होंने अपने मन से न तो अपने वर के बारे में बताया, न उन्होंने विवाह किया। स्त्री-पर्याय को पराधीनता का भण्डार जानकर उन्होंने दीक्षा ली। ऐसा करके वे स्त्री-पर्याय का छेदकर स्वर्ग में देव बनीं।

इसलिए हे पिताजी, अपने मुँह से अपने वर के बारे में बताना संस्कृति के विरुद्ध होने से लज्जाजनक है।

उन कन्याओं के वैसे कार्य की कोई भी बुद्धिमान मनुष्य प्रशंसा नहीं करता है।

सुशील कन्याओं को सदैव समभाव में रहना चाहिए और यही सोचना चाहिए कि सर्वज्ञ भगवान ने जो अपने ज्ञान में देखा होगा, उसी के साथ विवाह होगा। वही होकर रहेगा। बड़े-बड़े महात्मा लोग भी कर्मजाल में फँसने से नहीं बच पाये तो तब हम जैसे साधारण शक्तिहीन व्यक्तियों की तो बात क्या है?

यह तो माता-पिता का ही कर्तव्य है कि वे जब अपनी कन्या को विवाहयोग्य देखें, तब कुल-रूप-गुण-वय-विद्या-बल इत्यादि में समता देखकर उपयुक्त वर के साथ उसका विवाह करा दें।

उन्हीं कन्याओं की प्रशंसा होती है तथा वे ही कुलीन कही जाती हैं, जो अपने गुरूजनों के द्वारा स्थापित विवाह-सम्बन्ध को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेती हैं तथा प्राप्त पति के साथ प्रेम से रहकर अपने को सुखी एवं धन्य समझती हैं। धैर्यपूर्वक पति की सेवा में संलग्न रहती हैं।

प्रथम तो माता-पिता अपनी संतान का अहित या अकल्याण न कभी करते हैं, न वे ऐसा सोच सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि कर्म की गति को कोई रोक नहीं सकता। इस संसार में इष्ट-अनिष्ट वस्तुओं का संयोग-वियोग पूर्व कर्मानुसार स्वयमेव समयानुसार संघटित या विघटित अवश्य ही होता रहता है।

इसलिए मैं आप से इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहती हूँ। आपका पूर्ण अधिकार है कि आप अपनी इच्छानुसार चाहे जिसके साथ मेरा विवाह करा दें। मेरे भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा।

मैनासुंदरी के इस प्रकार के उपदेश को सुनकर पुहुपाल

तिलमिला उठे। वे क्रोध में अंधे हो गये। तत्त्व को, सौहार्द को भूल गए। उन्होंने कहा-

बेटी, आपके भाग्य के विधाता हम हैं, हम चाहे तो आपका भाग्य बना सकते हैं और चाहे तो बिगाड़ सकते हैं। क्या आपके गुरू ने आपको यही पढ़ाया है?

मैनासुंदरी- पिताजी, आप कैसी अतत्त्वज्ञान की बात कर रहे हैं। आप हमारे भाग्य के विधाता नहीं हैं। आप हमारे भाग्य को न बना सकते हैं, न बिगाड़ सकते हैं। हर प्राणी हर समय अपने पूर्वकर्म का फल भोगता है- यही मेरे गुरू ने पढ़ाया है।

मैनासुन्दरी के इस जवाब ने आग में घी का काम किया। राजा पुहुपाल का क्रोध और बढ़ गया। उन्होंने कहा-

हमारे घर में रहती हो, सुस्वादु भोजन करती हो, अच्छे-अच्छे वस्त्रादि धारण करती हो, हमारे दिये उत्तम भोगों को प्राप्त करती हो, फिर भी बड़ी मूर्खता के साथ कहती हो कि यह सब अपने ही कर्मों के द्वारा प्राप्त किया है। इसे कृतघ्नता के अलावा और क्या कहा जाये?

राजा के क्रोधभरे वचन सुनकर भी मैनासुन्दरी ने धैर्य के साथ जवाब दिया-

मेरे गुरू के वचन कदापि असत्य नहीं होते हैं। यह कृतघ्नता नहीं है, बल्कि जिनाज्ञा को स्वीकार करना है। इसे स्वीकार करने में हम सब का भला है। इसी में रहकर सभी ने निर्वाण पाया है, जो इससे भिन्न सोचता है, वह दुःख पाता है।

वहीं बुजुर्ग मंत्री आये हुए थे, उन्होंने शांत करने के लिए राजा से कहा- समय आने पर सब ठीक होगा। आप इस समय शांत हो जाइए।

राजा पुहुपाल ने सोचा मैनासुन्दरी के वचनों की कठोर परीक्षा करनी चाहिए। उसे और उसके गुरू को समझना ही चाहिए

कि वे सही नहीं हैं।

राजा पुहुपाल का उद्यानभ्रमण का समय हो गया था, वे घूमते-घूमते विचारों की उधेड़बुन में बहुत दूर निकल गए। उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कितनी दूर आ गए।

राजा पुहुपाल को एक स्थान पर मनुष्यों की भारी भीड़ दिखाई दी। उस भीड़ में उन्हें एक कोढ़ी मनुष्य दिखा। उस कोढ़ी कुमार को देखकर राजा को मैनासुन्दरी के वचन याद आये। अपने मन में विचार कर मैनासुन्दरी को यह पाठ सिखाने की इच्छा से कि उसके विचार झूठे हैं, मेरे ही विचार सही हैं तथा कर्मों का फल देखने की इच्छा से वे उस कोढ़ी कुमार से बाते करने लगे। राजा के सभी साथी आश्चर्यचकित थे कि राजा एक कोढ़ी के साथ इतना घुल-मिल कर बातें क्यों, किसलिए कर रहे हैं?

उस कोढ़ी कुमार ने पूछा-

आप कौन हैं? यहाँ कैसे आये हैं?

पुहुपाल ने बताया-

मैं मालवदेश का राजा हूँ। मेरा नाम पुहुपाल है। उद्यान भ्रमण के लिए निकला था, घूमते-घूमते इधर आया। यहाँ लोगों की भीड़ देखी, जिज्ञासावश आप तक आया। मन किया, इसलिए आप से बातें करने लगा हूँ। आप बताइए, आप कौन हो? यहाँ कैसे आये? उस कोढ़ी कुमार ने कहा-

राजन ! मैं अशुभ कर्मों को भोगने वाला मनुष्य हूँ। कर्म ही मुझे यहाँ लाये हैं।

राजा ने सोचा मेरी बेटी मैनासुन्दरी कर्मों की प्रधानता मानती है, यह कुमार भी कर्मों की प्रधानता की भाषा बोल रहा है। अतः यही वर कन्या के लिए योग्य रहेगा। वह भी अपने कर्मों का फल पायेगा। बेटी के कर्मों के विचारों की परीक्षा भी हो जायेगी।

उन्होंने कोढ़ी कुमार से कहा- हमारी छोटी बेटी मैनासुंदरी है, उसका आपके साथ विवाह करना चाहते हैं। आप कृपा कर उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कीजिए।

उस कोढ़ी कुमार को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा यह राजा है। अपनी बेटी का विवाह मुझ जैसे कोढ़ी के साथ क्यों करना चाहता है? कोई साधारण मनुष्य भी अपनी बेटी का विवाह कोढ़ी के साथ कराना नहीं चाहता। भले ही बेटी आजीवन कुंवारी रहे, पर निर्धन से निर्धन मनुष्य भी कोढ़ी के साथ अपनी बेटी ब्याहना नहीं चाहता। इस राजा को ऐसी क्या सूझी, जरूर इसमें कोई राज है। उसे जानना चाहिए, नाहक ही एक कन्या का जीवन क्यों बर्बाद हो? उसने राजा से पूछ ही लिया। आपको वर के रूप में कईं राजकुमार मिलेंगे, आप मुझ जैसे कोढ़ी के साथ अपनी पुत्री का विवाह क्यों कराना चाहते हो?

पुहुपाल ने कहा-

आप ही हमारी बेटी के लिए योग्य वर हो।

कुमार- मुझ जैसा कोढ़ी योग्य वर कैसे हो सकता है?

राजा- हमारी बेटी में और हममें विवाद हुआ था, वर के विषय में। वह कहती है- मनुष्य कर्म का फल भोगता है, उसे जो भी राजभोग प्राप्त हुए हैं, उसके अनुसार कर्म के उदय से प्राप्त हुए हैं। हमारे अनुसार उसे राजभोग हमने प्राप्त कराये हैं। वह हमारी नहीं मानती, हम उसकी नहीं मानते। वह कहती है, उसके निर्ग्रन्थ गुरू की यही शिक्षा है। हमने उसे इच्छित वर के लिए कहा था, लेकिन वह कहती है- जिनाज्ञा माननेवाली लड़की अपने मुँह से अपने पति के बारे में स्वयं नहीं कहती। माता-पिता जिससे कहे, वह उसी के साथ विवाह कर सुखी रहेगी। हम उसके और उसके गुरू के वचनों की परीक्षा के लिए ही आपके साथ उसका विवाह कराना चाहते हैं। आप भी कर्म की बात कर रहे हो, वह भी

यही कहती है। हम उसके और उसके गुरू के वचनों की परीक्षा करना चाहते हैं, आप हमारा साथ दीजिए, हमारा निवेदन स्वीकार कीजिए। उसके साथ विवाह के लिए हाँ कह दीजिए।

वह कुमार मन ही मन सोचने लगा- यदि मैं मना करता हूँ तो यह राजा किसी और मुझ जैसे के साथ उसका विवाह करा देगा। कम से कम मैं उस जिनश्रद्धानी कन्या की जिनभक्ति में सहायक तो रहूँगा, उसकी भक्ति में बाधक नहीं रहूँगा, क्योंकि मैं भी जिनभक्त हूँ, वह भी जिनभक्ता है, हो सकता है, दूसरा ऐसा व्यक्ति राजा को नहीं मिला तो उस बेचारी का जीवन नरक वन जायेगा। मैं हाँ कह देता हूँ, बाकी उसके भाग्य का, कर्मोदय का खेल है। उसने विवाह के लिए हाँ कह दी।

उस कुमार ने व अन्य लोगों ने राजा से अपने विचार पर पुनर्विचार के लिए कहा। परन्तु राजा ने सबसे कहा- मेरा यही अंतिम निर्णय है। मंत्री आदि से कहा- आप लोग शुभ मुहूर्त देखकर विवाह की तैयारियाँ कीजिए, शीघ्र ही शुभमुहूर्त में उसका विवाह करायेंगे।

×××××

घर आकर उसने मैनासुन्दरी से कहा-

मैंने तुम्हारे लिए कोढ़ी वर ढूंढा है। अब तुम उसी को प्रेमपूर्वक वरण कर लो।

मैनासुन्दरी- आपने नहीं, मेरे कर्मों ने ढूंढा है। यदि मेरे भाग्य में वही है तो मैं इससे नाराज नहीं होवूंगी, मैं उन्हें प्रेमपूर्वक ही वरण करूँगी। मेरे मन में जरा भी खेद नहीं है। बल्कि उनके प्रति भी साम्यभाव ही है। वे मुझे सहर्ष स्वीकार हैं। इस जन्म में आपका चुना हुआ वही वर मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके अलावा शेष पुरूष मेरे लिए भाई या पिता समान हैं।

मैनासुन्दरी के ये निष्कपट शब्द भी राजा पुहुपाल को

नहीं जँचे। उन्होंने बड़े रूखे स्वर से कहा-

तू अत्यंत हठीली है। तेरा स्वभाव कठोर है। तेरा हृदय विवेक रहित है। मेरी बात को अब भी मान, अपना हठ छोड़ दे, मैं अभी भी तेरी इच्छानुसार सुन्दर राजकुमार के साथ तेरा विवाह करा दूंगा।

मैनासुन्दरी- पिताजी, मैंने मन से उन्हें अपना वर मान लिया है। वे ही मेरे लिए सबसे सुन्दर हैं और राजाओं के राजा हैं।

पुहुपाल- बेटी, तेरा हठ, जिद्द निराले हैं। मैं हार गया। अब तू अपने कर्मों का फल भोग।

मैनासुन्दरी- पिताजी, नाराज मत होइए, मन में पश्चाताप मत कीजिए। मुझे सहर्ष बिदा कीजिए। मैं हर पल अपने ही पूर्व कर्म को भोग रही हूँ। आगे भी भोगूंगी। हर समय समताभाव रखूंगी। उनकी खूब सेवा करूँगी।

पिताजी आप चिंता न करें। कर्म की गति अत्यन्त विचित्र होती है। **शुभ कर्मों का जब उदय होता है, तब अनिष्ट वस्तु भी इष्ट हो जाती है। इसके विपरीत जब अशुभ कर्मों का उदय होता है, तब इष्ट वस्तु भी अनिष्ट हो जाती है।** जो होना था, सो हो गया। उसके सम्बन्ध में विशेष विचार करना व्यर्थ है।

यदि किसी राजाकुमार के साथ विवाह हो जाय, उसके बाद उनको कोढ़ हो गया तो क्या मैं उन्हें छोड़ दूंगी? नहीं, कदापि नहीं।

मैनासुन्दरी की बातों को सुनकर राजा को यह निश्चय हो गया कि यह अपना हठ नहीं छोड़ सकती। तब राजा ने विवश होकर ज्योतिषियों से शुभमुहूर्त पूछा। उसके विवाह का दिन निश्चित कर दिया।

×××××

जिस कोढ़ी कुमार के साथ मैनासुन्दरी का विवाह तय

कर दिया था। वह कोढ़ी कुमार कौन है? आइए जानते हैं-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में अंगदेश है। इस देश में एक सुन्दर नगरी है, जिसका नाम चम्पापुर है। चम्पापुर के पास मंदारगिरि है, जहाँ से बारहवें तीर्थंकर श्री वासपूज्य स्वामी मोक्ष गये हैं।

चम्पापुर के राजा का नाम **अरिदमन** था। इनके छोटे भाई का नाम वीरदमन था। अरिदमन की पत्नी का नाम कुन्दप्रभा था। इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम **श्रीपाल** रखा गया। जब श्रीपाल आठ वर्ष का हुआ तब पाँच अणुव्रत एवं आठ मूलगुण धारण कर गुरू के पास अध्ययन के लिए गया। वहाँ कम समय में ही अनेक विद्याओं एवं कलाओं में निपुण हो गया। जब वह विद्याओं और कलाओं में पारंगत होकर घर आया, तब राजदरबार में समय-समय पर जाकर राज्य का कार्य देखता था। योग्य समय में राजा अरिदमन ने उसका युवराज पद पर अभिषेक किया।

कुछ वर्ष पश्चात राजा वृद्धावस्था में पहुँच गए, तब उन्हें शरीर की दशा देखकर संसार से वैराग्य हो गया। श्रीपाल का राज्याभिषेक कर उन्होंने दीक्षा ली।

श्रीपाल राज्य का संचालन न्याय-नीति धर्मपूर्वक करते थे। उनके राज्य में प्रजा प्रसन्न थी। धनवैभव बढ़ रहा था। सब ओर शांति थी।

श्रीपाल का शरीर कामदेव के समान सुंदर था। निरोग भी था। एक दिन पापकर्म का ऐसा तीव्र उदय आया कि उनका कामदेव के समान सुंदर शरीर कोढ़ नाम की बीमारी से ग्रस्त हो गया। दुष्ट पापकर्म को उनका सुख देखा नहीं गया। कोढ़ के कारण से उनका शरीर गलने लगा। शरीर से पीप,गंदा खून बहने लगा। शरीर से बदबू आने लगी। शरीर में पीड़ा होने लगी।

यह कोढ़ उनके पास रहनेवाले सात सौ लोगों को भी हो

गया। इन सात सौ लोगों में मंत्री, सेनापति, पुरोहित, अंगरक्षक, खजांची, न्यायाधीश आदि प्रमुख पदाधिकारी शामिल थे। इन सबके शरीर से बदबू इतनी ज्यादा आने लगी कि कोई भी प्रजाजन इनके पास आने से कतराने लगा था।

प्रजा का कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार का काम हो, इनके पास नहीं जाता था। प्रजा यही चाहती थी, हमारे राजा जल्दी ठीक हो जाये। परंतु सब जानते हैं, **चाहने से कुछ नहीं होता, कर्म के उदय के अनुसार होता है। कर्म बड़ा बलवान है। उस पर किसी का वश नहीं चलता, उसने तीर्थंकर जैसे महापुण्यशाली जीव को भी संकट में ड़ाला है।** अन्य सामान्य लोगों की तो बात ही क्या करें?

कर्म बली अति जगत में, सबहिं जीव वश कीन।
महा बली पुनि वे पुरूष, कर्म करे जिन छीन ।।

अर्थ- जगत में कर्म अत्यन्त बलवान है, जिसने सभी जीवों को वश में किया है। परंतु इन कर्मों से भी बलवान वे पुरूष हैं, जिन्होंने कर्मों का नाश किया है।

श्रीपाल और उनके सात सौ पदाधिकारियों का कोढ़ इतना बढ़ गया था, उनके शरीर को छुनेवाली हवा भी दुर्गन्धित होकर दूर दूर तक दुर्गन्ध फैला रही थी।

राजा की बीमारी से लोगों को मानसिक संताप था ही, उनकी बदबूदार हवा से उन्हें और परेशानी होने लगी। इससे सभी लोग अत्यंत क्षुब्ध, व्याकुल, परेशान, बेचैन रहने लगे। फिर भी श्रीपाल उन्हें इतने प्रिय थे कि कोई भी शिकायत करने उनके पास नहीं गया।

कई लोग घरबार छोड़कर दूसरी जगह जाने लगे। कितने ही जाने की तैयारी में थे। धीरे-धीरे नगर सुनसान होने लगा।

नगर को बचाने के उद्देश्य से नगर के गणमान्य वृद्धलोग

श्रीपाल के चाचा वीरदमन के पास गए। उन्होंने सारी कहानी वीरदमन से कहकर निवेदन किया कि इस विषय में कुछ उपाय ढूंढिए। वीरदमन ने उन्होंने सांत्वना देकर भेजा। स्वयं श्रीपाल के पास गए। उन्हें सारी हकीकत बतायी।

श्रीपाल अत्यंत न्यायप्रिय व प्रजावत्सल थे। उन्होंने राज्य छोड़कर व्याधि ठीक होने तक जंगल में रहने का निर्णय किया। राज्य का भार चाचा वीरदमन को सौंपा। स्वयं सात सौ पदाधिकारियों के साथ वन में चले गए।

पुत्र के अचानक चले जाने से उनकी माता कुन्दप्रभा के दुःखों का ठिकाना नहीं था। वह निरंतर विलाप करती रहती थी। पहले पति दीक्षा लेकर चले गए। अब बेटा भी बिमारी के कारण घर छोड़कर चला गया। उस बेचारी के पास दुःख के अलावा और कुछ नहीं बचा था।

कर्म का फेर जानकर प्रजा ने इस वियोगजनित दुःख को सहा एवं धीरे-धीरे शोक को भूलकर अपने-अपने कार्य में लग गए। वीरदमन अपनी राजव्यवस्था में लीन हो गये।

राजा श्रीपाल अपने सात सौ वीरों के साथ देशाटन करते हुए भिन्न-भिन्न स्थानों पर घूमते हुए नगरों के बाहर वन, उद्यान आदि में रहने लगे।

इसी प्रकार घूमते-फिरते अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हुए वे इस समय उज्जयिनी के बाहर उद्यान में ठहरे हुए थे। जहाँ उनकी मुलाकात राजा पुहुपाल से हुई थी। उसी मुलाकात में उनका मैनासुंदरी के साथ विवाह तय हुआ था।

×××××

शुभ मुहूर्त में श्रीपाल-मैनासुंदरी का विवाह सम्पन्न हो गया। विवाह में नगरवासी, स्वजन, परिजन सभी आए थे। परन्तु किसी के मन में विवाहोत्सव के उल्हास और उमंग नहीं थे। सभी

लोग ऊपरी मन से दिखावटी कर्तव्य निभाने के लिए सन्नद्ध दिखे।

राजा की दुर्बुद्धि पर सभी मन ही मन कुढ़ रहे थे। मैनासुन्दरी को कोढ़ी वर के साथ देखते ही बहुत-से लोगों के नेत्रों में आँसू भर आये थे। विचित्र दृश्य था। हर तरफ विषाद का वातावरण था। कहीं बाजे बज रहे थे। कहीं सिर पर हाथ टेके लोग अपनी विवशता एवं कन्या की दीनता पर बिलख रहे थे। कोई नवागन्तुक आश्चर्यमय, परस्पर विपरीत बेमेल जोड़ी को देखकर चकित रह जाता था। वह समझ नहीं पाता था कि यह आनंदोत्सव है या विषादसभा।

इत्र इत्यादि के प्रयोग से भी श्रीपाल के शरीर की दुर्गन्ध कम नहीं हुई थी। पास जाने की इच्छावाले उन्हें दूर से ही देख रहे थे।

राजा के घर जैसी शादी होनी चाहिए, वैसी तैयारियाँ पूरी थीं, पर जोश या उत्साह की कमी थी। स्त्रियों ने गीत गाए, पर नीरस स्वर से। कर्मचारियों ने अपनी-अपनी व्यवस्थाएं देखीं, पर बेमन से।

दर्शकों के चेहरों पर शोक, चिन्ता, भय, ग्लानि, विरक्ति, आश्चर्य, क्रोध के भाव स्पष्ट दिख रहे थे। उपस्थित सभी लोग विचारमग्न थे। उस जनसमुदाय में कुछ ऐसे लोग भी थे, जो केवल कौतुक देखने के अभिप्राय से वहाँ आए हुए थे। उन्हें किसी की हानि-लाभ अथवा भलाई-बुराई से कोई प्रयोजन नहीं था। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गई।

गृहस्थाचार्य ने विधिपूर्वक पञ्चपरमेष्ठी, जिनवाणी की साक्षी में विवाह सम्पन्न कराया। विवाह के बाद वे अपने शिविर में आ गए।

उन्हें पहुँचाने के लिए जो लोग आए थे, उनकी मुखाकृतियों पर शोक, भय, ग्लानि एवं लज्जा के भाव स्पष्ट दिख रहे थे।

सामान्यरूप से कन्या की बिदाई में सभी की आँखे नम

हो जाती हैं। यहाँ कोढ़ी वर और राजकुमारी दुल्हन के बेमेल संयोग को देखकर सभी की आँखे भर आयी थीं। टपाटप आँसू की बूंदे छलक रही थीं। मानो वर्षाकाल के मेघ ही बरस रहे हों।

ऐसी परिस्थितियाँ देखकर राजा पुहुपाल भी अत्यत्न खिन्न एवं लज्जित थे। परंतु अब क्या किया जा सकता था? किसी की कर्मरेखा भला मिट सकती है? सब के मुख से केवल हाय! और हाय! हाय! के आर्तनाद के अलावा अन्य किसी प्रकार का कोई शब्द नहीं सुनाई पड़ता था।

मैनासुन्दरी की माता तथा बड़ी बहन सुरसुंदरी उसके गले से लिपट कर विलाप करने लगी- हा कन्या! तू ने पूर्वजन्म में न जाने कौनसे पापकर्म किये थे, जिसके फलस्वरूप तुझे आज अथाह दुःख सागर में डूबने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। अपनी आयु किसतरह से पूर्ण कर पायेगी? तूने जिद क्यों की? क्यों नहीं इच्छानुसार पति की याचना की? कहाँ तू कोमलांगी राजकुमारी, राजभोगों में पली, बढ़ी और कहाँ कोढ़ी पति का साथ! न घर का ठिकाना, न भोजन-पानी का ठिकाना? कर्म अत्यंत क्रूर है। उसे तनिक भी दया नहीं आयी। भला, अबलाओं पर भी कोई इस प्रकार अन्याय करता है? यह अन्याय ही नहीं घोर अन्याय है।

राजा को संबोधित करते हुए रानी कहने लगी-

स्वामी, आप तो दया के सागर हैं, प्रजा का पालन पुत्र की तरह करते हो, परन्तु बेटी के विवाह के समय आपके वे गुण कहाँ गए थे? आपने ऐसा अनुचित कार्य क्यों कर ड़ाला?

रानी के इस करूण क्रन्दन को सुनकर पत्थर ह्रदय भी पिघल जाता, फिर साधारण मनुष्य की बात ही क्या है? निदान, राजा पुहुपाल की आँखों में भी आँसू भर आये। वे भी विलाप करने लगे-

हे कुबुद्धि! तू जबरदस्ती मेरे पास ही क्यों आयी? क्या तुझे दूसरी जगह नहीं मिली थी? इस सरलह्रदया, कोमलांगी मेरी बेटी

को कष्टों के पहाड़ के नीचे क्यों दबा दिया? क्या इतने से तेरा पेट भर गया? या और कुछ बाकी है? वे अपनी कुमति को धिक्कारने लगे।

मंत्रियों ने मुझे बहुत समझाया था, पर न जाने क्यों उस समय मेरी बुद्धि पर पत्थर पड़े थे?

राजा के करूण-रूदन को देखकर सभी का रोना और जोर से निकल पड़ा। जैसे रूका हुआ पानी बह निकला हो।

इधर करूण-क्रन्दन का करूण दृश्य था।

दूसरी ओर मैनासुन्दरी की मुखाकृति पर तनिक भी शोक नहीं था। उसका चेहरा अपार शांति से भरा था। वह साम्यभाव से भीगी हुई थी। उसके चेहरे पर अपार आनंद था।

वह शीलवती थी, सती थी। इसलिए ऐसा भयंकर अनर्थ होता हुआ देखकर भी उसके चरित्र में कोई शिथिलता नहीं आई, बल्कि उसका हृदय एक प्रकार से दृढ़ निश्चय एवं नये आनंदोल्लास से भरा हुआ था।

वह आश्चर्यचकित थी कि लोग उसके विवाह के शुभ अवसर पर हर्षोल्लास के विपरीत शोक के भाव क्यों प्रकट कर रहे हैं? माता-पिता-बहन दुःखी क्यों हैं?

उसने सब से कहा- आप लोग इस तरह के शोक के भाव प्रदर्शित कर क्यों मेरे आनंद में कांटे बो रहे हों?

हे मेरे माता-पिता, बन्धु आदि हितचिंतकों! मुझे पक्का विश्वास है कि आप लोग मेरे हितैषी हैं। इसमें आप लोगों का कोई दोष नहीं है। कर्म के अनुसार जो होना था, वह हुआ। **पाप के उदय को बदलते देर नहीं लगती। पाप के उदय में धैर्य रखना चाहिए।**

आप लोगों को यह जान लेना चाहिए कि स्त्री का सर्वस्व उसका पति ही होता है। उसके संबंध में अपशब्दों को, निंदा के वचनों को कोई भी पतिव्रता स्त्री सुनना नहीं चाहेगी। उसका कुल,

शील एवं सतीत्व एकमात्र पति पर ही निर्भर है। कर्मानुसार जिस प्रकार का भी पति प्राप्त हो जाता है, कुलीन कन्याएं उसी को प्रिय एवं पूज्य समझती हैं। उनके लिए पति के अतिरिक्त संसार के सभी पुरूष पिता, भ्राता एवं पुत्र के समान हैं। आप लोग मेरे पतिदेव को महाकुरूप एवं रोगग्रस्त देख रहे हैं- यह गूढ़ सांसारिक रहस्य है। परंतु मेरी दृष्टि में वे कामदेव के समान सुन्दर हैं। मेरी समझ में आप लोगों के पश्चाताप का किञ्चित्मात्र भी मूल्य नहीं है। मुझे पूर्णरूप से संतोष है कि मैंने ऐसे सर्वगुणसम्पन्न, रूपवान एवं पराक्रमी वीर को पति के रूप में प्राप्त किया है। यदि पुण्योदय होगा तो थोड़े ही दिनों के बाद मेरे पतिदेव पूर्ण नीरोग हो जायेंगे। यदि नहीं भी होंगे तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा।

इसलिए आप लोगों से मेरा निवेदन है कि आप लोग शांत हो जाइए। मेरे संबंध में किसी भी प्रकार की व्यर्थ की चिंता न करें। **संसार के सभी जीव कर्माधीन हैं। दुःख के बाद सुख, सुख के बाद दुःख होता ही है- यही संसारचक्र है।**

पूर्वोपार्जित कर्मफल समझ कर ही उदयप्राप्त वर्तमानस्थिति का सामना समभाव से करना चाहिए।

इस प्रसंग में जो कुछ हुआ है, उसमें पिताजी का कुछ भी दोष नहीं है। इसलिए मेरी विनम्र प्रार्थना है कि आप लोग व्यर्थ ही दोष देकर उन्हें मानसिक क्लेश न दें।

मैनासुंदरी के इस प्रकार के सारगर्भित बातों को सुनकर सभी निरूत्तर हो लौट आये। राजा को परम संतोष के साथ घोर पश्चाताप हुआ। विदा होती हुई मैनासुन्दरी से उन्होंने क्षमायाचना की, पश्चाताप प्रकट किया। अपने सामर्थ्य के अनुरूप बहुत-सी वस्तुएं भेंट दीं। एक हजार दासियाँ और हाथी आदि भेंट दिये।

मैनासुन्दरी के ज्ञान, चारित्रिक वैभव को देखकर श्रीपाल को बहुत संतोष हुआ, आश्चर्यचकित रहे कि क्या इतनी दृढ़

श्रद्धानी महिलाएं होती हैं?

मैनासुंदरी के चले जाने के बाद भी कुछ दिनों तक नगर में बराबर इसी बात की चर्चा होती रही। समय के साथ-साथ इस घटना पर परदा पड़ता गया एवं क्रमशः इस बात को नगर के सभी लोग भूल गए।

×××××

मैनासुन्दरी के साथ विवाह के दिन से ही श्रीपाल को साता वेदनीय के शुभ लक्षण प्रकट होने लगे। **शीलवान लोग जहाँ भी जाते हैं, वहाँ मंगल ही होता है।** उनके शरीर में पीड़ा कम होने लगी।

मैनासुंदरी तन, मन एवं वचन से स्वामी की सेवा में अहर्निश तत्पर रहने लगी। उसे इस कार्य में थोड़ी भी ग्लानि का अनुभव नहीं होता था। बल्कि उसे परम संतोष होता था।

वह अपने हाथों से श्रीपाल के अंगों से बहते पीब व खून को साफ करती थी। उनके घावों पर पट्टी बांधती थी। नहलाना, कपड़े पहिनाना आदि सभी कार्य मनोयोग से करती थी। दुर्गंध का विचार न कर उनके पास छाया की तरह रहती थी।

प्रतिदिन अतिथियों को, उनके बाद में पति को, बाद में भोजन करती थी। रात्रि में पतिसेवा के कारण रात्रि जागरण करती थी। मैनासुंदरी अपने पति की सेवा का अत्यंत कठोर परिश्रमवाला नियम बिना खेद तथा विनय के साथ करती थी। मैनासुन्दरी की इस प्रकार की सेवाभावना देखकर श्रीपाल भी आश्चर्यचकित हो गए थे।

एक दिन श्रीपाल ने कहा- हे शीलवती, सुंदरी जब तक हमारे पापकर्म का उदय है, तब तक आप हम से दूर ही रहिए। हमें भीषण ग्लानि का अनुभव होता है। आप जैसी सुन्दरी को मुझ जैसा कोढ़ी पति प्राप्त हुआ, क्या यह कम खेद की बात है?

मैनासुन्दरी ने बहुत मधुर स्वर से कहा- हे देव, आप ने यह क्या कहा? मुझे आपके शब्द प्रीतिकर नहीं लगे। आपने ऐसा कठोर आदेश देने का विचार ही कैसे किया? क्या हमने कोई भयंकर अपराध किया है? अथवा हमारी सेवा में कोई त्रुटि रह गई है? क्या आपको लगता है कि हम स्वप्न में भी आपको छोड़ सकते हैं?

हे नाथ, जैसे शरीर से छाया, चन्द्र से चांदनी, अग्नि से उष्णता दूर नहीं रह सकते, उसीप्रकार मैं भी कदापि आपसे दूर नहीं रह सकती। भले ही सुमेरू चलायमान हो जाये, सूर्य पश्चिम से उगे, जल में अग्नि उत्पन्न हो, परंतु मैं पतिसेवा से विमुख नहीं हो सकती। इस तथ्य को आप पत्थर की लकीर की तरह समझ लीजिए कि इस संसार में स्त्रियों की सुख-प्राप्ति का मूल कारण पतिसेवा ही है। यदि स्त्रियाँ अपने मूलाधार पति को ही तिरस्कार पूर्वक छोड़ देती हैं तो फिर उनका आलम्बन भला दूसरा कौन हो सकता है? वृक्ष से गिरनेवाले फल को और कौन आधार हो सकता है? उसे तो धरती पर गिरना ही है। विवाहिता के लिए वर ही सर्वस्व है।

पुराणों में सीता, द्रौपदी आदि को देखिए, उन्होंने पतिसेवा के लिए भौतिक सुखों को तिलाञ्जलि दी थी। वे जंगलों में भयंकर हिंसकों के बीच रहीं। उन्होंने प्राणों को हथेली पर रखा, कंटिले रास्ते पर चलीं, कंकड़-पत्थरों की ठोकरे खायीं परंतु पतिसंग के अतुलनीय सुख के आगे ये सब क्लेश उन्हें नगण्य लगे थे। पति के संग को वे मर जाने पर भी छोड़ने को तैयार नहीं थीं। तो मैं आप से दूर क्यों रहूँ? वह भी आपकी ऐसी अवस्था होने पर आप रोग-शैय्या पर पड़े हुए हैं, इस दशा में आपको छोड़कर मैं एक क्षण भी अलग नहीं रह सकती।

आप अपनी निंदा क्यों करते हो? यदि मैं ऐसी अवस्था में

होती तो क्या आप मेरा साथ छोड़ देते? यह पाप का उदय है, किसी के भी हो सकता है, मेरे भी। पाप का उदय जल्दी ही बदल भी सकता है। मैं तो आप जैसे उत्तम पति को प्राप्त कर अपने को अत्यंत सौभाग्यवती समझती हूँ। आप धर्म के कट्टर श्रद्धानी हैं। मैं सौभग्यशाली हूँ कि पति के साथ-साथ एक धर्मात्मा की सेवा का अवसर मुझे मिला है। संसार में उन्हीं स्त्रियों का जीवन धन्य है, जिन्होंने पति की थोड़ी-सी भी सेवा करके अपने जीवन को पवित्र बना लिया हो। आपको देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित एवं नेत्र तृप्त हो जाते हैं। मेरी उपयोगिता भी तभी तक है, जब तक मैं आपकी सेवा में तत्पर हूँ। आपका साथ छोड़ना इसका मतलब शीलव्रत छोड़ना है। मैं अपने शील को कदापि नहीं छोड़ सकती। मेरा जो कुछ भी है, शील ही है।

इसलिए हे जीवनधन, पुनः ऐसा मत कहिए। इसके अलावा चाहे जो दण्ड दीजिए।

मैनासुन्दरी के उत्तर से निरूत्तर हुए श्रीपाल मैनासुन्दरी के साथ पञ्च परमेष्ठी की शरण में रहने लगे।

×××××

एक दिन सौभाग्य से वन में मुनि का आगमन हुआ। मैनासुन्दरी ने उन्हें पूछा-

भगवन् इस व्याधि को दूर करने का क्या उपाय है?

मुनिवर बोले-

धर्म और धैर्य की शरण ही एकमात्र उपाय है। इसलिए सिद्धचक्र का चिंतन-मनन-ध्यान-पाठ करों। समय पर साता का उदय आने पर सब ठीक हो जायेगा। व्याधि दूर हो जायेगी। सिद्धचक्र का विधान करो। कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ महिने में अंतिम आठ दिन अष्टाह्निका व्रत पालन करो। ये धर्मपर्व के दिन हैं। इन दिनों में किया गया थोडा-सा धर्म अधिकफल देता है। जैसे सही समय

पर बोया गया बीज बहुत फल देता है तथा इन दिनों में किया गया पाप बहुत ज्यादा फलता है। धर्म के संबंध में और भी उपदेश देकर मुनिराज गए।

उस दिन से श्रीपाल, मैनासुन्दरी का धर्म का उत्साह और भी बढ़ गया था। वे धर्म में दत्तचित्त होकर रहने लगे।

कार्तिक महिना आ गया था। मैनासुन्दरी ने अष्टाह्निका पर्व में आठ दिन का उपवास कर सिद्धचक्र का विधान किया। जिनेन्द्र मंदिर में जाती। अभिषेकजल लाती सब पर लगाती। इधर श्रीपाल आदि के असाता का अंत और साता का उदय आया था। श्रीपाल आदि का कोढ़ दूर होकर उनके शरीर पहले की तरह दमकने लगे थे। सभी रोगमुक्त होकर पूर्व की तरह सुन्दर हो गए थे। उनके दिव्यशरीर को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि इनके कोढ़ जैसी भीषण बिमारी थी।

राजा श्रीपाल एवं उनके सात सौ साथी कोढ़ रहित होकर नीरोग हो गए।

×××××

पापकर्म का उदय नष्ट होने पर मैनासुन्दरी श्रीपाल आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

मैनासुन्दरी इस बात को कदापि नहीं भूलती थी कि भौतिक-सुख चरम-सुख नहीं है। इसलिए वह सदा धर्मानुष्ठान में लीन रहती थी। वह जानती थी-

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग मांहिं।
त्यों बुधजन सुख भोगवे, धरम बिसारे नाहिं।।

उसका विश्वास था- धर्म से ही परम पद मोक्ष की प्राप्ति होती है। वह धर्म में लीन रहनेवाली धर्मात्मा थी।

×××××

श्रीपाल की माता कुन्दप्रभा के दिन बड़ी कठिनाई के साथ

बीत रहे थे। एक दिन उन्हें अवधिज्ञानी मुनि के दर्शन हुए। उन्होंने अपने बेटे के बारे में पूछा-

मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से जानकर श्रीपाल की सभी बाते बतायीं। अपने पुत्र का कोढ़ दूर होने एवं मैनासुंदरी जैसी धर्मात्मा पत्नी के साथ पाने की बात सुनकर रानी कुन्दप्रभा प्रसन्न होकर अपने घर लौट गई। घर पहुँच कर माता कुन्दप्रभा अपने देवर वीरदमन को श्रीपाल के समाचार सुनाकर श्रीपाल, मैनासुंदरी से मिलने के लिए तत्काल उज्जैन की ओर निकल गई। रानी का मन पुत्र से मिलने के लिए अत्यंत व्याकुल था। रात दिन यात्रा कर वह थोड़े ही दिनों में उज्जैन पहुँच गई।

जब नगर के बाहर उद्यान में एक सुन्दर राजमहल पर उनकी दृष्टि पड़ी, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वह उस महल की ओर बढ़ी। पास ही से जाते हुए एक प्रहरी से उन्होंने पूछा-

यह राजमहल किस भाग्यशाली का है?

इस प्रश्न के उत्तर में उस प्रहरी ने कहा कि-

हे माताजी, इस उद्यान में श्रीपाल नाम का एक कोढ़ी अपने सात सौ साथियों के साथ आया था। बहुत दिनों तक ठहरा। राजा के दुराग्रह और उस कोढ़ी के सौभाग्य से उसका विवाह राजपुत्री मैनासुन्दरी के साथ हुआ था। मैनासुन्दरी की सेवा और उसके साता के उदय से वह और उसके साथी रोगमुक्त हो गए। यह राजमहल उसी भाग्यशाली का है।

कुन्दप्रभा प्रसन्न होकर महल के पास गई। उसने द्वारपाल से कहा-

तुम्हारे स्वामी से कहो, उनकी माता कुन्दप्रभा द्वार पर आयी है।

श्रीपाल ने यह बात मैनासुंदरी से कही। वे दोनों आये। माता से मिले। मैनासुंदरी को बहुत अच्छा लगा। माता के मिलन

से वे दोनों बहुत प्रसन्न थे। उनको गर्मी में पेड़ की छाया की तरह माता का साथ आनन्ददायक लगा। मैनासुन्दरी ने उनके चरणस्पर्श किये, तब उन्होंने पटरानी बनने का आशीर्वाद दिया। हे बेटी, यह तुम्हारे धैर्य एवं शील का परिणाम है कि आज मेरा पुत्र पूर्ण नीरोगी कामदेव के समान सुंदर हो गया।

मैनासुंदरी- माताजी, यह उनके पूर्वकृत पुण्य का उदय है। इसमें मैंने क्या किया?

कुन्दप्रभा- बेटी, धन्य हो। आप जैसी बहु पाकर मेरा जीवन भी धन्य हो गया।

उस दिन से वे तीनों एक साथ प्रसन्नता से रहने लगे थे।

×××××

इधर राजा पुहुपाल की दयनीय दशा हो गई थी, उसे देखकर रानी निपुणसुंदरी ने उनसे पूछा-

नाथ, आपका शरीर दिनों-दिन दुर्बल क्यों होता जा रहा है? आपको मैं सदैव उदास देखती हूँ। आपका मुख कांतिहीन क्यों हुआ है? आजकल तो और भी अधिक उदास दिख रहे हो क्या कारण है?

रानी के प्रश्न के उत्तर के रूप में राजा ने रानी से मन की मैनासुन्दरी संबंधी पश्चाताप की बात बतायी।

रानी ने कहा- **होनि को कौन टाल सकता है? अपने कर्मों का फल प्राणी को अवश्य भोगना पड़ता है।** मैनासुंदरी का ऐसा ही कर्मों का उदय था। हम कर ही क्या सकते थे? इसलिए चिंता का सर्वथा परित्याग कर देना ही अति उत्तम है। इसप्रकार रानी ने पति को धैर्य प्रदान किया और कहा कि हमारे पुण्योदय से मुनिराज का समागम हुआ है। क्यों न हम उन्हीं से उसके भाग्य के बारे में पूछे?

यह सोचकर राजा पुहुपाल और रानी निपुणसुंदरी स्नान कर मंदिर गए। भगवान के दर्शन कर मुनिराज के दर्शन कर

उनके पास बैठ गए। ज्यों हि वे अपनी शंका के निवारण हेतु पूछने वाले थे, त्यों हि

उसी समय उनकी दृष्टि पास ही बैठे हुए स्त्री-पुरूष पर पड़ी। स्त्री को पहिचानने में देर नहीं लगी, क्योंकि वह मैनासुन्दरी थी, परन्तु उसके साथ के अपरिचित पुरूष को वे पहिचान नहीं पाये। राजा पुहुपाल की मुखाकृति एकदम से बदल गई। त्यौंरियाँ चढ़ गईं। क्रोध से चेहरा तमतमाने लगा।

उस पुरूष को अन्य पुरूष जानकर राजा-रानी सोचने लगे इस पुत्री ने क्या कर डाला? परपुरूष का संसर्ग इसे कैसे अच्छा लगा? हम इसे शीलवती समझते थे। यह तो कुलकलंकिनी निकली।

मैनासुन्दरी माता-पिता के भावों को समझ गई कि उनके मन में क्या बात है? वह निच्छल भाव से अपने पति के साथ उठी और अपने माता-पिता के और पास गई। नम्रतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। इस पर भी वह अपने माता-पिता के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट करने में असफल रही, तब उसे निश्चय हो गया था। उसके माता-पिता के मन में अनुचित संदेह है। उसे दूर करने के भाव से लज्जा से मस्तक नीचे कर उसने कहा- हे पिताजी, हे माता जी! यह जो मेरे साथ पुरूषोत्तम हैं, वे आपके दामाद ही हैं। वे कौशाम्बी के राजा श्रीपाल हैं। जो विवाह के समय कोढ़ी थे, धर्म के प्रभाव से उनका अशुभ कर्म का नाश हो गया है। वे नीरोग हो गए हैं।

पुत्री के वचनों पर पुहुपाल राजा और निपुणसुंदरी रानी को विश्वास नहीं हुआ। वे कहने लगे-

बेटी, तुझमें इतनी निर्लज्जता कहाँ से आ गई? हम तुम्हारी बातों को कदापि सत्य नहीं माना सकते।

श्रीपाल ने सोचा-इस समय मुझे बोलना ही चाहिए। क्योंकि ये लोग अन्य-विचार करके इस शीलवती के चरित्र पर शंका कर

रहे हैं। उन्होंने नम्रता के साथ कहा-

हे माताजी, हे पिताजी! आप भ्रम में हैं। अपनी सती कन्या की बातों पर अविश्वास न कीजिए। मैनासुन्दरी जैसी कन्या पाकर आपका वंश धन्य हो गया है। यह साधारण स्त्री नहीं है। यह सतियों का मुकुटमणि कही जा सकती है। इसके अखण्ड शील एवं सतीत्व की जितनी प्रशंसा की जाये, उतनी कम ही है। इसके पुण्यप्रभाव से ही न केवल मेरा, बल्कि मेरे सात सौ साथियों का कोढ़ दूर हो गया है। मैं वही कोढ़ी श्रीपाल हूँ, इसमें किञ्चित् भी संदेह मत करना। देखिए, अभी भी मेरे अंगुठे में किञ्चित् कोढ़ शेष है।

अपने दामाद के मुँह से ये शब्द सुनकर अंगुठे का कोढ देखकर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि ये ही हमारे दामाद हैं। हमने व्यर्थ ही अपनी बेटी पर शक किया है। अपनी कन्या एवं दामाद को देखकर उनकी आँखे तृप्त नहीं हो रही थीं। प्रसन्नता के कारण उनके शरीर पुलकित हो उठे। उन्होंने उनको गले लगाया। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। राजा पुहुपाल ने पुनः एक बार पश्चाताप प्रकट किया, क्षमा मांगी। आत्मभर्त्सना की।

माता-पिता के कहने पर मैनासुन्दरी ने अब तक की सारी घटनाएं सुनायीं।

सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने महल में लौट गए।

×××××

पत्नी मैनासुन्दरी, माता कुन्दप्रभा के साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए श्रीपाल का बहुत समय बीत गया। सुख के दिन शीघ्र बीत जाते हैं।

एक रात अचानक ही श्रीपाल की नींद भंग हो गई। आँखें खुलने के बाद वे बड़ी भारी चिंता में डूब गए। चिंता में भी भला कहीं नींद आती है? वे शय्या पर पड़े-पड़े करवटे बदलते रहे। पति चिंता में व्याकुल हो और पत्नी सुख की नींद सोये- यह कैसे हो

सकता है? मैनासुन्दरी जाग गई। पति की दशा देखकर उसने पूछा-

नाथ! आपकी असामयिक चिंता का क्या कारण है?

श्रीपाल- हे प्रिये, चिंता का कोई विशेष कारण नहीं है। परंतु यह अवश्य है कि यहाँ रहने पर लोग मुझे ''राजदामाद'' ''घरजंवाई'' कहते हैं। मेरे पिताजी का कोई उल्लेख नहीं करता। **पिता के नाम का उल्लेख न हो तो पुत्र को पुत्र होने का कोई अधिकार नहीं है।** यह सोच ही मेरी चिंता का कारण है।

मैनासुन्दरी- आप सच कह रहे हैं। पुरूष के श्वसुर के घर रहने को कौन उत्तम कह सकता है? पुत्र को कुलदीपक कहा जाता है। वह कोई ऐसा कार्य करे, जिससे कुल संसार में प्रकाशित हो।

श्रीपाल- इसलिए मेरे मन में विचार आया है कि पराक्रम और बाहुबल दिखाऊँ! जिससे मेरा कुल संसार में चमके। इसमें आपको मेरा साथ देना होगा।

मैनासुन्दरी- नाथ, मैं तो हरदम आपके साथ हूँ।

श्रीपाल- हे प्रिये, सुनो, मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अन्यत्र जाकर मैं अपने बाहुबल से राज्य एवं ऐश्वर्य प्राप्त करूँगा।

इन वचनों को सुनकर मैनासुन्दरी हताश हो गई। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि उसे पति से एक क्षण के लिए भी अलग होना पड़ेगा। उसने बड़े ही दीन स्वर में निवेदन किया- हे नाथ, मुझमें इतना साहस नहीं कि मैं आपकी आज्ञा के प्रतिकूल चल सकूँ। आपका आदेश शिरोधार्य है। परंतु इस अबला को इतना बतला दीजिए कि इस दासी को आपके दिव्यदर्शन कब प्राप्त होंगे? आपके मिलन की आशा ही व्याकुल चित्त को धैर्य धारण करायेगी। वही मेरे जीवन का एकमात्र आधार होगा।

पत्नी के दीनतापूर्ण वचन सुनकर श्रीपाल ने आश्वासन

देते हुए कहा-

हे प्रिये! आज से ठीक बारहवाँ वर्ष पूरा होते ही इसी अष्टमी के दिन आकर मैं तुम से अवश्य मिलूंगा। इसमें कोई अंतर नहीं आ सकता। यह मेरी प्रतिज्ञा समझो।

मैनासुन्दरी- हे स्वामी! आपका हृदय खिन्न न हो, कोई अपशकुन न हो इस भय से मैं कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ। **पति की इच्छानुसार चलना ही पत्नी का पवित्र धर्म है।** परंतु आप भी जानते हैं कि मोह कितना प्रबल होता है? इसी मोह के कारण आपके वियोग से उत्पन्न दुःख को याद करते ही मेरा मन अधीर हो रहा है। वह कभी भी नहीं चाहता कि आपके चरणारविन्द से उसे कुछ क्षण भी दूर रहना पड़े। इस दासी की प्रार्थना है कि इस दासी पर दया कर इसे भी साथ ले चलो। बारह वर्ष का समय तो बहुत है, मैं बारह पल भी आपके वियोग को सहन करने में असमर्थ हूँ। मुझे साथ लेकर जीवनदान देकर आप अक्षय पुण्य के भागी बनेंगे एवं मुझ पर आपका असीम उपकार होगा। नाथ, मुझे भी अपने साथ ले चलिए।

मैनासुन्दरी मोह में आतुर होकर श्रीपाल की ओर देखने लगी। श्रीपाल भी चाहते थे कि मैनासुंदरी से एक पल भी अलग नहीं रहूँ। पर उसे साथ तब ले जा सकते थे, जब खुद का कोई ठिकाना हो। वे सोच रहे थे- मेरा कोई ठिकाना तय नहीं है। इसे अज्ञात कष्टों में क्यों ले चलूँ? यहाँ यह माँ की सेवा करेगी, महल में सुरक्षित रहेगी। मैं शीघ्र ही लौटकर आऊंगा। उन्होंने मैनासुन्दरी से कहा-

हे प्रिये! अधीर मत होवो। मैं निश्चित समय पर अवश्य आऊंगा। हमारा पुनर्मिलन होगा। मोह में मत पड़ो। क्योंकि **मोह सांसारिक जीवों का घोर शत्रु है।** मेरा अनुरोध मान लो, मुझे सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान कर उत्साहित करो।

मैनासुन्दरी को जब यह निश्चय हो गया कि स्वामी उसकी प्रार्थना पर अब कोई विचार नहीं करेंगे एवं उनका जाना निश्चित है; तब दीनतापूर्वक उसने कहा-

अच्छा, आपको जब जाना ही है एवं किसी प्रकार मेरी प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकते हैं, तो मैं क्या कर सकती हूँ? अस्तु आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। परंतु मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना है कि इस दासी को अपनी सेवा का जो अधिकार आपने प्रदान किया हुआ है, उसका सदैव स्मरण रखियेगा। आशा है, आप इस प्रार्थना को अवश्य स्वीकार कर लेंगे।

अन्त में एक निवेदन और भी है- यदि आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ठीक बारह वर्ष के पूर्ण होने के बाद इसी अष्टमी तक नहीं लौटे एवं मैं आपका दर्शन नहीं कर पाई, तो दूसरे दिन यानी नवमी के प्रातःकाल मैं निश्चय ही जिनदीक्षा ले लूंगी। संसारजाल से छूटने के लिए इस उचित मार्ग का अनुसरण करूंगी। आपके शुभ आगमन की प्रतीक्षा निश्चित समय के बाद मैं एक दिन भी नहीं करूंगी।

श्रीपाल ने कहा- हे प्रिये, एक ही बात को बार-बार दोहराने से क्या लाभ है? आपसे मिलने के लिए मैं भी उतना ही बेचैन रहूँगा, जितनी आप हैं, अतः मेरा विश्वास करो निश्चित समय से पूर्व हमारा मिलन अवश्य होगा। अब हमें खुशी से बिदा दीजिए।

श्रीपाल जब जाने लगे तब मैनासुंदरी ने श्रीपाल के दुपट्टे का छोर पकड़कर रोकने की कोशिश की। उसने कहा- स्वामी आप सचमुच ही जा रहे हो, मैं तो सोच रही थी कि शायद आप मजाक कर रहे हैं? मेरी परीक्षा ले रहे हैं।

श्रीपाल ने सोचा मोह कितना बलवान होता है। उन्होंने मैनासुन्दरी से कहा- देवी, मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ, न आपकी परीक्षा ले रहा हूँ। **परीक्षा वहाँ ली जाती है, जहाँ विश्वास न हो।**

हमें आप पर पूर्ण विश्वास है।

पति की बातों को सुनकर मैनासुन्दरी ने करबद्ध होकर उन्हें नमस्कार किया एवं उनके चरणों पर अपने मस्तक को झुका दिया।

किसी तरह पत्नी को मनाकर इसीतरह माता को समझाकर माँ का चरणस्पर्श कर श्रीपाल जाने लगे; तब कुन्दप्रभा ने उस आशीर्वाद देते हुए कहा-

श्री बढे अरू अतुल बल, बढे धर्म से स्नेह।
चतुरंग दल को संग ले, आवो सुत निज गेह।।

आशीर्वाद देने के बाद कुन्दप्रभा ने मस्तक पर कुमकुम का तिलक लगाया, श्रीफल भेंट किया।

श्रीपाल ने बिदा ले, विदेश की राह पकड़ी।

×××××

श्रीपाल उज्जैन के उद्यान में बने महल से निकल कर अनेक वन, ग्राम, नगर पार कर पैदल ही **वत्सनगर** पहुँचे। नगर के पास एक मनुष्य मंत्रसाधना कर रहा था। उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हो रही थी। उसके निवेदन पर श्रीपाल ने मंत्रसाधना कर प्राप्त विद्या उसी मनुष्य को दे दी। उसके बदले में उस विद्याधर ने जलतरंगिनी व शत्रुनिवारिणी दो विद्याएं दीं।

दो विद्याएं लेकर श्रीपाल आगे बढ़े। कईं दिनों की यात्रा के बाद **भृगुकच्छपुर** (भरूच) पहुँच गए। एक दिन वहाँ उन्हें एक धवल नाम का सेठ मिला। वह कौशाम्बी का रहनेवाला व्यापारी था। व्यापार के लिए भरूच आया था। उसके जहाज समुद्र में अटक गए थे। उसे किसी मनुष्य की तलाश थी, जिसकी वह बलि दे सके। धवल सेठ ने मीठी बातों में फंसाकर श्रीपाल की बलि देनी चाही। श्रीपाल ने सेठ से कहा- तुम्हें बलि ही देनी है या जहाज

चलाने हैं। सेठ ने कहा- हमें तो जहाजों को चलाने से प्रयोजन है। श्रीपाल के धक्का देने से धवल सेठ के जहाज चल पड़े।

सेठ ने कहा था- आप हमारे साथ चलिए, क्योंकि समुद्र में दस्युओं का ड़र है। श्रीपाल तैयार हुए, उसके बदले व्यापार के लाभांश का दसवाँ हिस्सा मांगा। सेठ राजी हो गया। श्रीपाल ने समुद्री यात्रा में दस्युओं का पराभव किया। दस्यु श्रीपाल की शरण में आये। श्रीपाल की प्रशंसा कर दस्युओं ने श्रीपाल को बहुत से बहुमूल्य रत्न उपहार के रूप में दिये।

श्रीपाल हंसद्वीप पहुँचे। वहाँ सहस्रकूट चैत्यालय था। उसके वज्रसमान प्रचण्ड़ द्वार लम्बे समय से बंद थे। दर्शन की इच्छा से गए हुए श्रीपाल के धक्का देने से दरवाजे खुल गए। अवधिज्ञानी मुनि के पूर्व के वचनों के अनुसार वहाँ के राजा कनककेतु ने अपनी पुत्री रयणमंजुषा का विवाह श्रीपाल के साथ किया। वे वहीं रहने लगे।

धवल सेठ व्यापार करता हुआ हंसद्वीप पहुँचा।

धवल सेठ के आग्रह पर श्रीपाल रयणमंजुषा को लेकर समुद्रयात्रा के लिए रवाना हुए। रयणमंजुषा की सुंदरता देखकर धवलसेठ की नीयत बदल गई। योजना बनाकर सेठ ने श्रीपाल को रस्सियों से बांधकर समुद्र में फेंक दिया। श्रीपाल एक लकड़ी के सहारे समुद्र पार कर किनारे पर पहुँच गए। वे जिस जगह पहुंचे वह कुंकुम द्वीप था। पूर्व में अवधिज्ञानी मुनि के कहे अनुसार वहाँ के राजा सत्तराज ने अपनी पुत्री गुणमाला का विवाह श्रीपाल के साथ कराया।

रास्ते में रयणमंजुषा के साथ जब धवल सेठ ने जबरदस्ती करने का प्रयास किया तब जलदेवता ने बांधकर अपनी गदा के प्रहारों से धवल सेठ को पीटा। उसने रयणमंजुषा के चरणों पर गिरकर माफी मांगी।

कुछ दिनों के बाद धवल सेठ भी व्यापार करता हुआ कुंकुमद्वीप पहुँचा था। वहाँ श्रीपाल को देखकर डर गया। श्रीपाल को भांड़ों का सरदार सिद्ध करने की भावना से भांड़ों को धन का लालच देकर राजा की सभा में भिजवाया। वहाँ उन भांड़ों ने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि राजा को लगा कि श्रीपाल भी भांड ही है। इसलिए राजा ने उसे फांसी देने का निर्णय सुनाया। श्रीपाल धवल सेठ की चाल समझ गए। उन्होंने गुणमाला को चोरी छिपे रयणमंजुषा के पास भेजा। रयणमंजुषा ने राजा को सारी हकीकत बतायी, राजा को श्रीपाल की हकीकत पता चली। तब राजा सतराज ने श्रीपाल से क्षमा मांगी। राजा के नौकर धवल सेठ को पीटते हुए लाये। श्रीपाल के चरणों पर गिरकर धवल सेठ ने माफी मांगी, श्रीपाल ने उसे क्षमा कर दिया।

इसतरह पुण्य के कारण श्रीपाल को हर जगह विपत्ति में भी लाभ होता गया। श्रीपाल का अनेक स्त्रियों के साथ विवाह हुआ। उनका समय सुख में बीत रहा था।

×××××

श्रीपाल जब एक दिन रात्रि के समय कुंकुमद्वीप में सुख से सो रहे थे, तो सहसा उनकी नींद टूट गई। नींद टूटने के बाद उन्हें मैनासुन्दरी की याद आई। उन्हें अपनी प्रतिज्ञा भी याद आई। उनका मन उद्विग्न हुआ। बारह वर्ष का समय पूरा होने में कुछ ही दिन बाकी रहे थे। उन्हें यह चिंता और सता रही थी कि सही समय पर नहीं पहुँच पाने पर मैनसुन्दरी दीक्षा लेगी। ऐसा होने पर मैनासुन्दरी से उनका मिलन नहीं हो पायेगा। उसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। उसी पतिव्रता की सेवा के कारण उन्हें कामदेव समान सुन्दर शरीर, विपुल वैभव, ये रानियाँ आदि प्राप्त हुई हैं। यदि वह मनोयोगपूर्वक सेवा नहीं करती तो हो सकता है, मैं आज भी कोढ़ की पीड़ा सहता रहता। मुझसे कैसी गलती हो गई? मैं

उसे कैसे भूल गया? बारह वर्ष में कुछ ही दिन बाकी है। उनकी नींद उड़ गई। सुबह होने पर वे राजा के पास गए। सारी हकीकत बतायी। राजा से आज्ञा लेकर श्रीपाल वहाँ से चले। उनके पास विशाल सेना थी। हजारों रानियाँ। लाखों दास-दासियाँ थे।

श्रीपाल विशाल सेना व परिकर के साथ उज्जैन पहुँचे। विशाल सेना को देखकर लोग ड़र कर राजा पुहुपाल के पास गए। राजा ने सेनापति को बुलाकर सेना को तैयार करने का आदेश देकर शाम होने से महल में चले गए।

शाम होने से श्रीपाल ने सेना को ठहरने का आदेश दिया। रात्रि होने पर सभी तो सो गए, पर श्रीपाल की आँखों में नींद नहीं थी। हो भी कैसे? क्योंकि आज बारह वर्ष पूरे हुए थे। आज अष्टमी थी। कल नवमी। यदि आज रात को मैनासुंदरी से मिलन नहीं हुआ तो कल प्रातः वह दीक्षा लेगी।

रात इसी तरह के विचारों में जागते-जागते बिताकर रात्रि के अंतिम प्रहर में वे अपने शिविर से निकल कर गुप्त रास्ते से महल में पहुँच गए।

श्रीपाल माँ कुन्दप्रभा के कमरे तक पहुँच गए। उस कमरे से वार्तालाप के शब्द सुनाई दे रहे थे। वे द्वार पर खड़े होकर वार्तालाप सुनने लगे- मैनासुंदरी अपनी सास से कह रही थी-

हे माताजी, बारह वर्ष बीत गए। पर आपके पुत्र नहीं आए। उनसे मैंने कह दिया था कि यदि वे निश्चित समय तक नहीं आये तो मैं जिनदीक्षा लूंगी। उसके अनुसार अब आज बारह वर्ष पूरे हुए हैं। प्रातःकाल होते ही मैं दीक्षा लूंगी, क्योंकि पतिप्रेम भी प्राप्त न हो और संयम भी धारण न कर सकूँ तो इस जीवन का क्या लाभ है?

हे माता, जहाँ तक मुझ से बना, मैंने आज तक आपकी सेवा की है। उसमें किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो कृपया क्षमा

कर दें और मुझे जिनदीक्षा की अनुमति दीजिए।

कुन्दप्रभा- बेटी, आपकी सेवा में कोई कमी नहीं थी। तुम्हारी तरह बहु पाकर मैं धन्य हो गई और दो चार दिन धैर्य धारण करो। यदि दो-चार दिन के बाद भी मेरा पुत्र नहीं आता है तो मैं भी तुम्हारा साथ दूंगी। मैं और तुम साथ ही दीक्षा लेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि एक-दो दिन में मेरा पुत्र अवश्य आएगा।

मैनासुन्दरी- माँ जी, मुझे भी उनके वचनों पर विश्वास है। परंतु न जाने कौन सी बाधा आ पड़ी कि वे निश्चित समय पर आने में असमर्थ हो गए। परंतु बिना संदेश के मैं यह कैसे मानूँ कि वे एक-दो दिन में आयेंगे।

कुन्दप्रभा- बेटी, जहाँ बारह बरस काटे उसकी प्रतीक्षा में, वहाँ दो-चार दिन और धैर्य धारण करो। लम्बे अंतराल के बाद घर आकर तुम्हें नहीं देखने से बेचैन हो जायेगा। पश्चाताप के अलावा उसके पास कुछ नहीं रहेगा। इसलिए दो-चार दिन और रूको, वह नहीं आया तो मैं भी दीक्षा लूंगी।

मैनासुन्दरी- माताजी, मोह में पड़कर और अधिक समय को अब यों ही व्यर्थ बिताना ठीक नहीं है। आप भी अब मोह को छोड़ दें एवं मेरे साथ चलें। हम दोनों मिलकर धर्म के रास्ते की यात्रा पूरी करेंगे। मेरी जैसी पत्नियाँ तो उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेंगी। अब अधिक अपमान सहने के लिए निचेष्ट बैठे रहना उचित नहीं है।

इस प्रकार सास-बहु परस्पर वार्तालाप कर रही थीं कि श्रीपाल ने धीरे से दरवाजा खटखटाया और कहा- माँ दरवाजा खोलो, आपका पुत्र दरवाजे पर खड़ा है।

श्रीपाल के अमृततुल्य मधुर शब्द सुनकर दोनों ही आनंदविभोर हो गईं। दोनों के हृदय के भाव तत्काल बदल गए। शोक के स्थान पर आनंद लहराने लगा। उनके हर्ष की कोई सीमा

न थी। शीघ्र ही द्वार खोल दिये। श्रीपाल मिलन की अधीरता के साथ भीतर जा पहुँचे। उन्होंने आदरपूर्वक नतमस्तक होकर प्रणाम किया। माता ने प्रसन्न हृदय से आशीर्वाद दिया। मैनासुन्दरी पति के चरणों से लिपट गई। उसने कहा- हे स्वामी, मैं महाभाग्यशाली हूँ।

उसके बाद श्रीपाल माँ एवं मैनासुन्दरी को उसी गुप्तद्वार से लेकर शिविर में गए। माँ को उच्चासन पर बिठाकर सभी रानियों से परिचय कराया कि ये आपकी आदरणीया सास है।

तथा मैनासुन्दरी की ओर इशारा कर कहा- कि ये हमारी पटरानी है। यह सब जो कुछ भी वैभव आप देख रही हो, यह जो कामदेव समान सुन्दर शरीर देख रही हों, वह सब कुछ इनकी सेवा का परिणाम है। मैं उस समय की दुःखावस्था को कभी नहीं भूल सकता हूँ, जब मैं विपत्ति का मारा, कोढ़ी का शरीर लिए दीनहीन होकर मारा-मारा फिर रहा था। परदेशी था। इन्होंने मुझे पति के रूप में स्वीकार कर पहला उपकार किया, रात-दिन सेवा कर दूसरा उपकार किया। समय-समय संभाल करके इन्होंने असंख्य, उपकार किये हैं, इनके उपकार का बदला हम कभी नहीं चुका पायेंगे। यह हमारी प्रथम पत्नी पटरानी मैनासुंदरी हैं।

इन दोनों के पुण्यप्रताप से आप जैसी आठ हजार पत्नियाँ और अतुल्य वैभव प्राप्त कर सका हूँ।

मैनासुन्दरी ने श्रीपाल के मुँह से प्रशंसा सुनकर मुँह नीचे कर कहा- हे नाथ, मैं तो सामान्य नारी हूँ, मैं आपके चरणों की धूलि हूँ। यह तो मेरा ही सौभाग्य है कि मैंने अपने पूर्वपुण्य के प्रताप से आप जैसे उत्तम पति को प्राप्त किया है। आपके सम्पर्क से महत्ता पाई है। आप कोटिभट हैं, पराक्रमी हैं, धीर-वीर हैं। यह दासी आपके सेवा में ही अपना सौभाग्य समझती है।

इस तरह श्रीपाल के साथ मैनासुन्दरी का पुनर्मिलन हो

गया। फिर सुख से, सुख के दिन बीतने लगे।

×××××

एक दिन मैनासुन्दरी को पिता की याद आयी और उसे लगा कि पिताजी धर्म के दृढ़श्रद्धानी नहीं हैं। उन्हें धर्म का दृढ़ श्रद्धान कराना चाहिए। यह अभिप्राय उसने श्रीपाल को बताया। श्रीपाल ने योजना समझाकर एक दूत से कहलवाया कि राजा पुहुपाल कम्बल ओढ़, कुल्हाड़ी कंधे पर रख, लंगोट पहन कर हमारे सामने आये, तो ही उनका राज्य सुरक्षित है, नहीं तो युद्ध के लिए तैयार रहें।

मंत्रियों के समझाने पर सामनेवाले राजा को बलशाली जानकर राजा पुहुपाल इसके लिए तैयार हुए। दरअसल श्रीपाल उनका घमंड दूर करना चाहते थे। पुहुपाल को दूसरे दूत से कहलवाया कि हम न आपको दास बनाना चाहते हैं, न कहे अनुसार कम्बल आदि ओढ़कर आना है, आप तो हमारे पूजनीय हैं।

जब श्रीपाल और पुहुपाल का मिलन हुआ तब पुहुपाल श्रीपाल को पहिचान नहीं पाए और कहने लगे- हे नरशिरोमणि! आप कौन हैं?

तब श्रीपाल ने कहा- मैं आपका छोटा दामाद श्रीपाल हूँ। बारह वर्ष के लिए परदेश-भ्रमण के लिए गया था। आपके आशीर्वाद से सकुशल लौटा हूँ। परिचय के बाद दोनों गले मिले। प्रसन्न हुए। उसके बाद पुहुपाल मैनासुन्दरी से कहने लगे-

हे बेटी, मैं बहुल लज्जित हूँ। मैंने आपके प्रति बहुत बड़ा अपराध किया है, तू मुझे क्षमा कर दे। तू धर्म के रहस्य को, धर्म के मर्म को जानने वाली है, शील का पालन करनेवाली सती है। मैं धर्म के रहस्य से अनभिज्ञ था, इसलिए मुझसे अपराध हुआ है। परंतु तुम्हारे कारण मुझे धर्म का श्रद्धान हुआ है। धर्म का मर्म

पता चला है। आज मुझे तुम पर गर्व है और गर्व के साथ कहना चाहता हूँ कि **बेटी हो तो मैनासुन्दरी जैसी।**

मैनासुन्दरी ने पिताजी से कहा- पिताजी, आप बड़े उपकारी हैं, आपने मेरी परीक्षा नहीं ली होती तो शायद यह सुअवसर देखने को नहीं मिलता।

पुहुपाल ने श्रीपाल का अभिषेक कराया। उन्होंने उत्सव मनाया। आनंद से रहने लगे।

कुछ दिन रहकर वे अपने मूलराज्य को प्राप्त करने के चम्पापुरी की ओर चल पड़े। चाचा वीरदमन के पास दूत भेजकर संदेश दिया कि राज्य लौटा दीजिए। वीरदमन नहीं माना, तब श्रीपाल युद्ध कर वीरदमन को पराजित कर अपनी मूल राजधानी चम्पापुर में आनन्दपूर्वक रहने लगे।

वीरदमन ने दीक्षा लेकर मोक्षपद प्राप्त किया।

श्रीपाल पूर्व की तरह प्रजा का पालन करने लगे। श्रीपाल, मैनासुन्दरी प्रतिदिन चार प्रकार के संघों को भक्तिपूर्वक दानादि करते थे। सम्पूर्ण दिन धर्मध्यानपूर्वक बिताते थे। उनका समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था।

कुछ समय बीतने के बाद पटरानी मैनासुन्दरी के गर्भाधान हुआ, गर्भ के दौरान गर्भकाल पूरा होने तक प्रतिदिन दान दिया गया। शुभसमय पर मैनासुन्दरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। शुभलक्षणोंवाले बालक का नाम धनपाल रखा। उसका जन्मोत्सव बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया।

कुछ समय बाद मैनासुन्दरी ने क्रमशः महापाल, देवरथ एवं महारथ नाम के तीन और पुत्ररत्नों को जन्म दिया। समय आनंद से बीतने लगा।

×××××

एक दिन श्रीपाल मैनासुन्दरी के साथ बैठे हुए थे, तभी माली ने चम्पापुर में केवली भगवान के पधारने का शुभसमाचार दिया। श्रीपाल मैनासुन्दरी आदि केवली भगवान के दर्शन के लिए गए। दर्शन कर एक ओर बैठ गए। उपदेश सुना। उपदेश सुनने के बाद अपने पूर्वभव जानने की जिज्ञासा प्रकट की। केवली भगवान ने बताया-

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नसंयमपुर नामका नगर था। तुम वहाँ श्रीकण्ठ नाम के विद्याधरों के राजा थे। एक दिन मंदिर से लौटते समय मुनिराज के दर्शन हुए थे। तुमने भक्तिपूर्वक मुनिराज के दर्शन किए। उपदेश सुना। व्रत लिए। परंतु कुसंगति में रहकर आपने व्रतों का पालन नहीं किया। व्रत त्याग दिये। इतना ही नहीं तीव्रमोह के कारण तुमने मिथ्यात्व का सेवन किया। जैनधर्म की निंदा करने लगे।

एक दिन सात सौ वीरों के साथ जंगल में क्रीड़ा करने के लिए जा रहे थे। रास्ते में मुनिराज के दर्शन हुए थे, परन्तु ''यह कोढ़ी है, यह कोढ़ी है'' ऐसा कहकर उनकी निंदा की थी। आज्ञा देकर उन मुनिराज को समुद्र में फिकवा दिया। करूणा उत्पन्न होने पर उन्हें समुद्र से बाहर निकलवाया।

कुछ दिनों बाद पुनः मुनि के दर्शन हुए। तुम ने 'यह भ्रष्ट है, भ्रष्ट है', कहकर उनकी निंदा की थी और कहा था- इसका मस्तक काट देना चाहिए। यह कहकर उनका सिर काटने के लिए तलवार निकाली थी। पुनः दयावश तलवार वापिस रख दी।

एक दिन आपने ये सारी घटनाएं अपनी श्रीमती नाम की रानी को सुनाईं। तब रानी ने आपको धर्म की, व्रतों की, मुनिराजों की महिमा बतायी। उसने बताया- थोड़ी भी धर्मनिंदा, मुनिनिंदा

से नरक की घोर वेदनाएं भोगनी पड़ती हैं। आपने तो घोर अनर्थ किए हैं। उनके फल सोचकर मैं सिहर जाती हूँ।

उस दिन से आपने धर्म में मन लगाया। व्रत धारण कर निरतिचार पालन करने लगे। जीवनभर धर्म और व्रतों का पालन कर अंत में संन्यासपूर्वक देह छोड़ी। परिणाम स्वरूप स्वर्ग में देव बने। आपकी श्रीमती नाम की रानी आपकी देवी बनी। स्वर्ग से आकर तुम श्रीपाल बने हो और श्रीमती का जीव मैनासुंदरी बना है।

पूर्व में मुनि को ''कोढी'' कहकर निंदा की थी। इसलिए इस भव में तुम्हें कोढ़ हुआ था। मुनि को समुद्र में फिकवाया था, इसलिए तुम्हें भी समुद्र में फिकवा दिया गया। मुनि को समुद्र से निकलवाने के पुण्य से समुद्र को तैरकर पार कर किनारे तक पहुँच गए हो। मुनि 'भ्रष्ट है, भ्रष्ट है'- कहकर निंदा की थी, इसलिए भाड़ों ने तुम्हें 'यह हमारा पुत्र है, पुत्र है'-ऐसा कहा था। मुनि को मारने के लिए तलवार निकाली थी, इसलिए राजा सतराज ने तुम्हें फांसी की सजा सुनाई थी। दयावश तुमने तलवार वापिस रख ली थी, इसलिए राजा ने तुम्हारी हकीकत जानकर फांसी की सजा वापिस ले ली थी।

तुमने पूर्व में सिद्धचक्रविधानव्रत कर उद्यापन किया था, जिसके परिणाम स्वरूप तुम्हें अपार वैभव की प्राप्ति हुई है।

श्रीमती के भव में श्रीमती के जीव ने तुम्हारा उपकार किया था, उसी श्रीमती के जीव ने इस भव की मैनासुन्दरी ने तुम्हारे ऊपर उपकार किया है।

×××××

अपने पूर्व भव सुनकर श्रीपाल को संसार से वैराग्य हुआ। उस दिन से वे उदास रहने लगे।

एक दिन उन्होंने बिजली की चमक देखी। उन्होंने चिंतन किया- यह संसार, शरीर का संयोग, विषयभोग सभी बिजली की तरह हैं, इनमें स्थायित्व या सार नहीं है। उनका वैराग्य बढ़ गया। उन्होंने दीक्षा ली। तप कर के केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त किए।

मैनासुन्दरी ने भी आर्यिका व्रत ग्रहण कर धोर तपश्चरण किया। तप के प्रभाव से स्त्रीलिङ्ग का नाश कर सोलहवें अच्युत स्वर्ग में बाईस सागर की आयुवाला देवपद प्राप्त किया। यह देव यहाँ से निकलकर मोक्ष जायेगा।

×××××

भजन

ऊंची – 2 टोंकों वाला तीर्थ हमारा है, – 2 ये सम्मेद शिखर, ऐसी मुक्ति की डगर चलें पूजन को, वंदन को ऊंचे–2 शिखरों का सुंदर नजारा है
अविनाशी गिरिवर जैसे धरती भंवर, चलें पूजन को ऊंची ऊंची.....

1. कितनी दूर अजी कितनी दूर है पहली गणधर टोंक हो
   दूर नहीं अब पहुँच गये हैं टोंकों पर देने ढोंक हो
   गूंज रहा चहुँ जय–जयकार जैसे तीनों लोक हो.....
   चंदन–सी मिट्टी यही गौरव हमारा ये सम्मेद शिखर.....

2. कितनी दूर अजी कितनी दूर है चन्दा प्रभु की टोंक हो,
   दूर नहीं अब पहुँच गये हैं जय चन्दा की टोंक हो
   कितना ऊंचा पर्वत सोहे, शोभे चन्द्र प्रभु टोंक हो .....
   मुक्ति दिलावे भव–बन्धन से छुड़ावे है ये सम्मेद शिखर .....

3. कितनी दूर अजी कितनी दूर है पार्श्व प्रभु की टोंक हो
   दूर नहीं अब पहुँच गये हैं बड़े बाबा की टोंक हो
   कितना सुन्दर मनहर मन्दिर–2 जैसे पहुँचे स्वर्ग हो–ऽऽऽ
   मोक्ष महल की सीढ़ी कर्म कटावे ये सम्मेद शिखर .....

भजन

श्री सिद्धचक्र का पाठ करो दिन आठ
ठाट से प्राणी, फल पायो मैनारानी।। टेक।।

मैनासुन्दरी एक नारी थी, कोढ़ी पति लखि दुःखियारी थी।
नहिं पड़े चैन दिन रैन व्यथित अकुलानी, फल पायो मैनारानी।। 1।।

जो पति का कष्ट मिटाऊँगी, तो उभय लोक सुख पाऊँगी।
नहिं अजागल-स्तनवत् निष्फल जिंदगानी, फल पायो मैनारानी।।2।।

इक दिवस गई जिनमन्दिर में, दर्शन कर अति हर्षी उर में।
फिर लखे साधु दिगम्बर ज्ञानी, फल पायो मैनारानी।। 3।।

बैठी मुनि को कर नमस्कार, निज निंदा करती बार-बार।
भरि अश्रु नयन कहि मुनियों दुःखद कहानी, फल पायो मैनारानी।। 4।।

बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो, श्री सिद्धचक्र का पाठ करो।
नहिं रहे कुष्ट की तन में नाम निशानी, फल पायो मैनारानी।।5।।

सुनि साधु वचन हर्षी मैना, नहिं होय झूठ मुनि के बैना।
करि के श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की ठानी, फल पायो मैनारानी।। 6।।

जब पर्व अठाई आया है, उत्सवयुक्त पाठ कराया है।
सब के तन छिड़का यंत्रन्हवन का पानी, फल पायो मैनारानी।। 7।।

गन्धोदक छिड़कत वसु दिन में, नहिं रहा कुष्ट किंचित् तन में।
भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी, फल पायो मैनारानी।।8।।

भव भोगि-भोगि योगेश भए, श्रीपाल कर्म हनि मोक्ष गए।
दूजे भव मैना पावै शिव रजधानी, फल पायो मैनारानी।। 9।।

जो पाठ करैं मन वचन तन से, वे छूटि जांय भवबंधन से।
'मक्खन' मत करो विकल्प कहा जिनवाणी, फल पायो मैनारानी।। 10।।

8. सती अनन्तमति

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सुप्रसिद्ध अंगदेश था। चम्पापुर इस देश की राजधानी थी। वहाँ वसुवर्धन नाम का राजा राज्य करता था, उसकी रानी का नाम लक्ष्मीमति था। उनका एक प्रियदत्त नाम का पुत्र था। प्रियदत्त की पत्नी का नाम अंगमति था।

प्रियदत्त की अनन्तमति नाम की एक पुत्री थी। यह पुत्री बचपन से ही धार्मिक संस्कारोंवाली, नम्र और सुंदर थी। प्रतिदिन मंदिर जाना, दर्शन, पूजन, भक्ति करना उसकी दिनचर्या के अंग थे। वह मुनिदर्शन से प्रसन्न होती थी। माता-पिता की आज्ञा में रहना उसे अच्छा लगता था। प्रियदत्त और अंगमति आदि पूर्ण परिवार धार्मिक था। धर्म के संस्कारों से पूरा परिवार संस्कारित था।

अनन्तमति पर परिवार के संस्कार थे, उसकी स्वयं की भी धर्म में रूचि थी। अनंतमति इन्हीं संस्कारों में पली पढ़ी थी।

एक बार अष्टाह्निका महापर्व के शुभ अवसर पर **धर्मकीर्ति मुनिराज** का संयोग हुआ था। सभी चम्पापुर-वासी दर्शन के लिए जाते थे। उपदेश सुनकर शक्ति के अनुसार व्रत नियम लेते थे।

प्रियदत्त, अंगमति अपने परिवार के साथ मुनिराज के दर्शन के लिए गये थे। उन दोनों पति-पत्नी ने आठ दिन के ब्रह्मचर्य का नियम लिया और अपनी पुत्री अनंतमति को भी ब्रह्मचर्य का नियम दिलाया। मुनिराज धर्मकीर्ति विहार कर वहाँ से चले गए। समय बीतते देर नहीं लगती। कुछ महिने, वर्ष यों ही बीत गए।

अनन्तमति पूर्ण युवती हो गई। उसकी पूर्ण युवावस्था देखकर प्रियदत्त ने उसके लिए वर खोजना प्रारंभ कर दिया। घर में विवाह की चर्चा, विवाह की धूमधाम देखकर अनंतमति ने पिताजी से कहा-

पिताजी, आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलाया था। ये विवाह

की तैयारियाँ किसलिए कर रहे हो?

अनन्तमति की बात सुनकर प्रियदत्त चौंक पड़ा, उसे विस्मय हुआ। उसने अनन्तमति से कहा-

बेटी, मैंने जो ब्रह्मचर्यव्रत दिलाया था, वह तो आपको बालिका देखकर मजाक में दिलाया था। मैंने सोचा बालिका ही तो है और जैसे हमने आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्यव्रत लिया है। इसे भी दिला देते हैं, आठ दिन की ही तो बात है। वह तो एकतरह से मजाक था, क्योंकि जिसे स्वयं की, व्रत की समझ न हो, उसे व्रत दिलाने से कोई लाभ नहीं होता है, उस परिहास को क्या तुम यथार्थ समझ गई हो?

इस पर गंभीर होकर अनंतमति बोली-

पिताजी! **धर्म, व्रत, नियम, न्याय के विषय में कभी भी हँसी-मजाक नहीं करना चाहिए। न इन्हें कभी मजाक समझना चाहिए। नियम छोटा हो या बड़ा- अपनी शक्ति के अनुसार लेकर गंभीरतापूर्वक उसका पालन करना चाहिए। व्रत नहीं लेने का कोई विशेष दण्ड नहीं है, परंतु नियम लेकर उसे तोड़ने का फल, नरक-निगोद ही है।** मैं व्रत-नियम के प्रति गंभीर हूँ, मैंने उसे मजाक नहीं समझा था, न कभी समझूंगी। मैं उसे प्राण देकर भी आजीवन निभाऊंगी।

अनंतमति की इन बातों को सुनकर हताश, दुःखी हुए प्रियदत्त ने बेटी से कहा-

बेटी! वह नियम तो मात्र आठ दिन के लिए था। हमने भी मात्र आठ दिन के लिए ही लिया था। आपको भी आठ दिन के लिए ही दिया था।

पुनः और भी गंभीर होकर अनंतमति ने कहा-

पिताजी, न तो आपने, न हि मुनिराज ने मुझे यह बताया कि यह नियम आठ दिन के लिए है। पिताजी मेरे हितैषी हैं,

मुनिराज तो सभी का, सदा भला ही चाहते हैं, इसलिए मेरा भला जानकर ही वह नियम मुझे दिलाया होगा- यह सोचकर मैंने भी मन से उसे स्वीकार किया। समय की सीमा न तो आपने बतायी, न किसी और ने। इसलिए मैंने उसे आजीवन ग्रहण किया है।

इसमें न तो आपकी गलती है, न मेरी। होनि अटल होती है। जो होनि थी, वह हो गई। जो हुआ वह अच्छे के लिए ही हुआ। क्योंकि व्रत, नियमों से सभी का उद्धार ही होता है। नियम लेने में, उसे आजीवन पालने में मेरा भला ही है। भला, नियमों से, व्रतों से कभी किसी का बुरा हुआ है ? देवता आदि भी व्रती को ही नमस्कार करते हैं, उनकी सहायता करते हैं। अव्रती को न कोई नमस्कार करता है, न हि सहायता।

पिताजी, आप स्वयं ज्ञानी हैं, आपको क्या बताऊँ? धर्म की बातें, धर्म के संस्कार आप से ही पाये हैं। आपको दुःखी देखकर कहने का मन हुआ है। वैसे भी पिताजी, **अनादिकाल से इस जीव ने नाना योनियों में भटकते-भटकते भोग भोगते-भोगते दुःख ही तो पाये हैं। विवाह आदि भोग-साधनों से पापबंध ही होता है। महापुरूषों ने इन्हें पाप का साधन जानकर दूर से ही छोड़ा है।** तीर्थंकर जैसे पुण्यशालियों में पाँच तीर्थंकर तो आजीवन ब्रह्मचारी रहे हैं। वे पाँच बालयति अर्थात् बचपन से ही नियमधारी थे।

पिताजी, **व्रत तो पुण्यशालियों के भाग्य में ही होते हैं, पापियों को तो व्रतों को धारण करने की भावना भी नहीं होती है। यमपाल चाण्डाल, अंजन चोर जैसे पापी भी व्रतों के कारण तर गए हैं।**

इसलिए पिताजी, मेरा ब्रह्मचर्यव्रत आजीवन समझिए, मैं उसमें सुखी, प्रसन्न, सुरक्षित हूँ। व्रत दुःख की नहीं, खुशी और पुण्य की बात है।

आप इसकी अनुमोदना करके पुण्य के भागी बन जाइए। मेरे विवाह का विचार छोड़ दीजिए। इस जन्म में मेरा विवाह

असंभव है।

अनंतमति की दृढ़ता, गंभीरता और ज्ञान की बातें सुनकर प्रियदत्त अचंभित थे। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि अनंतमति धर्म व व्रतों के प्रति इतनी दृढ़, गंभीर और जानकारीवाली होगी। उसके उत्तर से हतप्रभ प्रियदत्त ने सिर्फ इतना ही कहा-

बेटी, धन्य हो, धन्य है तुम्हारी व्रतों की आस्था। तुम्हारे जैसी बेटी पाकर हमारा कुल धन्य हो गया है। हम माँ-बाप भी धन्य हो गए। उन्होंने उसकी ब्रह्मचर्य की दृढ़ता देखकर उसके विवाह का विचार छोड़ दिया।

अनंतमति भी धर्मध्यान व स्वाध्यायादि शुभकार्यों में व्यस्त रहने लगी।

×××××

एक दिन चैत्र महिने में अनन्तमति महल के बाहर के उद्यान में अकेली झूला झूल रही थी।

उसी समय कुण्डलमण्डित नाम का विद्याधर अपनी पत्नी के साथ ऊपर विमान से जा रहा था। यह विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के विद्याधरों का राजा था। किन्नरपुर उसकी राजधानी थी।

कुण्डलमण्डित उसे देखकर ठगा-सा रह गया। वह कामबाणों से घायल हो गया। उसने सोचा कि यह देवकन्याओं से भी अधिक सुन्दर कन्या कौन है?

उसने अपनी अवलोकिनी विद्या से पता लगा लिया कि वह कन्या कौन है?

उसकी सुन्दरता से घायल हुआ कुण्डलमण्डित विद्याधर बेचैन हो गया। अनंतमति की एक झलक उसे दुःखी कर गई। उसने सोचा कि यह कन्यारत्न उसे नहीं मिला तो उसका जीवन बेकार है। इसे जैसे भी बने पाना ही चाहिए।

यह सोचते-सोचते कुण्डलमण्डित पत्नी को लेकर

किन्नरपुर गया। वहाँ पत्नी को महल में छोड़कर पत्नी से बिना कुछ कहे वहाँ से अनंतमति को पाने के लिए चल दिया।

पति के बिना कुछ कहे, शीघ्रतापूर्वक जाने से कुण्डलमण्डित की पत्नी को शक हो गया। वह भी चोरी छिपे उसके पीछे चली गई।

कुण्डलमण्डित जबरदस्ती करके अनंतमति को लेकर विमान में बिठाकर चला। अनंतमति इस अकस्मात घटना से बेचैन, व्याकुल होकर विलाप करने लगी। उसकी करूण चित्कारे सुनकर कुण्डलमण्डित की पत्नी को बहुत गुस्सा आया। उसकी आँखे लाल हो गईं। मुँह तमतमाने लगा। गुस्से से उसका शरीर कांपने लगा। उसे समझते देर नहीं लगी कि कुण्डलमण्डित ने उसके साथ धोखा किया है। वह इस कन्या को भी धोखे-से जबरदस्ती ले जाना चाह रहा है। उसका पति जबरदस्ती करके वह उस शीलवती का शील भंग करना चाहता है। वह जोर से चिल्लाकार कहने लगी-

अरे दुष्ट, रूक। अधर्म का कार्य करके अपने को नरक में ले जा रहा है। तेरा मन पापी है, तुझे मैं ऐसा अधर्म, पाप करने नहीं दूंगी। शीलवती के शील से खिलवाड़ नहीं करने दूंगी। रूक, कहाँ जाता है? मैं तुझे नहीं छोडूंगी।

पत्नी की आवाज सुनकर, उसकी क्रोधित आकृति देखकर कुण्डलमण्डित ड़र गया। ड़र के मारे अनंतमति को छोड़ने में ही अपनी भलाई समझी। पर्णलध्वी विद्या के सहारे उसे घने जंगल में छोड़ा। उसने सोचा पत्नी को शांत कर पुनः यहाँ आकर उसे ले जाऊँगा।

×××××

उस दिन उस समय शाम हो गई थी। जंगल घना था। रास्ते का पता नहीं था। इसलिए उस समय अनंतमति ने एक सुरक्षित स्थान देखकर, इस समय अपने पाप का उदय जानकर

पंचपरमेष्ठी के स्मरण में रात जैसे-तैसे हिंसक जानवरों के भय से जागते-जागते बितायी।

सुबह होने पर भीलों का राजा शिकार के लिए निकला। उसने रोती हुई एक सुन्दर कन्या को देखा। वह भी उसकी सुन्दरता से घायल हो गया था। परन्तु वासना को मन में दबाकर उसके पास गया। यहाँ कैसे आयी? पूछने पर उसने भोले मन से सारी हकीकत बता दी।

उसे उसके घर पहुँचाने की कहकर अपने घर ले गया। वहाँ उसने पहले मीठी-मीठी बातों से उसे मनाने की कोशिश की। उससे कहा- मैं तुझे अपनी पटरानी बनाऊंगा, मुझे पति के रूप में स्वीकार करो।

उसकी बातों से तिलमिलाई अनंतमति ने कहा-

अरे धोखेबाज, तुमने मुझे मेरे घर पहुँचाने का वादा किया था। घर पहुँचाने के बदले वासना का गंदा खेल दिखा रहा है। तुम जैसे मांसाहारी पापी की परछाई को भी अशुभ मानती हूँ, तुम्हारे साथ रहना, विवाह करना तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकती। मैं आजीवन ब्रह्मचर्य को धारण करनेवाली कन्या हूँ। मुझे मरना पसंद है, पर व्रत को तोड़ना पसंद नहीं है। यह कहकर वह फूटफूट कर रोने लगी।

अनंतमति की अटल दृढ़ता देखकर भी भीलराजा ने उसके साथ जबरदस्ती करनी चाही। सच है- **पापियों के मन पर परिस्थितियों का असर नहीं होता।** पापी तो हर हाल में अपने पाप की सिद्धि चाहता है। उसने साम, दाम, दण्ड सभी उपाय अपनाये। उसने उसके चरणों पर गिरकर वासना की पूर्ति चाही, परंतु सती शीलवती अनंतमति पर उसकी किसी भी बात का असर नहीं हुआ। **शील, सतीत्व ही जिसका सर्वस्व होता है, उस पर बाहर के प्रलोभनों या भय की बातों का प्रभाव नहीं पड़ता।**

अंत में थक हारकर उसे पाने का अंतिम उपाय समझकर उसके साथ जोर जबरदस्ती करना शुरू की, उसी समय वनदेवी ने आकर भीलराज को ड़राया, धमकाया। कहा-

यह देवी है, उसे छूना भी मत। नहीं तो जलकर राख हो जाओगे। उसकी पिटाई की और कहा इसे इसके सुरक्षित स्थान पर छोड़कर आओ।

वनदेवी के ड़र, मार एवं धमकाने से ड़रा हुआ भीलराजा उसी समय उसे लेकर गया।

×××××

जंगल से थोड़ी दूरी पर एक बस्ती थी। वहाँ एक पुष्पक नाम का सेठ था। भीलराजा अनंतमति को लेकर जा रहा था, तब उसे रास्ते पर पुष्पक सेठ मिला। सेठ ने पूछा-

कहाँ जा रहे हो?

भीलराजा ने सारी वास्तविकता बताकर कहा- इस शीलवती को उसके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।

सेठ- जंगल में रहनेवाले तुम्हें रास्तों का पता नहीं है। तुम्हें इसे पहुँचाने में बहुत देर लगेगी। मैं इसे उसके घर पहुँचा दूंगा।

भीलराज- जरूर पहुँचा देना। इस काम में देरी मत करना।

×××××

सेठ अनंतमति के सौंदर्यजाल में उलझ गया था। वह उसे अपने घर ले गया। एकान्त देखकर उससे कहने लगा-

मैं यहाँ का सबसे अमीर व्यक्ति हूँ। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं है। अभी जवान हूँ। वैसे भी अमीर कभी बूढें नहीं होते। तुम इस धरती की सबसे सुंदर कन्या हो। मैं इस बस्ती का सबसे अमीर व्यक्ति हूँ। मुझे पति के रूप में स्वीकार कर कृतार्थ करो।

कहाँ वह काला कलूटा भील और कहाँ तुम जैसी अनुपम

सुंदरी। अच्छा हुआ उसके चंगुल से छूटकर मुझ जैसे गुणों की कद्र करनेवाले के पास आई हो। यहाँ तुम सुरक्षित समझो। मैं तुम्हारे चरणों का दास बनकर रहूँगा। तुम्हें सेठानी बनाकर रखूंगा। यह कहकर वह उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

अनंतमति मन में विचार करने लगी। **यह संसार कितना विचित्र है। यहाँ हर किसी को अपने पाप की पूर्ति की पड़ी है। स्वार्थ पूरा करने के लिए छल, कपट हर साधन अपनाते हैं। किसी के दुखदर्द से किसी को कोई वास्ता नहीं। सबको बस अपने स्वार्थ सिद्ध करने हैं।**

वह सोच रही थी। यह सेठ थोड़ी देर पहले कितना भोला बना था। अब कैसे राक्षस बन गया। सच है- **वासना में मनुष्य राक्षस बनता है।** मेरे पाप का उदय अभी भी चल ही रहा है। क्या करूँ? इन पापियों को कैसे समझाऊँ?

अनंतमति को इन विषयलम्पटियों की बातें कांटे की तरह चुभ रही थी। परंतु वह लाचार, बेबस थी। उसने सोचा मुझे ड़रना नहीं चाहिए। ड़टकर मुकाबला करना चाहिए। ड़रे तो वे, जो पाप करते हैं।

उसने सेठ से निड़र होकर कहा-

अहो, सेठ आश्चर्य है, अपनी बेटी समान कन्या से वासना की इच्छा रखते हो। शर्म करो। आपकी बातें यदि आपकी पत्नी और समाज को बताऊँ तो आपकी क्या इज्जत रहेगी? समाज में किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रहोगे। आपकी वासना अपनी धर्मपत्नी से शांत नहीं हुई तो मुझ जैसी कन्याओं से कैसे होगी? वासना बड़ी शत्रु है। स्वर्ग में देवाङ्गनाओं से जीव की भूख नहीं मिटी तो मुझ जैसी अबला मनुष्यिनी से कैसे मिटेगी?

वासना की पूर्ति के लिए कैसे मायाचारी कर रहे हो? आपने भील से मुझे घर पहुँचाने की बात कही थी। अब ये कपट-

छल किसलिए? क्या तुम्हें पाप से ड़र नहीं लगता है?

पाप का फल कितना भयंकर होता है? इसके कारण यह जीव धर्म से बहुत दूर हो जाता है और कष्टों का बोझ लिए जीता है। इससे ड़रो। **उत्तम दुर्लभ मनुष्य भव मिला है, उसका पापों का रास्ता छोड़कर धर्म के रास्ते पर चलकर सदुपयोग करो।**

मैं आजीवन ब्रह्मचारिणी व्रतधारिणी कन्या हूँ। यह शरीर भोगों के लिए नहीं, तप के लिए है। **यह तप नरक, तिर्यञ्च, देव गति में नहीं है। सिर्फ मनुष्य गति में ही है। तप करो, दूसरों का ताप हरो।** आपको ऐसी बातें करते समय विवेक रखना चाहिए था। विवेक नहीं रहा तो मनुष्य और तिर्यञ्च में भेद ही क्या है?

मैं किस पर विश्वास करूँ? मैं तुम्हें अपना रक्षक समझती थी, तुम तो भक्षक निकले। मैंने तुम में पिता देख रही थी, तुम तो पतित निकले। मुझे दुःख हो रहा है तुम्हारे जैसी ऊमरवाले का चरित्र देखकर। तुम्हारे धन, वैभव, जीवन को धिक्कार हो, लाखों बार धिक्कार हो। तुम्हारे वासनामय चरित्र से तुम्हारा वंश कलंकित हो रहा है। तुम मनुष्य नहीं मनुष्य के रूप में राक्षस दिख रहे हो।

इस प्रकार निड़रता के साथ की गई अपनी भर्त्सना से सेठ घबरा गया। अपने पाप का घड़ा फूट न जाय। इस ड़र से उसने बाहरी मन से अनंतमति से क्षमायाचना की। परंतु उसके मन में अपमान के कारण प्रतिशोध की आग जल रही थी। इसलिए उसने मन में कुटिल विचार करके कहा- मुझे क्षमा करो। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचाता हूँ।

×××××

पुष्पक सेठ अनंतमति को लेकर घर से निकला रास्ते में उससे कामसेना नाम की कुट्टिनी वेश्या के घर ले गया। वहाँ उसे देकर उसने अपनी प्रतिशोध की भावना पूरी की।

कामसेना ने अनंतमति को अनेक प्रलोभन दिये। अनेक

प्रकार से इ़र दिखाया। लेकिन उसका मन तो सुमेरू की तरह अटल था। उसने सोचा-देखो, पाप अभी शांत नहीं हुआ है। न जाने क्या-क्या दिन देखने पडेंगे? पाप का उद्य तो ऐसे ही दुर्दिन दिखायेगा और ऐसे ही कुसंगों में, संकटों में फंसायेगा। जो भी हो मुझे तो मरण के बल पर भी धर्म की, नियम की, व्रत की रक्षा करनी है।

वहाँ अनंतमति ने अन्न-जल का त्याग किया था। उससे वह कामसेना समझ गई कि वह हवा में तीर चला रही है। उसें महिलाओं की पहिचान थी। वह यह भी समझ गई कि अनंतमति ऐसी वैसी महिला नहीं है। धर्मात्मा है। न केवल धर्मात्मा बल्कि दृढ़श्रध्दानी महिला है। उसने उसे दुःखी करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। वह तो चाहती थी, यह एक बार भ्रष्ट हो जाये तो इसके द्वारा बहुत धन कमायेगी। वह अपूर्व सुंदरी थी। परंतु कर्मगति विचित्र होती है। उसमें चाहा हुआ कभी नहीं होता।

यह कर्म की ही लीला है कि राजपरिवार में जन्मी अनंतमति आज वेश्या के घर कष्ट भोग रही थी। भला हो धर्म का और उसकी दृढ़ता का उसने अपनी दृढ़ता नहीं छोड़ी थी, न ही धर्म छोड़ा था। न ही परिणामों में विचलितपना आने दिया, न परिणाम मलीन किये। आये हुए पाप के उदय को शांतभाव से सहती रही। उसने उस कामसेना वेश्या से भी कहा-

हे माताजी, आप इस पाप के काम को छोड़ दीजिए। धर्म की शरण लेकर पाप को धो दीजिए। पूर्व पापकर्म के कारण आज हम स्त्रीपर्याय में है। स्त्रीपर्याय के नाश के लिए धर्म ही एकमात्र शरणभूत हैं, उपाय है। आप अपना उद्धार कीजिए। मुझसे तो ऐसे काम के बारे में तो सपने में भी मत सोचिए। आपकी सोंच मेरे द्वारा कभी पूरी नहीं होगी। मुझे तो पिता के घर या किसी आर्यिका के पास छोड़ दीजिए।

कामसेना ने सोचा यह बिना खाये-पिये है, मर जायेगी तो पाप लगेगा। बदनामी होगी। राजा को पता चलेगा तो न जाने क्या सजा मिलेगी। ड़रकर उसे उसके घर छोड़ने के लिए कहकर ले गई।

×××××

कामसेना घर से तो यह सोचकर निकली की उसे उसके घर पहुँचा दूंगी। जिसके बदले उसे इनाम मिलेगा। परंतु उसे ड़र लगा कि कहीं अनंतमति ने सच बता दिया तो इनाम के बदले मौत मिलेगी। उसने रास्ते में विचार बदला। वह उसे दूसरे राज्य में ले गई। जहाँ का राजा सिंहराज था।

सिंहराज राजा भोगी, लम्पटी था। उसका सारा समय विषयभोगों में ही निकलता था। उस राजा के बारे में उसने पूर्व में सुना भी था। वह लेकर राजा के पास गई। सिंहराज उसे देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने ऐसी सुंदरी पहले नहीं देखी थी। उसे देखते ही उसने कामसेना को मुंहमांगा इनाम देकर बिदा किया।

अनंतमति के पास आकर कहने लगा- मैं तुम्हे पटरानी का पद देता हूँ। मैं राजा हूँ। तुम भी राजकुमारी हो। हमारा संबंध योग्य है। मुझे स्वीकार करो। आप जैसी सुन्दर कन्या मैंने आज तक नहीं देखी है। मैं रानी नहीं, महारानी बनाकर रखूंगा। एक बार हाँ कह दो। मैं ठाट-बाट से विवाह कर आपको सबके सामने अपनी धर्मपत्नी बनाऊँगा, पटरानी का पद दूँगा।

अनंतमति सोचने लगी- हाय रे कर्म, जहाँ भी जा रही हूँ, वहाँ सभी चमड़ी के स्वादी ही मिल रहे हैं। कभी कोई धर्मात्मा से संयोग होता तो धर्म की सुविधा होती। चैन की सांस लेती। इन पापियों से मुक्त होती तो शायद आनन्द की सांस लेती। लेकिन कर्म का लेखा किससे मिटा है? इसने तीर्थंकरों को भी नहीं छोड़ा है। मैं तो साधारण महिला हूँ। न जाने कितना बड़ा पाप किया था, पूर्वजन्मों में जो नष्ट होने का नाम ही नहीं ले रहा है। इस पापी

राजा को क्या जवाब दूँ? लेकिन मौन रहने से भी काम नहीं सरेगा। उसने हिम्मत जुटाकर कहा-

हे भाई- यथा राजा तथा प्रजा- यह कहावत आपने सुनी होगी। तुम जैसे राजा लोग पराई स्त्री देखकर पाप की सोचते हो, यदि सामान्य प्रजा ऐसा करे तो उसमें उसका क्या दोष है? खुद करो तो पाप नहीं और प्रजा करें तो पाप है।

तुम नीति पर रहोगे तो प्रजा का न्याय कर पाओगे। खुद ही अन्यायी बनोगे तो प्रजा न्याय के लिए किसकी ओर देखेगी? सोचो, धर्म तो राजा के आश्रय से रहता है, टिकता है। तुम ही अधर्मी बनोगे तो तुम्हारे राज्य में धर्म निराश्रित होकर नष्ट हो जायेगा।

मैं बालब्रह्मचारिणी हूँ। मुझे अपनी बहन समझ सकते हो। पत्नी के रूप में देखने का विचार भी मत करना।

वासना का विचार कर बुद्धि को गंदा मत करो। कितने पुण्य की बात है- मनुष्य हो, मनुष्यों के राजा हो। धर्म के मार्ग पर चलकर अपना और प्रजा का भी कल्याण कर सकते हो। धर्म का निमित्त बनकर निरंतर पुण्यलाभ ले सकते हो। धर्मात्माओं से वात्सल्य रखो, उनकी शरण लो, उनकी रक्षा करो। मैं तुम्हारी बहन के समान हूँ। मैंने जिस दिन ब्रह्मचर्य का नियम लिया था, उसी दिन से मुझे संसार के सभी पुरूष पिता, भाई और पुत्र के समान हो गए हैं।

मुझ जैसी अबला की रक्षा करो। मुझे मेरे पिता के घर या किसी आर्यिका के पास छोड़ दो।

सिंहराज के पापी मन में न दया उत्पन्न हुई, न पापवासना कम हुई। सच है कि **तीव्र कषायी को उपदेश नहीं देना चाहिए।** उस सिंहराज को धर्म से भी ड़र नहीं लगा। उसने अनंतमति के साथ जबरदस्ती करनी चाही। तब अनंतमति जोर-जोर से विलाप करने लगी। तभी वही वनदेवी आई। उसने सिंहराज को खूब खरी-खोटी सुनाई। उसने कहा-

इस सती को आँख उठाकर भी मत देखना। यदि इसको छुयेगा तो तेरा सर्वनाश कर दूँगी। देवी ने उसे भंयकर दण्ड दिया। उसे खूब मार लगाई। देवी की मार से उसके उग्र, भयंकर स्वरूप से ड़रे हुए सिंहराज ने सेवकों को बुलाकर उसे उसी समय वन में छोड़कर आने की आज्ञा दी। सेवक आज्ञानुसार उसे जंगल में छोड़कर आ गए।

×××××

जंगल में अनंतमति सोच रही थी- कहाँ जाऊँ? रास्तों का पता नहीं। दिशाओं का पता नहीं। पाप का उदय भोगे बिना छूटेगा नहीं। यह सोच वह पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर, तत्त्वचिंतन कर शुद्धात्मभावना के साथ उस रात वहीं रही। सुबह होने पर धर्ममय चिंतन के साथ वहाँ से चल दी। जिधर रास्ता दिखा, उधर वह चल दी। जो भी फल मिले उसे खाया। झरनों का प्रासुक जल पिया।

ऐसे अनेक जंगल, पहाड़, झरनों को पार करती हुई, वह शहर के पास आई। जंगलों के साथ उसके पाप का भी अंत हो चुका था। उसे नगर क्या दिखा? मानो उसे पुण्य का सुप्रभात ही दिखा।

वह उस नगर की ओर चली। नगर के बाहर बनी एक जैन नसियाँजी थी। वहाँ **पद्मश्री आर्यिका** ठहरी हुई थी। अनंतमति को लगा। पाप का उदय समाप्त हुआ है, तभी तो आर्यिका जी के दर्शन हुए हैं।

उसने आर्यिका के दर्शन किए। अपनी शरण में लेने का निवेदन किया।

पद्मश्री आर्यिका ने पूछा- बेटी, तुम कौन हो?

इसके उत्तर में अनंतमति ने अपने जीवन की सारी घटनाएं परिचय के साथ बतायीं।

आर्यिका ने कहा- बेटी, पाप का उदय सबको विचलित करता है, धन्य हो तुम, तुमने ऐसे तीव्र पाप के उदय में भी हिम्मत नहीं हारी। अब तुम्हारें पाप का उदय समाप्त हुआ है। आप निर्भीक होकर धर्म में मन लगा सकती हो। हमारें साथ रहकर अपने नियम का पालन करो। धर्म की साधना, आराधना करो।

उस दिन से वह आर्यिका के साथ रहकर धर्म की साधना करने लगी।

×××××

इधर अनंतमति के पिता-माता को अनंतमति के अचानक खो जाने से अपार दुःख हुआ। उन्होंने उसे कई जगह खोजा, पर उसका कहीं पता नहीं लगा।

उन्हें सारा घर-परिवार श्मशान जैसा लगने लगा। वे उदास रहने लगे। उन्होंने सारा संसार सुना-सुना लगता था। उन्हें घर में एक-एक क्षण बहुत लम्बा लगने लगा। उनका मन घर में नहीं लगता था, इसलिए वे उदास होकर घर से निकले। परिवार के लोगों ने प्रियदत्त को रोका, पर उन्होंने किसी की नहीं सुनी। उन्हें जाता देख परिवार के लोग भी उनके साथ गए।

प्रियदत्त आदि ने अनेक सिद्धक्षेत्रों, अतिशयक्षेत्रों और निर्वाणक्षेत्रों की वंदनाएं कीं। अनेक तीर्थक्षेत्रों की वंदनाएं करके वे अयोध्या पहुँचे। अयोध्या में प्रियदत्त का साला जिनदत्त रहता था। वे जिनदत्त के घर गए। जिनदत्त ने सबका बड़े प्रेम से स्वागत किया। प्रियदत्त से अनंतमति के बारे में सुनकर जिनदत्त के परिवार को बहुत दुःख हुआ।

दूसरे दिन सुबह नहा धोकर जिनदत्त मंदिर गए। उनकी पत्नी ने पद्मश्री आर्यिका को आहार के लिए प्रार्थना की थी। पद्मश्री के पास जो कन्या थी, उसे कुछ समय पहले बुलाया और कहा-

बेटी, थोड़ा पहले आकर चौक में रांगोली बना देना।

कन्या पहले आकर रांगोलियों से चौक पूर कर चली गई। प्रियदत्त की नजर चौक की रांगोली पर गई, तब उनको अनंतमति की याद आई। उनकी आँखों से टपाटप आँसू गिरे। उन्होंने जिनदत्त की पत्नी से तुरन्त पूछा - यह रांगोली किसने बनाई है। मुझे उससे जल्दी मिला दो।

जिनदत्त की पत्नी ने बताया-

नसियाँजी में पद्मश्री नाम की आर्यिका आई हुई है। उनके पास एक दो दिन पूर्व ही कहीं से कोई ब्रह्मचारिणी कन्या आकर रहने लगी है। आज पद्मश्री आर्यिका आहार के लिए घर आनेवाली है। उनके पास रहनेवाली बालिका से चौक में रांगोली बनाने के लिए कहा था, वही बालिका रांगोली बनाकर गई है।

प्रियदत्त ने कहा-मुझे अभी इसी समय उससे मिलवा दो। प्रियदत्त के कहने पर सभी नसियाँजी में गए। आर्यिका माता के दर्शन किए। अनन्तमति पर दृष्टि पड़ते ही सभी की आँखों से आँसुओं की धाराएं निकलीं। सब अनन्तमति से गले मिले। उसकी आपबीती की करूणकथा सुनी।

पुत्री के मिलने से प्रियदत्त की खुशी की कोई सीमा नहीं थी। सभी प्रसन्न हो गए। परस्पर बातचीत करने के बाद प्रियदत्त ने कहा-

बेटी अनन्तमति घर चलो।

अनन्तमति ने हाथ जोड़कर कहा-

पिताजी, मैंने संसार का रूप देख लिया है। मन वैराग्यरस से भरा हुआ है। अब कहीं जाने-आने का मन नहीं है। सिर्फ पञ्च परमेष्ठी देवशास्त्रगुरू के शरण में रहने का मन है। सांसारिक कष्टों को देखकर ड़र गई हूँ। मेरी आप से प्रार्थना है कि मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दीजिए।

बेटी की बात सुनकर प्रियदत्त को अचम्भा हुआ। वे दुःखी होकर कहने लगे-

बेटी, दीक्षा का मार्ग बड़ा कठिन है। तुम्हारा शरीर कोमल है। इस राह पर कठिनाइयाँ देखकर मेरा निवेदन है कि अभी घर चलो, कुछ दिन घर रहकर धर्मसाधना करो। बाद में दीक्षा ले लेना।

अनन्तमति संसार से पूर्ण उदास हुई थी। उसने कहा- पिताजी, आयु का क्या भरोसा? कौन-सा दिन अन्तिम दिन है, कोई नहीं जानता।

मेरा मन संसार से पूर्णरूप से उदास हो चुका है। मैं घर ही तो थी। कर्म ने मुझे कहाँ-कहाँ भटकाया ? कैसे-कैसे दिन दिखाए ? अब मैं कर्म के अधीन नहीं रहना चाहती। आप तो मुझे दीक्षा की अनुमति दिजिए।

बेटी की दृढ़ता देखकर प्रियदत्त ने कहा- बेटी, मोही मन नहीं मानता है, वीतरागता का मार्ग प्रशस्त मार्ग है। उस पर चलने पर ही कष्टों व कर्मों का अन्त होता है। बेटी, इस मार्ग पर कठिनाइयाँ देखकर विचलित मत होना। इस पर अनन्तमति बोली-

पिताजी, आप विश्वास कीजिए मैं कर्मों पर विजय पाकर ही रहूँगी। क्षणभर के लिए भी विचलित नहीं होऊंगी। इसके बाद अनन्तमति की दीक्षा की विधि सम्पन्न हुई। सबने उसका अनुमोदन किया।

आर्यिका अनन्तमति ने कठोर तपस्या की। उसने एक-एक माह के उपवास आदि कर कर्मों को क्षीण करके संन्यास मरण किया।

देह के साथ उसकी स्त्रीपर्याय का नाश हुआ। वह सहस्रार स्वर्ग में देव बनी। वह देव पर्याय से निकलकर शीघ्र ही मोक्षपद प्राप्त करेगी।

×××××

9. बारहमासा सीतासती

यति नयनानन्द कृत सीता सती के वनवास सम्बन्धी दुःख संयुक्त अद्भुत शील प्रभावना का बारहमासा

।। रागनी हिंडोल, चाल श्रवण की मल्हार ।।

(जैसे – नदिया किनारे बेला किन बोया)

इसकी चाल में सीता वचन-

बिन कारण स्वामी क्यों तजी ।। बिनबै जनक दुलारी ।।

बिन कारण स्वामी क्यों तजी ।। टेक ।।

१. आषाढ़ मास

आषाढ़ घुमड़ि आए बदरा, घन गरजै चहुँ ओर ।

निर्जन बन मैं स्वामी तुम तजी, बैठन कूं नहीं ठौर ।। बिन कारण.... ।।१ ।।

क्या हम सत गुरू निंदियों, क्या दियौ सतियन दोष ।

क्या हम सत संजम तज्यौ, किस कारन भए रोस ।। बिन कारण.... ।।२ ।।

क्या पर पुरूष निहारकै, परभव कियो है निदान ।

क्या इस भव इच्छा करी, क्या मैं कियो अभिमान ।। बिन कारण.... ।।३ ।।

कटुक वचन स्वामी नहीं कहे, हिंसाकरमन कीन ।

परधन पर चित नहिं दियो, क्यों मन भयों है मलीन ।

बिन कारण स्वामी क्यो तजी, बिनबै जनक दुलारी ।। बिन कारण.... ।।४ ।।

२. श्रावण मास

श्रावण तुम संग बनविषै विपत सही भगवान ।

पाय पयादी वन-वन मैं फिरी तनक न राखी मोरी कान । बिन कारण.... ।।१ ।।

स्वसुर दिसोटा जिस दिन तुम दियौ, कियौ भरत सरदार ।

ता दिन विकल्प नहिं कियो, तजि संपति भई लार ।। बिन कारण.... ।।२ ।।

जनक पिता की मैं लाड़ली, मात विदेहा की बाल ।

भ्रात प्रभामंडल स बली, विपता भरूँ बेहाल ।। बिन कारण.... ।।३ ।।

३. भादौं मास

भादौ पण्डित पूछियों, पण्डित कही है विचार।
कन्या के कारण राजा तुम मरो दीनी तुरत विसार।। बिन कारण....।।१।।
गाड़ी धारि मन्जूष में, जनक नगर वन बीच।
हल जोतत किसान के लई करम ने खींच।। बिन कारण....।।२।।
मरण भयो नहीं ता दिना, करम लिखे दुख एह।
करी नजर राजा जनक ने पाली पुत्र सन्देह।। बिन कारण....।।३।।
जनक स्वयंवर जब कियो लिये सब भूप बुलाय।
दरशन करि थारे वश भई, पड़ी चरण बिच आय।। बिन कारण....।।४।।

४. कुंवार मास

क्वार मास फिर गए भूप सब, मो कारण कियौ युद्ध।
बहुत बली मारै रण विषै ठायौ धनुष प्रबुद्ध।। बिन कारण....।।१।।
खरदूषण के युद्ध में, आयौ रावण दौड़।
छलकर धोखा प्रभु तुमकूँ दियौ, नाद बजायौ घनघोर।। बिन कारण....।।२।।
जल्दी पधारो प्रभु मैं गिर गयौ, तुम जानी भगवान।
कष्ट पड्यौ जी मेरे भ्रात पै उपज्यौ मोह महान।। बिन कारण....।।३।।
मोहि मेली पात बटोरि कै, करम लिखी कछु और।
आप पधारे अपने वीर पै, आनयौ रावण चौर।। बिन कारण....।।४।।
चीर दुपट्टा करिकैं ले गयौ मोकूं अचक उठाय।
देखी नाथ जटायु ने, क्या तुम जानत नाहिं।। बिन कारण....।।५।।
झपट-झपट बाके सिर हुऔ, मुकट खसोट्यौ मूँछ उपारि।
मारि तमाचा डार्यौ भूमि में, पंछी खाई जी पछार।। बिन कारण....।।६।।
लछमण तुमहिं निहारिकै, बात कही करि गौर ।
बिनहिं बुलाए आए भ्रात क्यों, है कछु कारण और ।। बिन कारण....।।७।।
काहू छलिया नै ये कछु छल कियो, कै कछु कर्म चरित्र।
नाहिं पिछान्यौ जावै युद्ध में, कौन है बैरी कौन है मित्र।। बिन कारण....।।८।।

५. कार्तिक मास

कार्तिक तुरत पठाइयौ, उलटि तुम्हैं थारे भ्रात।
बिना ही बुलाये आये आप क्यूं, शत्रु करेंगे उतपात।।बिन कारण....।।१।।
आएजी तुरत रक्षा करनकूं हममें धेरि प्रभु प्यार।
बिखरे ही पाए पत्ते बेल सब, खाई आप पछार।।बिन कारण....।।२।।
भ्रात हठाई आके मूर्छा, सकल शत्रु रण जीत।
पर्‌यौ जटायु देख्यौ सिसकतौ, श्रावन धर्म पुनीत।।बिन कारण....।।३।।
जन्म सुधार्‌यौ वाकौ आपने, मो बिन पायौ न चैन।
डारी ढूँढी दोऊ मिल वन विषैं, रोय सुजाए तुम नैन।।बिन कारण....।।४।।
धीर बँधाई लछमन भुजबली, बहुत करी थारी सेव।
विपति कटैगी प्रभु समता धरे, यदपि न माने थे तुम देव।।बिन कारण....।।५।।
ल्याऊँ काढ़ि पाताल से, ल्याऊँ पर्वत फोर।
खबर मिले तो सब कुछ मैं करूँ, चीर बगाऊँ थारा चोर।।बिन कारण....।।६।।
फेरि मिले जी प्रभु सुग्रीव सै, साहसगति दियौ मारि।
पाय सुतारा ल्यायौ हनुमान कूँ, ढूंढन भेज्यौ मोहि सरकार।।बिन कारण....।।७।।

६. अगहन मास

अगहन खबर मँगवाय कै, मो ढिंग भेज्यौ हनुमान।
कूदि समन्दर गयो गढ़ लंक में, भेजी तुम मुन्दरी भगवान।।बिन कारण....।।१।।
तुम बिन बैठी रोऊँ बाग में, राम ही राम पुकार।
अन्न लियौ न पानी मैं पियौ परवश हुई थी लाचार।।बिन कारण....।।२।।
मुख धुलवायौ हनुमान ने, तुमरी आज्ञा के परवान।
प्राण बचाए मेरे विपत में, करवायों जल-पान।।बिन कारण....।।३।।
तुरत ही भेज्यौ तुमरे चरण में, चूड़ामणि दियो तारि
गाय फँसी है गाड़ी गार में, खैंचि निकारो जी भरतार।।बिन कारण....।।४।।

७. पौस मास

पौस चढ़े जी गढ़ लंक पै, युद्ध कियौ भगवान।
गारत किये लाखों सूरमा, मार कियौ घमसान।।बिन कारण....।।१।।
काट्यौ सिर लंकेश को, लक्ष्मीधर वर वीर।
कूद पड़े जी जोधा लंक में, लवण समुन्दर चीर।।बिन कारण....।।२।।
ल्याए तुरत छुड़ाय के, अशरण शरण अधार।
इतनी करि एसी क्यों करी, घर से दई क्यूँ निकार।।बिन कारण..
पग भारी जी गिर-गिर मैं पड़ूँ, शरण सहाय न कोय।
अपनी कही न मेरी तुम सुनी, बहुत अन्देशा है मोहि।।बिन कारण..

८. माघ मास

माघ प्रभु जी पाला पड़ रहा, सोने को नहिं सेज।
ओढ़न कूँ नहिं काँबली, दई क्यूँ विपति में भेज।।बिन कारण....।।१।।
सिंह धडू कै कूकैं भेड़िए, मारे गज चिंघाड़।
थर-थर काँपे थारी कामनी, स्यालिन रही है दहाड़।।बिन कारण....।।२।।
नाचैं भूत पिशाच गण, रूंड़ मुंड विकराल।
सनन-सनन सारा बन करे, काँटे चुभें जी कराल।।बिन कारण....।।३।।
कित बैठूँ लेटूँ कित प्रभु, पार खवास न कोय।
अन्न करूँ ना पानी मैं पिऊँ, बालक कूँ दुख होय।।बिन कारण....।।४।।
तुम सब जानो प्रभु मेरे हालकूँ, अष्टम बलि अवतार।
तुम सूरज में पटबीजनी क्या समझाऊँ भरतार।।बिन कारण....।।५।।
समरथ ह्वै प्रभु क्यौं कसी, प्रगट कियो क्यों न दोष।
धोखा दे क्यों धक्का दियौ, आवे नहीं सन्तोष।।बिन कारण....।।६।।

९. फागुन मास

फागुन आई जी अठाइयाँ, अपने करम कूँ दे दोष।
ध्यान धरयो भगवान को, बैठी रही मन मोस।।बिन कारण....।।१।।
अरज करें प्रभु दरबार में, ममता भाव निवार,
तुम ही पिता हो प्रभु तुमही, मात हो तुम ही भाई हमार।।बिन कारण....।।२।।
निर्धन के प्रभु तुम धनी, निर्जन के परिवार।
इक बार राम मिलाइयो, दीजियो दोषनुं तार।।बिन कारण....।।३।।
तुम ही राजा प्रभुजी धर्म के, परजा हमकूँ लगायो दोष।
शील में मेरे सब संशय करें, राम रूसाये हो गये रोष।।बिन कारण....।।४।।
त्याग दियो हम रामजी, त्याग दियो है सब संसार।
गर्भवती हूँ कर्म संयोग से, इससे हुई हूँ लाचार।।बिन कारण....।।५।।
जिस दिन प्रभु पल्ला पाक हो, मिले मोही भरतार।
भरम मिटा के धारूँ धरम को, त्यागूँ सब संसार।।बिन कारण....।।६।।
राम मनावें तौ भी ना मनूँ, करि जाऊँ बन को बिहार।
कर पै श्री रघुवीर के चोटी, धरूँगी उपार।। बिन कारण....।।७।।
भावै यों सती जी बैठी भावना, ध्यावें पढ़ नवकार।
पाप घट्यो प्रगट्यो पुन्यफल, सुन लई तुरत पुकार।।बिन कारण....।।८।।
पुंडरीक पुर नगर का वज्रजंघ भूपाल।
आ गये पुन्य-संयोग ते, गज पकड़त वाही काल।।बिन कारण....।।९।।
ढूंढ़त गजपति वन विषैं, भनक पड़ी बाके कान।
कोई सतवन्ती रोवे वन विषैं, कि ये सताई जी अज्ञाने।।बिन कारण....।।१०।।
दोष लगायौ कैसे पूँछिये, गज तजि उतरो धीर।
विनय सहित दुख पूंछन चल्यौ, आवै जैसे भैना घर के वीर।।बिन कारण....।।११।।
तुम हो बहन मेरी धर्म की, विपत कहो समझाय।
मात-पिता पति परिवार से, दूँगा बहन मिलाय।।बिन कारण....।।१२।।
जनक पिता की मैं हूँ लाड़ली, भ्रात भामण्डल धीर।
स्वसुर हमारे दशरथ नृपबली, भर्तार श्री रघुवीर।।बिन कारण....।।१३।।

रावण हरि करि ले गयो, दोष धरै संसार।
शील में मेरे सब संशय करें दीनी राम निकार।।बिन कारण....।।१४।।
सुनत कथा जी छाती थरहरी, टपके असुवन धार।
हाय रे कर्म ऐसा क्यों कसी, कियो तुरत उपगार।।बिन कारण....।।१५।।
देव धरम दिये बीच में, बहन बनाई तत्कार।
पुन्डरीकपुर ले गयो, करके गज असवार।।बिन कारण....।।१६।।
पुत्र भये दो लव कुश बली, शिवगामी अवतार।
वज्रजंघ रक्षा करी पाल किये हुशियार।।बिन कारण....।।१७।।

१०. चैत मास

चैत मास नारद मुनि मिले, चरण पड़े दोऊ वीर।
राम लखन की सी सम्पदा, हूज्यो थारे बरबीर।।बिन कारण....।।१।।
पूछियो अपनी मात से रामलखन माता कौन?
टप-टप लागे आँसू टपकने, मार्‌यौ मन धार्‌यौ मौन।।बिन कारण....।।२।।
नारद मुनि समझाइयो, पिछले सकल वृतान्त।
सुनत उठे जोधा खडग ले, बैठ विमान तुरन्त।।बिन कारण....।।३।।
घेरि अजुध्या रणभेरी दई, कांपे सुरग पाताल।
सोच भयो श्री रघुवीर को, आये कौन अकाल।।बिन कारण....।।४।।
निकसे दोऊ भ्राता युद्ध कूँ, खूब मचाए घमसान।
रामलखन घबरा दिये, पटक्यो रथ काटे बाण।।बिन कारण....।।५।।
हल मूशल ठाये राम ने, लछमन चक्र सम्भार।
सात वार किये तान के, वृथा गये सातों बार।।बिन कारण....।।६।।
हम हरि बल अरूक्ये किधों उपज्यों सोच अपार।
आगबबूला होके फिर लियो, चक्र प्रलय करतार।।बिन कारण....।।७।।
तब नारद आये भूमि में राम लखन ढ़िग जाय।
बात कही समझाय के, किस पे कोपे रघुराय।।बिन कारण....।।८।।

पुत्र तुम्हारे दोऊ भुजबली, लव अंकुश बलवन्त।
मात विपति सुनि कोपियो, भाष्यो सकल वृतान्त।। बिन कारण.... ।।९।।
भर आई छाती श्री रघुवीर की, रणकूँ दियो है निवार।
आय परे सुत चरण में, लीने दोऊ पुचकरि।। बिन कारण.... ।।१०।।
बिन कारण स्वामी क्यों तजी ? बिनबै जनक दुलारी।।

११. बैसाख मास

माह बैसाख बसन्त ऋतु, सुनि सीता जी की सार।
भाग पड़े हनुमत से बली, ल्याये करि मनुहार।। बिन कारण.... ।।१।।
बज्रजंघ आयो धूमसें, ल्याये सब परिवार।
राम कहें मैं आने दूँ नहीं, सीता दई मैं निकार।। बिन कारण.... ।।२।।
जो आवैं तो आवो इस तरह, कूदे अगनि मझार।
देय परीक्षा अपने शील की, हो कुण्ड तयार।। बिन कारण.... ।।३।।
सीता सती प्रण धारियों, होवे कुंड तैयार।
अगनि जला दो देरी मत करो, सौ योजन विस्तार।। बिन कारण.... ।।४।।
साड़ी कसि त्यारी करी, अङ्ग ढक्यो बड़ भाग।
कुँड खुदायो मन भावतो, चेतन कर दई आग।। बिन कारण.... ।।५।।
जाय चढ़ी ऊँचे दमदमें, देखे सब संसार।
सत मूरत सूरत मोहनी, मन में हरष अपार।। बिन कारण.... ।।६।।
देखें सुरगों के देवता, देखें भवन बतीस।
चन्द्र सूरज देखें ज्योतिषी, देखें भवन पतीस।। बिन कारण.... ।।७।।
देखें सब विद्याधरा, देखें गण गन्धर्व।
कमर कसी फौजें आ पड़ी, देखें राजा सर्व।। बिन कारण.... ।।८।।
अगनि लपट उठी गगन लो, तड़ तड़ाट भयो घोर।
कहत प्रजा श्रीराम सों, क्यों प्रभू भये हो कठोर?।। बिन कारण.... ।।९।।
वज्र बचै ना ऐसी अगन में, फाटे धरणि पाताल।
पर्वत फटि मठ गिरे पड़े, हे प्रभु कीजिये टाल।। बिन कारण.... ।।१०।।

राम खड़ग सूंत्वौ हाथ में, मत कोई कहो जी बनाय।
आज्ञा माने मेरी जानकी, देवे भरम मिटाय।।बिन कारण....।।११।।
हुकम दियो रघुवीर ने, शील परीक्षा देय।
नातर क्यों आई तू यहाँ, परजा करे है सन्देह।।बिन कारण....।।१२।।
पंच परम गुरू बंदिकैं, करि पति कूँ परनाम।
छिमा कराई सब जीव सौं, देखे लछमन राम।।बिन कारण....।।१३।।
पुत्र जुगल छोड़े रोवते, सोहे शची समान।
हरष भरी सतवन्ती महा, बोली वचन महान।।बिन कारण....।।१४।।
जो परपुरूष निहारि के, मैं कछु कियो है कुभाव।
भस्म अग्नि मोहि कीजियो नातर जल होय जाय।।बिन कारण....।।१५।।

१२. जेठ मास

जेठ तपै सूरज आकरो, नीचे अगनि प्रचण्ड।
आस पास जल थल क्यार सब, सूकी गये बनखंड।।बिन कारण....।।१।।
कूद पड़ी जलती अगनि में, शांति भई ततकार।
उभरे कमल आकाशलो, लीनी अधर सहार।।बिन कारण....।।२।।
जल लहरावे बोले हँसनी, कर रहि मीन कलोल।
छत्र फिरै जो उसके शीश पै, इन्द्र चंवर रहे ढोर।।बिन कारण....।।३।।
शीतल मंद सुगंध जुत, मीठी-मीठी चलेजी बयार।
बरषै मणि अमृत कणी, देव करें जै जैकार।।बिन कारण....।।४।।
धन्य सती धन सतवती, धन धन धीरज एह।
धृग-धृग हम उनकूँ करें, जिन के मन संदेह।।बिन कारण....।।५।।
बिन कारण स्वामी क्यों तजी बिनवै जनक दुलारी।।

बारह भावना सीताजी भावे है जोग धारण के लिये, कमल में बैठी विचार करे हैं।

सिता भावे मन में भावना, यह संसार अनित्य।
धर्म बिना तीनों लोक में शरण सहाई ना मित्र।। बिन कारण....।।१।।
उलट पुलट चाले रहट-सा, ये संसारी चक्र।
एक अकेला भटके आत्मा, क्या पशु पंछी अरु क्या मानुष।। बिन कारण....।।२।।
ना कोई जग में आपना, ना हम काहू के मीत।
अशुचि अपावन तन विषैं, करम करे विपरीत।। बिन कारण....।।३।।
संवर जल बिन ना बुझे, तृष्णा अगन प्रचण्ड।
कर्म खपाये बिन ना खपे, झटके सब ब्रह्माण्ड।। बिन कारण....।।४।।
दुर्लभ स्वपर विचार है, कर्म न डारियों भर्म।
दुर्लभ बोध जगत में, दुर्लभ श्री जिन धर्म।। बिन कारण....।।५।।
परवश भोगी वेदना, स्ववश सही नहिं रंच।
सास्वत सुख जासो पावती, लई करम ने बंच।। बिन कारण....।।६।।
अब मैं सुख वदन सहूँ, कीनी धरम सहाय।
परतिज्ञा मैं पूरी करूँ, मोह महा दुख दाय।। बिन कारण....।।७।।
राम कहें प्यारी चल धरूँ, ल्या भुज में भुज डार।
पांडि शिखा कर पै धरि दई, त्याग्यौ हम संसार।। बिन कारण....।।८।।
तुम त्यागी निरदोष कूँ हम त्यागे लखि दोस।
करके छिमा मैं संजम लियौ, करियौ मत अफसोस।। बिन कारण....।।९।।
गई सती जी बनखण्ड कूँ, भई अरजिका शीर।
उग्ररूप तप वो करे, सब दुख सहे शरीर।। बिन कारण....।।१०।।
पूरी करि परयाय कूँ, अच्युत सुरग मँझार।
इन्द्र भईजी पुण्य संयोग से, भोगे सुख अपार।। बिन कारण....।।११।।

××××

10. अंजना सती का जीवन

(लावनी)

पतिव्रता एक नार अंजना राजा महेन्दर की लड़की।टेक।।
अशुभ करम पूरब ले आयो दासी संग बन-बन फिरती
मान सरोवर तट के ऊपर सिंह जड़ी के हुए पती।। १।।
चकवा-चकवी वियोगिन देखे तब त्रिया की सूरत धरी।
जभी पवन जी ने आधी रैन को राह लई अपने घर की।। २।।
गुप्त त्रिया से जाय महल में बात कही है तन मन की।
हाथ जोड़ कर कहे अंजना सुनो नाथ मेरे प्राणपती।। ३।।
कुछ निशानी मुझ को दीजो सासु पूछे केतुमती।
कड़ा मुद्रिका दिया निशानी राह लई है कटघर की।। ४।।
गर्भवती जब देखी अंजना सासु पूछे केतुमती।
आधी रात को विमान बैठकर आये मेरे प्राणपती।। ५।।
मेरी न मानो दासी से पूछो, वो तुम से कह दे सच्ची।
जा दिन से वरमाला ड़ाली वा दिन छूटा तेरा पती।। ६।।
अब कैसे तुझे गर्भ रहा है? पुत्र बुलायो लंकापति।
हाथ जोड़कर कहे अञ्जना, सुनो सासु मेरी केतुमती।। ७।।
कड़ा मुद्रिका दिया निसानी निकल गये मेरे प्राणपती।
तू झूठी तेरी दासी झूठी वो दूती तेरे पक्की।। ८।।
कुल को कलंक लगाया पापिन जामें फर्क न एक रत्ती।
दोनों को दिया देश निकाला, दासी संग बन-बन फिरती।। ९।।
माता-पिता घर गई अञ्जना, वहाँ पर देखी गर्भवती।
बिन आदर वो घर से निकाली, दासी संग बन-बन फिरती।। १०।।
निराश होकर गई बनों में, वहाँ पर देखे मुनी जती।
वंदन कर पूरब ले पूछे, कैसे छूटे प्राणपती।। ११।।
कहैं मुनीश्वर सुनो अञ्जना धर्म ध्यान राखो मन में।

चर्म-शरीरी पुत्र होयगा पति मिले थोड़े दिन में।। १२।।
दे उपदेश मुनीश्वर चाले, पुत्र होय तेरे बन में।
सुन्दर मूरत जब देखी पुत्र की तेजी जैसे सूरज में।। १३।।
अञ्जना का एक मामा था आ निकला इस ही बन में।
सती अञ्जना पुत्र सहित, चली जभी मामा संग में।। १४।।
खेलत बालक विमान में से, आन गिरा है परबत में।
टूक-टूक हो गये शिला के अचरज माना है मन में।। १५।।
खेलत बालक मामा देखा, खुशी हुआ अपने मन में।
मामा ने तब प्यार करके उठा लिया है गोदिन में।। १६।।
तन्नूलाल यह देख तमाशा, खुशी हुआ अपने मन में।
चिरंजीव हो यह बालक तेरा, आनंद बरस रहा है मन में।। १७।।

भजन

हे प्रभु तेरे चरणों में आया हूँ मैं जिन्दगी भर तेरे गीत गाता रहूँ
मुझको तेरे सिवा है ना कोई शरण तेरी भक्ति में जीवन लगाता रहूँ।

1. नाथ मेरे इस जीवन में ज्योति जला दीन बन्धू मुझे मुक्ति मार्ग दिखा
लाख चौरासियों में भटकता रहा झूठी माया में यूँ ही अटकता रहा
आसरा मिल गया मुझको पावन प्रभु तेरी पूजा के दीपक जलाता रहूँ।
हे प्रभु.....

2. स्वर्ग–सुख की तनिक भी है चाह नहीं भोग–वैभव की तृष्णा और दाह नहीं
जग के दु:ख की मुझे परवाह नहीं पर न मिलती है शान्ति की राह कहीं
पा लिया मैंने जिनवर तेरा आसरा अष्ट–कर्मों का बन्धन हटाता रहूँ।
हे प्रभु.....

3. चारों गतियों में गोते लगाता रहा अपना दु:ख दर्द सब को सुनाता रहा
अब लगी वीतरागी से सच्ची लगन छोड़ मिथ्या भ्रमण छोड़ मिथ्या भ्रमण
शान्त मूरत प्रभु की है ऐसी भली मैं नमूं जिन–शरण आ के प्रभुजी शरण।
हे प्रभु.....

11. बारहमासा राजुल जी का

मैं लूंगी श्री अरहन्त सिद्ध भगवन्त साधु सिद्धान्त चार का सरना
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। टेक।।

आषाढ़ : सखि आया आषाढ़ घनघोर मोर चहुँ ओर मचा रहे शोर
उन्हें समझाओ। मेरे प्रीतम की तुम पवन परीक्षा लाओ।
है कहाँ बसे भरतार कहाँ गिरनार महाव्रत धार बसे किस
बन में क्यों बाँध मोड़ दिया तोड़ क्या सोची मन में।

दोहा : जा जा रे पपैया जा रे पीतम को दे समझा रे।
रही नौ भव संग तुम्हारे, क्यों छोड़ दई मझदारे।।
क्यों बिना दोष भये रोष नहीं, सन्तोष यही अफसोस-
बात नहीं बूझी। दिये जादों छप्पन कोड़ छोड़ क्या सूझी
मोहिं राखो शरण मंझार मेरे भरतार करो उद्धार क्यों दे
गये झुरना।। निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मैं..

श्रावण : सखि श्रावण सँवर करे समन्दर भरे दिगम्बर धरे सखी क्या
करिये। मेरे जी में एसी आवे महाव्रत धरिये।
सब तजूँ साज श्रृङ्गार तजूँ संसार क्यों भव- मझार में जा
भरमाऊँ फिर पराधीन तिरिया का जन्म न पाऊँ।।

दोहा : सब सुनलो राजदुलारी दुख पड़ गया हम पर भारी।
तुम तज दो प्रीति हमारी कर दो संयम की तैयारी।।
अब आ गया पावस काल करो मत टाल भरे सब ताल महाजल
बरसै। बिन परसे श्री भगवन्त मेरा जी तरसै, मैंने तज दई
तीज सलोन पलट गई पौन मेरा है कौन मुझे जग तरना।।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मैं ...

भादों : सखि भादों भरे तलाब मेरे चित चाव करूँगी उछाह से-
सोलह कारण करूँ दश लक्षण के व्रत से पाप निवारण।
करूँ रोट तीज उपवास पंचमी अकास अष्टमी खास
निशल्य मनाऊँ तप कर सुगन्ध दशमी को कर्म जलाऊँ।।

दोहा : सखि दुद्धर रस की धारा, तजि चार प्रकार अहारा।
करूँ उग्र उग्र पत सारा, ज्यों होय मेरा निस्तारा।।
मै रत्नत्रय व्रत धरूँ चतुर्दशी करूँ जगत से तिरूँ करूँ पखवाड़ा, मैं सबसे क्षमाऊँ दोष तजूँ सब राड़ा।
मैं सातों तत्त्व विचार कि गाऊँ मल्हार तज संसार ते फिर क्या करना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मै....

आसौज (कुँवार) : सखि आ गया मास कुँवार लो भूषण तार मुझे गिरनार।
दे दी आज्ञा मेरे पाणिपात्र अहार की है प्रतिज्ञा ला लो तार ये चूड़ामणि रतन की कणी सुनो सब जनी खोल दो बैनी मुझको उवश्य ही परभात में दीक्षा लैनी।

दोहा : मेरे हेतु कमण्डल लावो, एक पींछी नई मँगावो।
मारा मतना जी भरमावो मत सोते कर्म जगावो।।
है जग में असाता कर्म बड़ा बेशर्म मोह के मर्म है।
धर्म न सूझै इसके वंश अपना हित कल्यान न बूझै।
जहाँ मृग तृष्णा की धूर वहाँ पानी दूर भटकना भूर कहाँ जल भरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मै ...

कार्तिकः सखी कार्तिक काल अनन्त श्री अरहन्त की सन्ता महन्त ने आज्ञा पाली, धर योग तजै भव भोग की तृष्णा टाली सजे चौदह गुण अस्थान स्वपर पहचान तजे मक्का मक्कान महल दिवाली, लगा उन्हें मिष्ट जिन धर्म अमावस काली।

दोहा : उन केवल ज्ञान उपाया जग का अन्धेर मिटाया।
जिनमें सब विम्ब समाया, तन धन सब अथीर बताया।

है अथिर जगत सम्बन्ध अरी मति मन्द जगत का अन्ध
है धंध पसारा मेरे प्रीतम ने सत जान के जगत बिसारा
मैं उनके चरण की चेरी तू आज्ञा दे माँ मेरी है मुझे एक दिन तरन।।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मै.....

अगहनः सखि अगहन ऐसी घड़ी उदय में पड़ी मैं रह गई
खड़ी दरस नहिं पाये। मैंने सुकृत के दिन विरथा यों ही गंवाये। नहिं मिले हमारे पिया न जप तप किया न संयम लिया अटक रही जग में पड़ी काल अनादि से पाप की बेड़ी पग में।।

दोहा : मत भरियों माँग हमारी मेरे शील को लागे गारी।
मत ड़ारो अंजन प्यारी, मै योगिन तुम संसारी
हुए कन्त हमारे जती मैं उनकी सती पलट गई रती तो धर्म नहिं खण्डू मैं अपने पिता के वंश को कैसे भण्डू
मैं मेंडू शील श्रृंगार इन्हें तू तार गये भरतार के संग आभरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मै....

पौस : सखी लगा महिना पौस ये माया मोह जगत से द्रोह के प्रती करावे, हरे ज्ञानावरणी अदर्शन छावै। द्रव्य से समता हरे तो पूरी परै ग्रु सम्बर करे तो अन्तर टूटे, इस ऊँच-नीच कुल नाम की संज्ञा छूटे।।

दोहा : क्यों ओछी उमर धरावै, क्यों सम्पति को बिलगावै।
क्यों पराधीन दुख पावै, जो संयम में चित लावै।।
सखि यों कहलावै दीन क्यों हो छवि छीन क्यों विद्या दीन मलीन कहावै,
दीन क्यों नारि नपुसंक जन्में कर्म नचावै।

वे तजै शील श्रृंगार, रूले संसार जिने दरकार नरक में पड़ना।
निर्नेम नेम बिन हम जगत क्या करना।। मै .....

माघ : सखि आ गया माघ बसंत हमारे कन्त भये
अरहन्त वो केवल ज्ञानी, उन महिमा शील कुशील
की एसी बखानी। दिये सेठ सुदर्शन सूल भई मखतूल
बरसे फूल जय वाणी वे मुक्ति गये। अरू भई कलंकित रानी।

दोहा : कीचक ने मन ललचाया, द्रोपदी पर भाव धराया।
उसे भीम ने मार गिराया, उसने करनी का फल पाया।
फिर महा दुर्योधन चीर हुई दिलगीर जुड़ गई थी।
लाज अति आवै, गयै पाण्डु जुए में हार न पास बसावै।
भये परगट शासन वीर हरी सब पीर बधाई धीर पकर
लिये चरना।।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना। मै.....

फागुनः सखि आया फाग बड़ भाग तो होरी त्याग अठाई लाग के
मैंना सुन्दरि, हरा श्रीपाल का कुष्ट कठोर उदम्बर।
दिया धवल सेठ ने डार उदधि का फार तो हो गए
पार वे उस ही पल में अरू जा परणी गुणमाल न डूबे जल में।

दोहाः मिली रैन मंजूषा प्यारी, जिन ध्वजा शील की धारी।
परी सेठ पै मार करारी, गया नर्क मैं पापाचारी।।
तुम लखो द्रोपदी सती दोष नहिं रती कहें दुर्मती पद्म के
बन्धन हुआ घात को खण्ड जरूर शील इस खण्डन।
उन फूटे घड़े मझार दिया जल ड़ार तों वे आधार थमा जल
झरना।।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।। मै..

चैतः सखि चैत में चिन्तन करे न कारज सरे शील से टरे
कर्म की रेखा मैंने शील से भील को होता जगत गरू देखा।
लखि शील में सुलसां तिरी सुतारा फिरी स्वलाखी करो

श्री रघुनन्दन अरू मिली शील परताब पवन को अन्जन।।

दोहा : रावण ने कुमति उपाई, फिर गया विभीषण भाई।
छिन में जा लंका गमाई, कुछ भी नहीं पार बसाई।।
सीता सती अग्नि में पड़ी तो उस ही घड़ी वह शीतल पड़ी
चढ़ी जल धारा खिल गये कमल भये गगन में जय जय कारा।
पद पूजे इन्द्र धर्णेन्द्र भई शीतेन्द्र।
श्री जैनेन्द्र ने ऐसा बरना।
निर्नेम नेम बिन हमें क्या करना।। मै .....

बैशाख : सखि आई बैशाखी भेष लई मैं देख ये उरध रेख पड़ी
मेरे कर में, मेरा हुआ जन्म यूँ ही उग्रसैन के घर में।
नहिं लिखा करम में भोग पड़ा है जोग करो मत सोच
जाऊं गिरनारी है मात-पिता अरू भ्रात से क्षमा हमारी।

दोहा : मैं पुण्य प्रताप तुम्हारे घर भोगे भोग अपारे।
जो विधि के अङ्क हमारे नहिं टरें किसी के टारे।
मेरी सखि सहेली वीर न हो दिल गीर धरो
चित धीर मैं क्षमा कराऊँ मैं कुल को तुम्हारे
कबहूँ न दाग लगाऊँ। वह ले आज्ञा उठ खड़ी थी
मंगल घड़ी जा वन में पड़ी सुगुरू के चरना।
निर्नेम नेम बिन हमें क्या करना।। मै...

जेठ : अजी पड़े जेठ की धूप खड़े सब भूप वह कन्या
रूप सती बड़ भागन कर सिद्धन को प्रणाम किया
जग त्यागन। अजि त्यागे सब संसार चूड़ियाँ डार कमन्डुल
धार कै लई पिछोटी अरू पहिन कै साड़ी स्वेत उपारी
चोटी।।

दोहा : उन महा उग्र तप कीना, फिर अच्युत्येन्द्र पद लीना।
है धन्य उन्हीं का जीना, विषयन में ना चित दीना।।

अजि त्रिया भेद मिट गया पाप कट गया बढ़ा पुरूषार्थ
करे धर्म अर्थ फल भोग रूचे परमारथ। वो स्वर्ग सम्पदा
मुक्ति जायगी जैन की उक्ति में निश्चय धरण।
निर्नेम नेम बिन हमें क्या करना।। मै...
जो पढ़े इसे नर नारि बढ़े परिवार सब संसार में
महिमा पावें सुनि सतियन शील कथान विध्न मिट जावें।
नहीं रहे सुहागिन दुखी होय सब सखी मिटे बेरूखी।
वे होय जगत में महा सतियों की चादर उड़े गगन में।

दोहा : मैं मनुष्य कुल में आया अरू जती कहलाया।
है कर्म उदय की माया बिन संयम जन्म गंवाया।।

ग्राम सम्वत, कवि नाम

है दिल्ली नगर सुवास वतन है खास फाल्गुन मास अठाई आठे, हो उनके नित कल्याण छपा कर बांटे। अर्जी विनम्र अब्द उनीस पै धार श्री जदीश की ले लो शरण कहे दास नैन सुख दोष पै दृष्टि न धरना।। निर्नेम नेम बिन हमे जगत क्या करना मैं लूंगी...

एक ही भाव की कहीं तो उससे उत्कृष्ट भाव की अपेक्षा निंदा की हो, और कहीं उससे हीन भाव की अपेक्षा प्रशंसा की हो, वहाँ विरूद्ध नहीं जानना। जैसे किसी शुभ क्रिया की जहाँ निन्दा की हो वहाँ तो उससे ऊँची शुभक्रिया व शुद्धभाव की अपेक्षा जानना। और जहाँ प्रशंसा की हो वहाँ उससे नीची क्रिया व अशुभ क्रिया की अपेक्षा जानना।.....

शास्त्रों में कहीं निश्चयपोषक उपदेश है, कहीं व्यवहारपोषक उपदेश है। वहाँ अपने को व्यवहार का अधिक्य हो तो निश्चयपोषक उपदेश का ग्रहण करके यथावत् प्रवर्ते; और अपने को निश्चय का आधिक्य हो तो व्यवहारपोषक उपदेश का ग्रहण करके यथावत् प्रवर्ते।.....